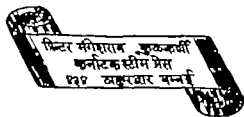


प्रकाशक—

नाथूराम प्रेमी,

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
छीराबाग पो विरगोंड बम्बई।



निवेदन ।

द्विगत दानवीर सेठ माणिकचन्दके नामको चिरस्मरणीय बनानेवाली ग्रन्थमालाका यह २१ वाँ ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है। यह एक ग्रन्थ नहीं, किन्तु छोटे बड़े २५ ग्रन्थोंका गुच्छक है। अब तक मालामें इस प्रकारके ६ गुच्छक प्रकाशित हो चुके हैं, यह सातवाँ गुच्छक है। आगे भी इस प्रकारके अनेक ग्रन्थगुच्छ प्रकाशित करनेकी हमारी इच्छा है। क्योंकि हमारे दिगम्बराचार्यों और विद्वानोंके बनाये हुए इस तरहके छोटे छोटे किन्तु महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोंकी सख्या बहुत अधिक है और उनके प्रकाशित होनेकी भी बहुत आवश्यकता है।

इस गुच्छकमें सब मिलाकर २५ ग्रन्थ हैं जिनमें ६ प्राकृत तथा अपभ्रंशके और शेष १९ सस्कृतके हैं। इनमें दो टीकासहित और शेष सब मूल मात्र हैं। प्राकृत ग्रन्थोंमें सिद्धान्तसार और निजात्माकष्टके अतिरिक्त शेष चारों ग्रन्थोंकी सस्कृतच्छाया नई बनवाई गई है और उसके कर्ता श्रीयुक्त प० पद्मालालजी सोनी हैं। इस संग्रहके अधिकांश ग्रन्थ अलभ्य नहीं तो दुर्लभ्य अवश्य हैं। बहुत कम सरस्वती-भट्टारोंमें इनकी प्रतियाँ हैं।

जिन जिन सज्जनोंकी हस्तलिखित प्रतियोंकी सहायतासे यह गुच्छक तयार हुआ है, उन सबका उल्लेख एक जुदा पृष्ठमें कर दिया गया है। यहाँ हम उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकाशित करके अनेकानेक साधुवाद दिये बिना नहीं रह सकते। ग्रन्थमालाके लिए उनकी इस कृपाको हम बहुत बड़ी सहायता समझते हैं।

जैनधर्मभूषण श्रीयुक्त ब्रह्मचारी शीतलप्रसादके भी हम बहुत ही कृतज्ञ हैं जिनकी इस ग्रन्थमालाके प्रति हार्दिक सहानुभूति है और जिनके परिश्रम और प्रयत्नसे ग्रन्थमालाको लगभग दस हजार रूपयोंकी सहायता प्राप्त हो चुकी है।

हमारे अनेक मित्रोंकी और विद्वानोंकी शिकायत है कि प्रथमसंस्करण सम्पादन और संशोधन सन्तोषजनक नहीं होता है। जबकि ही यह शिकायत निर्मुक्त नहीं है। प्रथमसंस्करणके इस दोषके हम स्वीकार करते हैं और यह हमारी दृष्टिसे बाहर भी नहीं है; परन्तु इसके दूर करनेमें जो कठिनाईयें हैं वे भी साधारण नहीं हैं।

एक तो हमारा समाज इस विषयमें बहुत उदासीन है। साधारण लोगोंकी बात तो जाने दीजिए, बड़े बड़े पण्डितों और विद्वानों तकका इस कार्यसे कोई विशेष अनुराग नहीं है और यही कारण है कि बहुत कुछ प्रयत्न करनेपर भी ग्रन्थोंकी जितनी चाहिए उतनी हस्तलिखित प्रतिर्षी हमें प्राप्त नहीं होती हैं और इसका एक यह होता है कि हमें अनेक ग्रन्थ केवल एक ही एक डूरी मछी प्रतिके आकारसे मुद्रित करना पड़ते हैं और इससे बिसा चाहिए वैसा संशोधन नहीं हो सकता है।

दूसरे प्रथमसंशोधन और सम्पादन करनेकी भी एक कला है और इस कलाके आभवेवाले तथा भी खोकर पूरा पूरा परिश्रम करनेवाले व्युत्पन्न विद्वानोंका हमारे समाजमें प्रायः अभाव है।

तीसरे प्रथमसंस्करणका कष्ट बहुत ही मोटा है और इस लिए इस कार्यमें जितना चाहिए उतना कार्य नहीं किया जा सकता। जब तक इसके लिए हो चार वैदिक विद्वान् स्वतंत्ररूपसे न लगे जायें और उन्हें सम्पादन-संशोधन-कलाका अभ्यास न कराया जाय तब ही हस्तलिखित ग्रन्थोंकी प्रतिर्षी प्राप्त करनेमें सर्वसाधारण सज्जनों तथा विद्वानोंसे सहायता प्राप्त न हो तब तक इस दोषका सर्वथा दूर हो जाना कठिन है। फिर भी जहाँ तक बच सकता है इस विषयमें प्रयत्न अवश्य किया जाता है।

यह हम पहले ही जानते थे कि संस्कृत मातृगत ग्रन्थोंकी विधि बहुत ही मोटी होती है; परन्तु हमें आशा थी कि जब लोगोंकी रुचि साधनाकी ओर झुकती और दानी बर्मासनाओंके द्वारा जब ग्रन्थोंकी सी सी दो दो सी प्रतिर्षी वितरण करनेके लिए जारी हो जाती रहेंगी। कुछ कुछमें कुछ समयमें हमारी इस आशाके पूर्ण भी किया परन्तु अब तो सारा समाज ही इस ओरसे उदासीन दिखलाई देता है। समझमें नहीं आता कि वेदवर्मकी उच्चता और प्रभावना आद्यनेवाले इस साधनाकी माहिमाके अब सम्प्रेमों ५

अन्तमें इस गुच्छकके एक नोटके सम्बन्धमें थोड़ीसी सूचना देकर हम इस निवेदनको समाप्त करेंगे ।

इस गुच्छकके पार्श्वनाथस्तोत्रके नीचे श्रीयुक्त पं० पन्नालालजी सोनीने इस प्रकारका नोट दिया है—“अस्य स्तोत्रस्य दशरामशरारूपा एकैव प्रेसपुस्तिका संप्राप्ता सा तु ‘वावू जुगलकिशोरजी’ इत्येतैः संशोधिताप्यतीवाशुद्धा ।” अर्थात् इस स्तोत्रकी एक ही प्रेसकापी प्राप्त हुई, जो कि वावू जुगलकिशोरजीके द्वारा संशोधित होनेपर भी अतिशय अशुद्ध थी। इस पर श्रीयुक्त वावू जुगलकिशोरजी अपने पत्रमें लिखते हैं कि “उक्त नोटको पढ़कर मुझे बहुत दुःख हुआ। क्योंकि उसमें पुस्तककी प्रेसकापीका मेरे द्वारा संशोधन होना लिखा है, जो बिल्कुल मिथ्या है। मैंने कभी आपको यह नहीं लिखा कि इसका संशोधन मेरे द्वारा हुआ है। इसकी कापी आराके एक पुजारीसे कराई थी और फिर प० शान्तिराज आदिने ‘कापी टु कापी’ मिलान मात्र किया था। संशोधन दूसरी वस्तु है। मालूम नहीं सोनीजीने यह नोट किस आधार पर दिया है।” हमको भी आश्चर्य है कि पण्डितजीने ऐसा नोट क्यों दिया, विशेष कर यह बात बहुत ही खटकनेवाली है कि ‘वावू जुगलकिशोरजीके द्वारा संशोधित होनेपर भी बहुत अशुद्ध थी।’ यदि यह बात वावू साहबको नीचा दिखानेके खयालसे लिखी गई है, तो बहुत ही अनुचित है

विनीत—

नाथूराम-प्रेमी ।

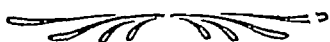
प्रार्थना ।



यह ग्रन्थमाला प्राचीन जैनग्रन्थोंका जीर्णोद्धार करनेके लिए निकाली गई है । इसमें प्रकाशित हुए ग्रन्थ बिना किसी मुनाफ्फ, लागतक मूल्य पर बेचे जाते हैं । इसकी सहायता करना प्रत्येक अनीका कर्तव्य है । इसके पण्डमें चन्दा देने और इसके ग्रन्थोंको खरीदने तथा बाँटनेसे इसकी यथेष्ट सहायता हो सकती है ।

—मंत्री ।

ग्रन्थकर्त्ताओंका परिचय ।



१-श्रीजिनचन्द्राचार्य ।

इस सग्रहके प्रथम ग्रन्थ 'सिद्धान्तसार'के मूलकर्त्ता जिनचन्द्र नामके आचार्य हैं जैसा कि उक्त ग्रन्थकी ७८ वीं गाथासे और उसकी टीकासे भी मालूम होता है । प्रारम्भमें 'जिनेन्द्राचार्य' नाम सशोधककी भूलसे मुद्रित हो गया है ।

इस नामके कई आचार्य और भट्टारक हो गये हैं, परन्तु ग्रन्थमें प्रशस्ति आदिका अभाव होनेके कारण निश्चयपूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि इसके कर्त्ता कौन हैं और इसकी रचना किस समयमें हुई है । आश्चर्य नहीं जो इसके कर्त्ता भास्करनन्दिके गुरु थे जिनचन्द्र हों जिनका कि उल्लेख श्रवणबेलगुलके ५५ वें शिलालेखमें किया गया है ।

मद्रासकी ओरियण्टल लायब्रेरीमें तत्त्वार्थकी मुखबोधिका टीका (न० ५१६५) की एक प्रति है, उसकी प्रशस्तिमें लिखा है —

तस्यासीत्सुविशुद्धदृष्टिविभवः सिद्धान्तपारंगतः
शिष्यः श्री जिनचन्द्रनामकालितश्चारित्रचूडामणिः ।
शिष्यो भास्करनन्दिनामविबुधस्तस्याभवत्तत्त्ववित्
तेनाकारि सुखादिवोधविषया तत्त्वार्थवृत्तिः स्फुटम् ॥

इससे मालूम होता है कि यह टीका भास्करनन्दिकी बनाई हुई है और उनके गुरु जिनचन्द्र सिद्धान्तशास्त्रोंके पारंगत थे ।

जिनचन्द्र नामके एक और आचार्य हो गये हैं जो धर्मसग्रहभावकाचारके कर्त्ता प० मेधावीके गुरु थे और शुभचन्द्राचार्यके शिष्य थे । ये शुभचन्द्राचार्य पद्मनन्दि आचार्यके पट्टधर थे और पाण्डवपुराण आदि ग्रन्थोंके कर्त्ता शुभचन्द्रसे पहले हो गये हैं । प० मेधावीने त्रैलोक्यप्रज्ञप्ति ग्रन्थकी दानप्रशस्तिमें* उनका परिचय इस प्रकार दिया है —

* देखो पिटर्सनसाहबकी चौथी रिपोर्ट और जैनहितैषी भाग १५, अंक ३-४ ।

अथ भीमूखसधेऽस्मिन्नन्विसधेऽनघेऽजनि ।

बलात्कारगण्यस्तत्र गच्छः सारस्वतस्त्वभूत् ॥ ११ ॥

तथाहनि प्रभाषन्त्रः सुरिषमद्राजितागजः ।

दर्शनज्ञानचारिषतपोयीर्यसमन्वितः ॥ १२ ॥

भीमाम्बभूव मार्तण्डस्तत्पद्मोदयभूषरः ।

पद्मन्मयी बुधान्मयी तमच्छ्रेयी मुनिप्रभुः ॥ १३ ॥

तत्पद्माम्बुधिसधम्रः शुभम्रः सतां वरः ।

पंचाक्षयनवाबाधिः कपायस्माधरशानिः ॥ १४ ॥

तदीत्यपद्माम्बरभानुमाळी क्षमाविनानाशुष्यरत्नशाली ।

महारक्ष्मीधिनम्रनामा सैशान्तिकामां मुवि योस्ति सीमा १५

इससे माहम होता है कि वे जिनम्र भी सैशान्तिक सिद्धर के और इस लिए कुछ सिद्धान्तसारका इसके द्वारा भी निर्मित होना सब प्रकारसे संभव है ।

पं मेवापीकी कुछ प्रचलित कि संवत् १५१९ में सिद्धी चंद्र भी और इस समय जिनम्र मरारक मौजूद थे अतएव सिद्धान्तसारका रचनात्मक भी इसीके अग्रभंग माना जा सकता है । सिद्धान्तसारके संकल्पटीकाकार ज्ञानभूषणका समय वैसा कि आगे लिखने के पता है—कि संवत् १५३४ से १५९१ तक आता है अतएव इनके द्वारा इस ग्रन्थकी टीका लिखा जाना सर्वथा संभव है । बल्कि इन दोनोंकी समयसमीपताको देखकर यह कदाक होता है कि म ज्ञानभूषणकी अग्रस्य ही अपने कुछ ही पहलेके—प्रायः समकालीन—इन्हीं जिनम्रके ग्रन्थकी टीका लिखनेका बतलाह हुआ होया और इससे हमारे कना हमें भास्करभद्रिके गुरु जिनम्रकी अपेक्षा पं मेवापीके गुरु जिनम्रकी सिद्धान्तसारके कर्ता होनेके विषयमें विशेष संभावना है ।

इस सिद्धान्तसारकी एक कतकी टीका भी है जो प्रभाषणकी बताई हुई है और आराके सरस्वती मण्डलमें मौजूद है । यह कवकी बनी हुई है, यह गरी माहम हो सक्त ।

२, ३—म० भीज्ञानभूषण और शुभचंद्र ।

इस समयमें मरारक ज्ञानभूषणका सिद्धान्तसार भाष्य और म ज्ञानभूषणका अंगपरमिति या अङ्गप्रकृति नामक ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं, और पिछके

ग्रन्थके कर्ता भ० शुभचन्द्र ज्ञानभूषणके प्रशिष्य थे, अतएव इन दोनोंका परिचय पाठकोंको एक साथ कराया जाता है ।

सिद्धान्तसारके भाष्यमें यद्यपि भाष्यकारने अपना कोई स्पष्ट परिचय नहीं दिया है और न उसमें कोई प्रशस्ति ही है, परन्तु मगलाचरणके नीचे लिखे श्लोकसे मालूम होता है कि वह भ० ज्ञानभूषणका ही बनाया हुआ है —

श्रीसर्वज्ञं प्रणम्यादौ लक्ष्मीवीरेन्दुसेवितम् ।

भाष्यं सिद्धान्तसारस्य वक्ष्ये ज्ञानसुभूषणम् ॥

इसमें सर्वज्ञको जो ज्ञानभूषण विशेषण दिया है, वह निश्चय ही भाष्यकर्ताका नाम है । और भी कई ग्रन्थकर्ताओंने मगलाचरणोंमें इसी तरह अपने नाम प्रकट किये हैं* ।

उक्त मगलाचरणके 'लक्ष्मीवीरेन्दुसेवितम्' पदसे यह भी मालूम होता है कि लक्ष्मीचन्द्र और वीरचन्द्र नामके उनके (ज्ञानभूषणके) कोई शिष्य या प्रशिष्यादि होंगे जिनके पढनेके लिए उक्त भाष्य बनाया गया होगा । ज्ञानभूषणके प्रशिष्य शुभचन्द्राचार्यकी बनाई हुई स्वामिकातिकेयानुपेक्षा-टीकाकी प्रशस्तिके १०-११वें श्लोकमें जो कि आगे उद्धृत की गई है—इन लक्ष्मीचन्द्र और वीरचन्द्रका उल्लेख है और उस उल्लेखसे हम कह सकते हैं कि भाष्यके मगलाचरणका 'लक्ष्मीवीरेन्दुसेवितम्' पद उन्हींको लक्ष्य करके लिखा गया है ।

भट्टारक ज्ञानभूषण मूलसद्य, सरस्वतीगच्छ और वलात्कारगणके आचार्य थे । उनकी गुरुपरम्पराका प्रारंभ भ० पद्मनन्दिसे होता है । पद्मनन्दिसे पहलेकी परंपराका अभी तक ठीक ठीक पता नहीं लगा है । १ पद्मनन्दि—२ सकलकीर्ति—३ भुवनकीर्ति और ४ ज्ञानभूषण । यह ज्ञानभूषणकी गुरुपरंपराका क्रम है ।

ज्ञानभूषणके बाद ५ विजयकीर्ति और फिर उनके शिष्य ६ शुभचन्द्र हुए हैं और इस तरह शुभचन्द्र ज्ञानभूषणके प्रशिष्य हैं । यहाँ यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि प्रत्येक भट्टारकके अनेकानेक शिष्य होते थे, परन्तु उपर्युक्त

* यथा सोमदेवकृत नीतिवाक्यामृतमें—“सोमदेवं मुनिं नत्वा नीतिवाक्यामृतं ब्रुवे ।” और अनन्तवीर्यकी लघीयल्लयवृत्तिमें—“अनन्तवीर्यमानौमिस्याद्वादन्यायनायकम्” इत्यादि ।

शिष्यक्रममें केवल उन्हींका नाम दिया गया है जो एकके बाद दूसरे मठरूपके पदके या महीके अधिकारी होते गये हैं। उक्त शिष्यक्रमको स्पष्ट करनेके लिए हम आगे स्वामिकारिके नामप्रदा-टीकाकी प्रवृत्ति उद्धृत करते हैं—

श्रीमूळसंघेऽहमि नम्विसंघा बरो बळात्कारगणप्रसिद्धः ।
 श्रीकुम्बकुम्बो घरसूरिवर्यो विभाति मामुपपन्नसूयिताङ्ग ॥
 तदन्वये श्रीमुमिपन्नन्दी ततोऽभवच्छ्रीसकलाविकीर्तिः ।
 तदन्वये श्रीमुबनाविकीर्तिः श्रीज्ञानसूयो घरसूरिसूया ॥ ३ ॥
 तदन्वये श्रीविजयाविकीर्तिस्तत्पद्मधारी शुभचन्द्रदेवा ।
 तेनेयमाकारि विद्युत्खटीका श्रीमत्सुमस्याविद्युकीर्तितम् ॥ ४ ॥
 सुरिशीशुभचन्द्रेण चात्रिपर्वतधमिना ।
 त्रिविधेनानुप्रेक्षाया वृत्तिर्विचरिता घर ॥ ५ ॥
 श्रीमद्विक्रमसूपतेः परिमिते वर्षे शते योजसौ
 माघे मासि दशाप्रबाहिसहिते श्याते दशम्यां तिथी ।
 श्रीमच्छ्रीमहिसारसारनगरे शैत्यालये श्रीगुरोः
 श्रीमच्छ्रीशुभचन्द्रदेवविहिता टीका सदा मंषु ॥ ६ ॥
 सर्षीश्रीशुभचन्द्रेण यिसयेन कृतप्रार्थना (१) ।
 शुभचन्द्रगुरो स्वामिन् कुब टीका मनोहरा ॥ ७ ॥
 तत्र श्रीशुभचन्द्रेण त्रिविधेन गणशिना ।
 कार्तिकेयानुप्रेक्षाया वृत्तिर्विचरिता घर ॥ ८ ॥
 तथा साधुसुमस्याविकीर्तिना कृतप्रार्थना ।
 सर्षीकृता समयेन शुभचन्द्रेण सुरिणा ॥ ९ ॥
 मठारकपदापीशा मूळसंघे विदा बराः ।
 रमाशीरेषुभाषसूपगुरो द्वि गणेशिनः ॥ १० ॥
 अस्मीचन्द्रगुरुस्वामी शिष्यस्तस्य सुधीयशाः ।
 वृत्तिर्विस्तारिता तेन श्रीशुभेक्षुप्रसादता ॥ ११ ॥

इति श्रीस्वामिकारिकेयानुप्रेक्षायां त्रिविधविद्याधर-यज्ञभ्याकावि-
 ष्यकार्तिकेशुभचन्द्रविचरितायां टीकायां ॥*

* देखो श्री विदर्भकी रिपोर्टे पृ. १८९४ की कपी हुई।

आगे शुभचन्द्राचार्यकी शिष्यपरम्पराका क्रम इस प्रकार निश्चित होता है.—

७-सुमतिकीर्ति-८ गुणकीर्ति-९ वादिभूषण-१० रामकीर्ति-११ यशः
कीर्ति और १२ पद्मनन्दि आदि । इनमेंसे वादिभूषण तककी परम्पराका उल्लेख
अध्यात्मतरणिणीकी उस प्रतिके लिखनेवालेकी प्रशस्तिमें मिलता है जो स्व-
र्गीय दानवीर सेठ माणिकचन्द्रजीके सरस्वतीभण्डारमें मौजूद है और वादिभूषणके
वादके भट्टाकोंका उल्लेख बलात्कारगणकी गुवावलीमें है जो भ० नेमिचन्द्रकी
वनाई हुई है और हमारे पास मौजूद है ।

जैनसिद्धान्तभास्करकी प्रथम किरणमें (पृ० ४५-४६) प्रकाशित शुभच-
न्द्रकी पद्यावलीसे भी यही क्रम निश्चित होता है ।

श्रीज्ञानभूषण मागबाडे (वागड़) की गद्दीके भट्टारक पदपर आसीन थे ।
भास्करकी चौथी किरण (प० ४३-४५) में जो पद्यावली प्रकाशित हुई है
उससे मालूम होता है कि “वे गुजरातके रहनेवाले थे । गुजरातमें उन्होंने सागार-
धर्म धारण किया, अहीर (?) देशमें ग्यारह प्रतिमा धारण कीं और वाग्बर या
वागड़ देशमें दुर्धर महाव्रत ग्रहण किये । तौलव देशके यतियोंमें उनकी बड़ी
प्रतिष्ठा हुई, तौलव देशके उत्तम उत्तम पुरुषोंने उनके चरणोंकी वन्दना की, द्रविड
देशके विद्वानोंने उनका स्तवन किया, महाराष्ट्र देशमें उन्हें बहुत यश मिला,
सौराष्ट्रदेशके धनी श्रावकोंने उनके लिए महामहोत्सव किया, रायदेशके निवा-
सियोंने उनके वचनोंको अतिशय प्रमाण माना, मेदपाठ (मेवाड़) के मूर्ख लो-
गोंको उन्होंने प्रतिबोधित किया, मालवदेशके भव्य जनोंके हृदयकमलको
विकसित किया, मेवात देशमें उनके अध्यात्मरहस्यपूर्ण व्याख्यानसे विविध विद्वान्
श्रावक प्रसन्न हुए, कुरुजागल देशके लोगोंका अज्ञान रोग दूर किया, तूरव (?)
के पट्टर्शन और तर्कके जाननेवालों पर विजय प्राप्त किया, विराट्ट देशके

* “सवत् १६५२ वर्षे ज्येष्ठद्वितीयकृष्णदशम्यां शुके मूलसंघे सरस्वती-
गच्छे बलात्कारगणे श्रीकुन्दकुन्दान्वये भ० श्रीपद्मनन्दि देवास्तत्पट्टे भ० सक-
लकीर्तिदेवास्तत्पट्टे भ० भुवनकीर्तिदेवास्तत्पट्टे भ० ज्ञानभूषणदेवास्तत्पट्टे भ०
श्रीविजयकीर्तिदेवास्तत्पट्टे भ० शुभचन्द्रदेवास्तत्पट्टे भ० श्रीसुमतिकीर्तिदेवा-
स्तत्पट्टे भ० श्रीगुणकीर्तिदेवास्तत्पट्टे भ० श्रीवादिभूषणगुरुस्तच्छिष्य प० देवजी
पठनार्थ ।”

सोर्गाओ उमय मय (सागर बनमार १) शिक्षाके मयियल (निमाव १) वेधमें
 वैतधमेंकी प्रमावना की टय राटहकीवटी नापर वासं (१) भादि बनपदोंमें
 प्रतिबाधके विमित विहार किवा मैरव नामक राजाने उवकी मधि की इन्द्रा
 जाने करव पूजे राजाधिराज देवराजमे करणोंकी आरावना की विमधमेंके आरा
 पक मुमिठिआर रामनावरज बोम्मरसरज कछपरज पाण्डुराज भादि राजा
 जोने करव पूजे और उन्होंने अनेक तीर्थोंकी यात्राये की । व्याकरण-उन्द-
 अर्थकार-साहित्य-तक-भाषम-अभ्यास भादि शास्त्ररूपी कमकोंपर विहार
 करनेके लिए वे राजहस से और सुद प्यावापुतपावकी उन्हे छाकता थी । इस
 कवित्वपूर्ण वर्नसे झाबमूषम महारककी महत्प्राका बहुत कुछ पता समता है ।
 इसमें समग्र मही कि वे अपने समयके बहुत ही प्रसिद्ध प्रतिष्ठित और विद्वान्
 आचार्य थे ।

भ झाबमूषमके उत्पन्नानतर्पिणी और विद्वान्तसार-भाष्य से दो ग्रंथ सुचित
 हो चुके हैं । परमारोंपदेश हीय ही प्रकाशित होय । इनके विधान वेमिनिवा
 कझाम्बकी पधिकारीका पचास्तिकावटीका दसकझाबोधापन आदीस्वर-अम्य
 मछामरोधापन और धरस्वतीपूजा * इन मन्थोंका भी ज्ञानमूषमके नामसे उल्लेख
 मिळता है । संभव है कि इनमें अम्य किती ज्ञानमूषमके ग्रंथ भी सामिक ही ।

* 'गौम्मठसारटीका की भी कुछ खोगोंमे झाबमूषमकृत मान रक्खा है । परंतु
 यह भूल है । २६ अगस्त १९१५ के वैमिश्रमें इस टीकाकी जो प्रकृति प्रका
 शित हुई है उससे मालूम होता है कि इसके कर्ता वेमिश्रम हैं जिन्होंने झाब
 मूषमसे बीदा की भी महारक प्रमावन्ने जिन्हें आचार्यपद पर विद्वाना वा
 दक्षिण देशके गुप्रसिद्ध आचार्य मुनिचन्द्रके पास जिन्होंने सिद्धान्त पदों के
 विद्याककीर्तिमें जिन्हें टीकारचनमें सहायता दी थी और जो लज्जावद्वाराके
 आमदवध गुजरातसे आकर विमचन्द्र (वितीर) में जिनदासछाहके बगवै
 हुए पादपनाब-मन्दिरे रहे * । यह टीका बीरनिवांन संवत् ११७७ में समाप्त
 हुई है । बोम्मरसारके कर्ताके मतसे ११७७ में सिद्धम संवत् (११७७-९ ५ =
 १५७२+१२५) १७ ७ पड़ता है अतएव उक्त वेमिश्रके गुरु झाबमूषम
 की कोई दूजरे ही झाबमूषम हैं जो सिद्धान्तसार भाष्यके कर्ताके ही तथा नीकरी
 वाद हुए हैं ।

सिद्धान्तसार भाष्यकी रचना किस समय हुई, यह जाननेका कोई साधन नहीं है, परन्तु तत्त्वज्ञानतरंगिणी विक्रम सवत् १५६० में बनी है। यथा—

यदैव विक्रमातीताः शतपञ्चदशाधिकाः ।

पष्टिसंवत्सरा जातास्तदेयं निर्मिता कृतिः ॥ ५३ ॥

जैनसिद्धान्तभास्कर (किरण ४ पृ० ९६) में उसके सम्पादक महाशयने लिखा है कि ज्ञानभूषण वि० स० १५७५ तक भट्टारक पद पर आसीन रहे हैं, परन्तु यह उन्होंने किस प्रमाणके आधार पर लिखा है यह मालूम नहीं हो सका।

वीसनगर (गुजरात) के शान्तिनाथके श्वेताम्बर-मन्दिरकी एक दिगम्बर प्रतिमा पर इस प्रकारका लेख है —“सं० १५५७ वर्षे माघवदि ५ गुरौ श्री मूलसंधे सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे श्रीकुन्दकुन्दाचार्यान्वये भ० सकल-कीर्तिस्तत्पट्टे भ० श्रीभुवनकीर्तिस्तत्पट्टे भ० श्रीज्ञानभूषणस्तत्पट्टे भ० श्रीविजयकीर्तिगुरुपदेशात् हुंबडज्ञातीय . . एते श्रीशान्तिनाथं नित्यं प्रणमन्ति ।” इसी तरह पेथापुरके श्वेताम्बर मन्दिरकी भी एक दिगम्बर प्रतिमापर लेख* है —“सं० १५६१ चैत्रवदि ८ शुक्ले मूलसंधे भ० ज्ञानभूषण भट्टारक श्रीविजयकीर्ति उपदेशात् हुम्बड कडुआ श्रीनेमिनाथविम्बं ।”

इन दोनों लेखोंसे मालूम होता है कि वि० स० १५५७ और १५६१ में ज्ञानभूषणजी भट्टारक पदपर नहीं थे किन्तु उनके शिष्य विजयकीर्ति थे। इससे यह मानना भ्रम है कि वे वि० स० १५७५ तक भट्टारक पदपर थे। वास्तवमें वे १५५७ के पहले ही इस पदको छोड़ चुके थे और इस लिए तत्त्वज्ञानतरंगिणीकी रचना उन्होंने उस समय की है जब भट्टारकपद विजयकीर्तिको मिल चुका था।

पूर्वोक्त ‘जैनधातुप्रतिमा लेखसंग्रह’ नामक ग्रन्थमें विक्रम सवत् १५३४-३५ और १५३६ के तीन प्रतिमालेख* और हैं जिनसे मालूम होता है कि उक्त सवत्तोंमें ज्ञानभूषण भट्टारक पदपर थे। अतएव उन्होंने १५५७ के पहले ही

* देखो श्रीबुद्धिसागरसूरिसम्पादित ‘जैनधातुप्रतिमालेखसंग्रह,’ प्रथम भाग, पृष्ठ ८७ और १२३।

* देखो न० ६७२, १५०९ और ५६७ के लेख।

कार्यान्वये उभय माय (सागर अवसर) दिखलस्ये रमियाह (निमाह) रेषमें
 बिनबनीकी प्रमावना की रूप राटहडीबटी नगर वास () बाकि बनपरीमें
 प्रतिबोधके निमित्त विहार किया मैरह नामक राजाने समकी मखि की इतरा
 जाने बरप पूजे राजानिराम देबरामने बरबोकी बारायना की जिनबनीके भाप-
 बक मुशिम्मार रामबाबराव बोम्मरसराव ककपराव पालपुराय बादि राजा
 जोने बरप पूज और इन्होंने अनेक हीबोकी जात्रामें की । ब्याकरब-कम्प-
 बसंभार-साहित्य-तक-आयम-बम्पश्य बादि शास्त्रकी कर्मकोपर विहार
 करनेके लिए वे राजहस वे और छुद भ्रानामृतपानकी इन्हें आकता थी । इस
 कर्मत्वपूर्ण बचनसे शाबन्सुप मशरककी महत्वाका बहुत कुछ पता लगता है ।
 इसमें सन्देह नहीं कि वे अपने समयके बहुत ही प्रसिद्ध प्रतिष्ठित और विद्वान्
 आचार्य थे ।

य शरभूरपके तत्वज्ञानपरिगिणी और सिद्धान्तसार भाष्य से ही प्रब सुचित
 हो चुके हैं । परमारोंपदेश हीन ही प्रकथित होय । इनके विषय नेमिनिवा
 मम्मथकी पत्रिकाकीका पचासि-ककडीका रघुसुन्दरोपासन आदीश्वर-काम
 मधामरोपासन और सरस्वतीपूजा * इन ग्रन्थोंकी जो भावभूषणके नामसे उल्लेख
 मिलता है । समझ है कि इनमें अन्य किसी उल्लेखके प्रथम भी शामिल हों ।

* 'योम्मटसप्तटीका की भी कुछ कोषोंसे शाबन्सुपकृत मान लक्या है । परंतु
 यह मूल है । १६ अगस्त १९१५ के बीमसिद्धमें इस टीकाकी भी प्रकथित प्रका
 शित हुई है । उससे माह्य होता है कि इसके कर्ता भी नेमिनिवह हैं जिन्होंने ज्ञान
 भूषणसे दीया की ही मशरक प्रमावन्ने जिन्हें आचार्यपर पर विद्वान् वा
 बक्षिण रेषके उपसिद्ध आचार्य सुमिचन्द्रके पास जिन्होंने सिद्धान्त पदे के
 विद्याकोषिने जिन्हें टीकाएकनामै उदावता थी थी और जो अकामरुषारीके
 आयदवद्य पुत्रउठसे आकर विपकृत (विर्तार) में जिनदासछाहक बनाये
 हुए पादरनाथ मन्दिरेमें रहे थे । यह टीका बीरनिवाच संवत् २१७७ में उजात
 हुई है । योम्मटकारके कर्ताके मरते २१७७ में सिद्ध संवत् (२१७७-६ ५२
 १५ २+१२५) १ * पकता है अतएव कुछ नेमिचन्द्रके पुत्र शाबन्सुप
 भी कीई वृत्त ही शाबन्सुप हैं जो सिद्धान्तसार भाष्यके कर्तासे ही उवा भी बने
 जाय हुए हैं ।

उद्यापनमदीपिष्ट पल्योपमविधेश्च यः ।

चारित्रशुद्धितपसश्चतुस्त्रिंशद्वादशात्मनः ॥ ७६

संशयिवदनविदारणमपशब्दसुखण्डनं परं तर्कं ।

सत्त्वनिर्णयं वरस्वरूपसवोधिनीं वृत्तिम् ॥ ७७

अध्यात्मपद्यवृत्तिं सर्वार्थापूर्वसर्वतोभद्रम् ।

योऽकृतसद्वाकरणं चिन्तामणिनामधेयं च ॥ ७८

कृत येनागप्रज्ञप्तिः सर्वार्थाग्ररूपिका ।

स्तोत्राणि च पवित्राणि षड्वादाः श्रीजिनेशिनां ॥ ७९

तेन श्रीशुभचन्द्रदेवविदुषा सत्पाण्डवाना परम् ।

पुष्यत्पुष्यपुराणमत्र सुकरं चाकारि प्रीत्या महत् ॥ ८०

श्रीमद्विक्रमभूपतोर्द्विकहते स्पष्टाष्टसंख्ये शते

रम्येऽष्टाधिकवत्सरे सुखकरे भाद्रे द्वितीयातिथौ ;

श्रीमद्वाग्बरनिर्वृतीदमतुले श्रीशाकवाटे पुरे

श्रीमच्छ्रीगुरुपाभिधे विरचितं स्थेयात्पुराणं चिरम् ॥ ८६

अर्थात् पाण्डवपुराणके कर्ता शुभचन्द्राचार्यके वनाये हुए नीचे लिखे ग्रन्थ
२५५ —

१ चन्द्रप्रभचरित, २ पद्मनाभचरित, ३ जीवधरचरित, ४ चन्दनाकथा, ५ नन्दीश्वरकथा, ६ आशाधरकृत अर्चा (नित्यमहोद्योत) की टीका, ७ त्रिंशच्चतुर्विंशतिपूजापाठ, ८ सिद्धचक्रव्रतपूजा, ९ सरस्वतीपूजा, १० चिन्तामणियंत्रपूजा, ११ कर्मदहनविधान, १२ गणधरवलयपूजा, १३ (वादिराजकृत) पार्श्वनाथकाव्यकी पजिका टीका,* १४ पल्यव्रतोद्यापन, १५ चतुस्त्रिंशदधिकद्वादशशतोद्यापन (१२३४ व्रतका उद्यापन), १६ सशयिवदनविदारण (श्वेताम्बरमतखण्डन), १७ अपशब्दखण्डन, १८ तत्त्वनिर्णय, १९ स्वरूपसम्बोधन (अकलकदेवकृत ?) की वृत्ति, २० अध्यात्मपद्यटीका, २१ सर्वतोभद्र, २२ चिन्तामणि नामक× प्राकृतव्याकरण, २३ अगप्रज्ञप्ति, २४ अनेकस्तोत्र, २५ षड्वाद और पाण्डवपुराण ।

* यह ग्रन्थ स्वर्गीय सेठ माणिकचन्द्रजीके ग्रन्थभाण्डारमें मौजूद है ।

× यह ग्रन्थ माणिकचन्द्रग्रन्थमालामें प्रकाशित होनेवाला है ।

किसी समय यह पद छोड़ा है। परन्तु यह निश्चय है कि मङ्गलक पद छोड़नेके बाद भी वे बहुत समयतक जीवित रहे हैं।

मङ्गलक छुमबन्ध भी बहुत बड़े विद्वान् हुए हैं। त्रिविधविद्याधर (अध्यात्म सुलयायाम भीरु परमागमके ज्ञाता) और पद्मभाषाकविचक्रवर्ती वे उनकी पदविर्गीनी। मास्करमें प्रचलित पद्मवर्तीमें लिखा है कि वे प्रमाद्यपरीक्षा पत्रपरीक्षा पुष्पपरीक्षा(!), परीक्षासुख प्रमाणनिर्णय न्यायमन्तरं ग्यायकुसुमचन्द्रोदय न्यायविनिश्चय श्लोकवार्तिक रासवार्तिक प्रमेयकर्मकमार्तण्य भासमीमांसा महद्यहनी चिन्तामणिमीमांसाविरचय वाचस्पतितत्त्वकौमुदी आदि कर्कशतकग्रन्थोंके लेखक शाक्यवदन ऐन्द्र पाणिनि कषाप आदि व्याकरणग्रन्थोंके त्रैलोक्यघार गोम्मदसार कर्मिघार क्षुपाधार त्रिलोकप्रवृत्ति बुद्धिप्रति (!) अथवा स्नाहसहसी (!) और छन्दाकङ्कार आदि शास्त्रमसूत्रोंके पारयानी थे। उन्होंने अनेक देशोंमें विहार किया था अनेक विद्यार्थियोंका वे पाठ्य करते थे उनकी समामें अनेक विद्वान् रहते थे पौड कठिन कर्कश तौल्य एव गुर्जर मातृव्य आदि देशोंके वादियोंको उन्होंने पराजित किया था और अपने तथा अन्य बर्गोंके वे बड़े मारी हुता थे।

म छुमबन्धनीके बनाये हुए अनेक ग्रन्थ हैं और प्रायः उन सभीको अन्तःप्रचलितियोंमें उन्होंने अपनी गुह्यपरम्पराका परिचय दिया है। स्वामिधर्मिकेना गुप्तेषादीकाकी प्रचलित हम इसी केबने पहले उद्धृत कर चुके हैं। पाण्डवपुराणकी प्रचलित गी हनारे पास है। परन्तु यहाँ हम उसके उतने ही अंशको प्रकाशित करत हैं जिसमें उनकी उमाम ग्रन्थरचनाओंका उल्लेख है:—

अष्टनाथधरितं अरितार्थं पद्मानामधरितं शुभबन्धुं ।

मन्मथस्य महिमानमतन्द्रो जीयकस्य अरितं च अकार ॥ ७२

अन्धनायाः कथा येन हृष्या नान्दीश्वरी तथा ।

आशाधरहृताचार्यो(र्थायाः) श्रुतिः सद्ब्रह्मिशास्त्रिणी ॥ ७३

विद्याधनुर्बिंशतिपूज्यं च सद्ब्रह्मसिद्धार्चनमप्यधत्त ।

सारम्बरीयार्चनमत्र शुद्धं चिन्तामणीयार्चनमुधरिण्युः ॥ ७४

श्रीकर्मशादपिधिपुण्ड्रसिद्धसेयां नामाशुषीपगण्यनाथसमर्चनं च ।

श्रीपार्थनाथपरकाम्यसुपजिक्ता च यः संवकारं शुभबन्धुपतीम्

अम्भः ॥ ७५

उद्यापनमदीपिष्ट पल्योपमविधेश्च यः ।

चारित्रशुद्धितपसश्चतुस्त्रिद्व्यदशात्मनः ॥ ७६

संशयिवदनविदारणमपशब्दसुखण्डनं परं तर्कं ।

सत्तत्त्वनिर्णयं वरस्वरूपसंबोधिर्नी वृत्तिम् ॥ ७७

अध्यात्मपद्यवृत्तिं सर्वार्थापूर्वसर्वतोभद्रम् ।

योऽकृतसद्वाकरणं चिन्तामणिनामधेय च ॥ ७८

कृत येनागप्रज्ञप्तिः सर्वाङ्गार्याप्ररूपिका ।

स्तोत्राणि च पवित्राणि षड्वादाः श्रीजिनेशिनं ॥ ७९

तेन श्रीशुभचन्द्रदेवविदुषा सत्पाण्डवाना परम् ।

पुष्यत्पुष्यपुराणमत्र सुकरं चाकारि प्रीत्या महत् ॥ ८०

श्रीमद्विक्रमभूपतेर्द्विकहते स्पष्टाष्टसंख्ये शते

रम्येऽष्टाधिकवत्सरे सुखकरे भाद्रे द्वितीयातिथौ ;

श्रीमद्वाग्वरनिर्वृतीदमतुले श्रीशाकवाटे पुरे

श्रीमच्छ्रीगुरुषामिधे विरचितं स्थेयात्पुराणं चिरम् ॥ ८६

अर्थात् पाण्डवपुराणके कर्ता शुभचन्द्राचार्यके वनाये हुए नीचे लिखे ग्रन्थ हैं.—

१ चन्द्रप्रभचरित, २ पद्मनाभचरित, ३ जीवधरचरित, ४ चन्दनाकथा, ५ नन्दीश्वरकथा, ६ आशाधरकृत अर्चा (नित्यमहोद्योत) की टीका, ७ त्रिंशच्चतुर्विंशतिपूजापाठ, ८ सिद्धचक्रव्रतपूजा, ९ सरस्वतीपूजा, १० चिन्तामणियत्रपूजा, ११ कर्मदहनविधान, १२ गणधरवलयपूजा, १३ (वादिराजकृत) पार्श्वनाथकाव्यकी पजिका टीका,* १४ पल्यव्रतोद्यापन, १५ चतुस्त्रिंशदधिकद्वादशशतोद्यापन (१२३४ व्रतका उद्यापन), १६ संशयिवदनविदारण (श्वेताम्बरमतखण्डन), १७ अपशब्दखण्डन, १८ तत्त्वनिर्णय, १९ स्वरूपसम्बोधन (अकलकदेवकृत ^२) की वृत्ति, २० अध्यात्मपद्यटीका, २१ सर्वतोभद्र, २२ चिन्तामणि नामक× प्राकृतव्याकरण, २३ अगप्रज्ञप्ति, २४ अनेकस्तोत्र, २५ षड्वाद और पाण्डवपुराण ।

* यह ग्रन्थ स्वर्गीय सेठ माणिकचन्द्रजीके ग्रन्थभाण्डारमें मौजूद है ।

× यह ग्रन्थ माणिकचन्द्रग्रन्थमालामें प्रकाशित होनेवाला है ।

पाण्डवपुराण में संवत् १६८ में समाप्त हुआ है। अतएव इसके पहलेके लिये हुए ग्रन्थोंके ही नाम इस प्रसस्तिसे मासूम हो सकते हैं। पाण्डवपुराणके बाद भी उन्होंने अनेक ग्रन्थोंकी रचना की होगी और इसके प्रमाणमें हम दो ग्रन्थोंका पेश कर सकते हैं—एक तो स्वामिचार्तिकेयाज्ञुपेक्षाटीका जो संवत् १९१२ में समाप्त हुई है और दूसरा करकण्डुचरित्र जो संवत् १९११ में बना है। उक्त करनेसे इस तरहके और भी कई ग्रन्थोंका पता लगना संभव है।

४—श्रीयोगीन्द्रदेव ।

इस संमहके योगसार, निजात्माएक भार अमृताक्षीति नामक ग्रन्थोंके कर्ता आचार्य योगीन्द्रदेव हैं। इनमेंसे पहले अपभ्रंसमें बृहत् प्राकृतमें और चौथरा संस्कृतमें है। परमात्मब्रह्मणके कर्ता भी वही योगीन्द्रदेव हैं। योग सार और परमात्मब्रह्मणकी रचना अलग एक ही हैंपकी है दोनोंमें प्रायः शोहा अन्वय उपयोग किया गया है और संस्कारण दोनोंका अन्वय एकसा है। परमात्मब्रह्मणका संस्कारण देखिए:—

जे जाया ह्याप्यभियय, कम्मकळंक जहेषि ।

पिच्चपिरंज्जप्याजमय तं परमप्य जवेषि ॥ १

बोव्ठारमें भी इसीकी छाया है:—

पिम्मछह्याप्यपरिट्टिया, कम्मकळंक जहेषि ।

अप्या छज्ज जेप्य एह ते परमप्य जवेषि ॥ २

इससे इसमें तो कोई भी संदेह नहीं हो सकता कि इन दोनोंके कर्ता एक ही योगीन्द्रदेव हैं। निजात्माएक और अमृताक्षीतिके कर्ता भी वे ही ज्ञान पदके हैं। इन दोनोंका विषय भी योगीन्द्र देवका पारा योग तथा अन्वय है। अप्यात्मसन्तोह नामका ग्रन्थ भी इसीका बनाया हुआ पता जाता है, परन्तु अभी तक यह कहीं देखनेमें नहीं आया।

श्रीपद्मप्रभमहादेवकी विवमसार-टीका (४ ५९) में तथाचौकं श्रीयोगीन्द्रदेवैः कृत्वा मुच्यमानासिम्पुनर्मवसौक्यमूर्च्छं भावि पव अन्वय किया है जो अमृताक्षीति में नहीं है। संभव है कि यह पूर्वोक्त अप्यात्मसन्तोहका वा उनका अन्य किसी ग्रन्थका हो।

भाचार्य योगीन्द्रदेव कब हुए हैं, और वे किस सघके भाचार्य थे, इसका अभी तक कुछ भी पता नहीं लगा है ।

परमात्मप्रकाश प्रभाकरभट्टके सम्बोधनके लिए उसीकी प्रार्थनासे बनाया गया है, ऐसा उक्त ग्रन्थमें कई जगह उल्लेख है —

भार्विं पणविवि पंचगुरु सिरिजोइंदुजिणाऊ ।

भट्टपहायरि विण्णयउ, विमलकरेविणु भाउ ॥ ८

पुण पुण पणविवि पचगुरु, भार्विं चित्त धरेवि ।

भट्टपहायर णिसुणि तुहुं, अप्पा तिहुवि कहेवि ॥ ११

इत्थु ण लिच्चउ पंडियहिं, गुणदोसुवि पुणुरत्तु ।

भट्ट पमायरकारणइं, मइ पुणु पुणु वि पउत्तु ॥ ३४२

मालूम नहीं ये भट्टप्रभाकर कौन हैं । विद्यानन्दिस्वामीने अपने ग्रन्थोंमें प्रभाकरके और भट्टके सिद्धान्तोंका खण्डन किया है और वे दोनों बड़े भारी दार्शनिक हो गये हैं । 'भट्ट' कुमारिलभट्टका सक्षिप्त नाम है । क्या उनके हितके लिए योगीन्द्रदेवने परमात्मप्रकाशकी रचना की थी? परमात्मप्रकाशके सम्बोधनोंको और उसमें प्रभाकर भट्टकी विनीत प्रार्थनाओंको पढकर तो ऐसा नहीं जान पढता है कि वह कोई जैनेतर दर्शनका श्रद्धालु है । वह एक जगह कहता है—'सिरिगुरु अक्खहि मोक्ख महु'—हे श्रीगुरु मुझे मोक्ष बतला-इए । दूसरी जगह वह परमेष्ठीको नमस्कार करता है—'भार्विं पणविव पंचगुरु' । योगीन्द्रदेव भी उसे जगह जगह 'योगिन्' अर्थात् 'हे योगी' कहकर सम्बोधन करते हैं । इससे तो यही स्पष्ट होता है कि वह कोई योगीन्द्रदेवका ही जैन शिष्य है जिसे शुद्ध निश्चयका स्वरूप समझानेका प्रयत्न किया गया है ।

अमृताशीति (पृ० ९६) में विद्यानन्द स्वामीका 'अभिमतफलसिद्धेः' आदि श्लोक उद्धृत किया गया है और प्रभाकर तथा भट्ट विद्यानन्द स्वामीसे पहले हुए हैं अतएव उनका और योगीन्द्र देवका समसामयिक होना संभव नहीं है । अकलकदेवने भी प्रभाकर और भट्टका खण्डन किया है और अकलकदेव विद्यानन्द स्वामीसे भी पहलेके हैं ।

समयसारकी तात्पर्यवृत्तिमें जयसेनसूरिने योगीन्द्रदेवका निम्नलिखित दोहा उद्धृत किया है —

पाण्डवपुराण वि संवत् १६८ में समाप्त हुआ है। भगवद् इसके पहलेके रचे हुए ग्रन्थोंके ही नाम इस प्रसस्तिसे मासूम हो सकते हैं। पाण्डवपुराणके बाद भी उन्होंने अनेक ग्रन्थोंकी रचना की होगी और इसके प्रमाणमें हम जो ग्रन्थोंको पेश कर सकते हैं—एक तो स्वामिकाठिकेबाजुरेखाटीका जो संवत् १६११ में समाप्त हुई है और दूसरा करकण्ठचरित्र जो संवत् १६११ में बना है। उल्लेख करनेसे इस तरहके और भी कई ग्रन्थोंका पता लग्न संभव है।

४—श्रीयोगीन्द्रदेव ।

इस संग्रहके योगसार, निज्जलमाएक और अनूताशीति नामक ग्रन्थोंके कता आचार्य योगीन्द्रदेव है। इनमेंसे पहला अपभ्रंशमें दूसरा प्राकृतमें और तीसरा संस्कृतमें है। परमात्मप्रकाशके कर्ता भी यही श्रीयोगीन्द्रदेव है। योग सार और परमात्मप्रकाशकी रचना लगभग एक ही रङ्गकी है, दोनोंमें प्रायः शीघ्र ज्ञानका उद्बोध किया गया है और संयमचरण शीघ्रका अगमन एकसा है। परमात्मप्रकाशका संयमचरण देखिए—

ओ जाया ज्ञानाभियप, कम्मकळंक उहेवि ।

पिच्छानिरंजणप्राणमय ते परमप्य जणेवि ॥ १

योगसारमें भी इसीकी छाया है—

पिन्मकज्ञानपरिद्विया कम्मकळंक उहेवि ।

अप्या ज्ञानं अणं पक ते परमप्य जणेवि ॥ २

इससे इसमें तो कोई भी संदेह नहीं हो सकता कि इन दोनोंके कर्ता एक ही श्रीयोगीन्द्रदेव है। निजात्याहक और अनूताशीतिके कता भी ये ही नाम पड़ते हैं। इस शीघ्र बोध विषय भी श्रीयोगीन्द्रदेवका प्यारा योग तथा अभ्यास है। अप्पात्मसन्तोह नामका ग्रन्थ भी इन्हींका बनाया हुआ कहा जाता है। परन्तु अभी तक यह कहीं देखनेमें नहीं आया।

श्रीपद्मप्रभमकरभारिदेवकी निवमसार-टीका (पृ ५६) में तथाचोर्ट श्रीयोगीन्द्रदेवः कहकर मुख्यतया निज्जलमाएक नामकी ग्रन्थके विषयमें लिखा है जो अनूताशीति में नहीं है। संभव है कि यह पूर्वोक्त अप्पात्मसन्तोहका या उसके अन्तर्गत किसी ग्रन्थका हो।

आचार्य योगीन्द्रदेव कब हुए हैं, और वे किस सघके आचार्य थे, इसका अभी तक कुछ भी पता नहीं लगा है ।

परमात्मप्रकाश प्रभाकरभट्टके सम्बोधनके लिए उसीकी प्रार्थनासे बनाया गया है, ऐसा उक्त ग्रन्थमें कई जगह उल्लेख है —

भार्वि पणविवि पंचगुरु सिरिजोइंदुजिणाऊ ।

भट्टपहायरि विण्णयउ, विमलकरेविणु भाउ ॥ ८

पुण पुण पणविवि पंचगुरु, भार्वि चित्त धरेवि ।

भट्टपहायर णिसुणि तुहुं, अप्पा तिहुवि कहेवि ॥ ११

इत्थु ण लिच्चउ पंडियहिं, गुणदोसुवि पुणुरत्तु ।

भट्ट पमायरकारणइं, मइ पुणु पुणु वि पउत्तु ॥ ३४२

मालूम नहीं ये भट्टप्रभाकर कौन हैं । विद्यानन्दिस्वामीने अपने ग्रन्थोंमें प्रभाकरके और भट्टके सिद्धान्तोंका खण्डन किया है और वे दोनों बड़े भारी दार्शनिक हो गये हैं । 'भट्ट' कुमारिलभट्टका सक्षिप्त नाम है । क्या उनके हितके लिए योगीन्द्रदेवने परमात्मप्रकाशकी रचना की थी? परमात्मप्रकाशके सम्बोधनोंको और उसमें प्रभाकर भट्टकी विनीत प्रार्थनाओंको पढकर तो ऐसा नहीं जान पडता है कि वह कोई जैनेतर दर्शनका श्रद्धालु है । वह एक जगह कहता है—'सिरिगुरु अक्खहि मोक्ख महु'—हे श्रीगुरु मुझे मोक्ष बतला-इए । दूसरी जगह वह परमेष्ठीको नमस्कार करता है—'भार्वि पणविव पंचगुरु' । योगीन्द्रदेव भी उसे जगह जगह 'योगिन्' अर्थात् 'हे योगी' कहकर सम्बोधन करते हैं । इससे तो यही स्पष्ट होता है कि वह कोई योगीन्द्रदेवका ही जैन शिष्य है जिसे शुद्ध निश्चयका स्वरूप समझानेका प्रयत्न किया गया है ।

अमृताशीति (पृ० ९६) में विद्यानन्द स्वामीका 'अभिमतफलसिद्धेः' आदि श्लोक उद्धृत किया गया है और प्रभाकर तथा भट्ट विद्यानन्द स्वामीसे पहले हुए हैं अतएव उनका और योगीन्द्र देवका समसामयिक होना संभव नहीं है । अकलंकदेवने भी प्रभाकर और भट्टका खण्डन किया है और अकलंकदेव विद्यानन्द स्वामीसे भी पहलेके हैं ।

समयसारकी तात्पर्यवृत्तिमें जयसेनसूरिने योगीन्द्रदेवका निम्नलिखित दोहा उद्धृत किया है —

“योगीन्द्रदेवैरप्युक्त—

यद्यपि सत्यं त्वहं जगि मरुत्, बंधं यं मोक्षसु करेत् ।

जिह परमत्ये ओहया जिणधर एउ मयेह ॥

वद्यपि बबसेबसुरिका निश्चित समन माहम नहीं है; परन्तु उन्हींकी बबारे हुई पंचास्तिकावृत्तिकी एक प्रति विक्रम संवत् १३६९ की लिखी हुई है। यदि वह प्रति प्रत्य बबनेके कससे कम छी बपे पीछे मी लिखी गई होनी ती बबसेनाबाबकी विक्रमकी तेरहवीं शताब्दिमें मानना चाहिए भीर तब मोपीना बाबअ समन तेरहवीं शताब्दिके पहकेअ निश्चित होता है।

मिनाधसारकी भीपधप्रममकभारिदेवकृत टीकमें मी योगीन्द्रदेवके कुछ पद्य बबूत किमे मवे हैं; इससे माहम होता है कि वे पद्यप्रमदेवसे पहले हो मवे हैं और पद्यप्रमने पींचवे अघ्यायकी टीकके अन्तमें भीबीरनमि मुनिकी मम स्मर किना है:—

पस्य प्रतिक्रमणमेव सदा मुमुक्षो-

नास्सप्रतिक्रमणमप्यप्युमात्रमुखाः ।

तस्मै नमः सकलसंबन्धमूपणाय

भीबीरनमिमुनिनामधराय नित्यं ॥

इससे माहम होता है कि भीबीरनमि मुनि पद्यप्रमदेवके कोई समसामयिक बाबाय हैं भीर उन्हें वे पूज्य छिछे देखते हैं। भावर्ष्य नहीं कि वे उनके गुह ही हो। टीकके प्रारंभमें मी उन्हेनि सखिछाहर्ष भीरनमि घृतीन्द्रम् कहकर ममस्मर किना है। यदि वे बीरनमि बाबाधसारके कता भीरनमि छी हों भीर हमारा अनुमान है कि वे ही होंगे ती इससे पद्यप्रमअ समन विक्रम संवत् १३११ के अमग निश्चित हो जाता है। कसके बीरनमिने बाबाधसारके स्वकृत कबड़ी ब्याख्यानमें बबकी एबनाअ समन शक संवत् १ ७६ लिखा है—

“स्थितिभीममेधधम्न्रिषिधदेवर धीपाध्रसादासादितारम्य
भायसमस्तभिधामभायसकलदिग्वर्तिनीतिधीमहीरनमिर्संज्ञाम्नि
कथकपतिंगस्तु द्राकयै १०५६ धीमुगनामसंभरसरे ज्येष्ठ-

शुक्ल १ सोमवार दंडु तावु माडिदाचारसारपके कर्णाटवृत्तिय माडिदपर ॥”

यदि प्रज्ञप्रभका यह समय ठीक है, तो योगोन्द्रदेव वि० संवत् १२११ के भी पहलेके विद्वान् हैं ।

‘अमृताशीति’के ७८ और ७९ वे नम्वरके दो पद्य भर्तृहरिके वैराग्यशतकके हैं । जान पडता है कि ग्रन्थकर्ताने इन्हें ‘उक्त च’ रूपमें दिया होगा, परन्तु लेखकोंकी कृपासे ‘उक्त च’ उड़ गया है और ये मूल ग्रन्थके ही पद्य बन गये हैं । वैराग्यशतकमें भी ये इसी रूपमें मिलते हैं, केवल इतना अन्तर है कि पहले पद्यके पहले दो चरण आगे पीछे हैं । शतकमें इस प्रकार है,—

प्राप्ताः श्रियः सकलकामदुघास्ततः किं
दत्तं पदं शिरसि विद्धिपता ततः किं ।

इस ग्रन्थकी अन्य प्रतियोंमें ‘उक्त च’ पद अवश्य लिखा मिलेगा ।

योगसार और परमात्मप्रकाशकी भाषाके सम्बन्धमें हम इतना और कह देना चाहते हैं कि जैसा बहुत लोगोंने समझ रक्खा है, वह प्राकृत नहीं है किन्तु अपभ्रंश है जो एक समय लोकभाषा या बोलचालकी भाषा रह चुकी है और दिगम्बर विद्वानोंने जिसमें सैकड़ों ग्रन्थोंकी रचना की है । इसके प्रयोग प्राकृत व्याकरणके नियमोंसे सिद्ध नहीं होते हैं । जर्मनीके सुप्रसिद्ध विद्वान् डा० हर्मन जेकोबीने अभी कुछ ही समय पहले दिगम्बर कवि पंडित धनपालके ‘पंचमी-कहा’ (पञ्चमीकथा) नामक ग्रन्थको प्रकाशित करके इस भाषाके सम्बन्धमें बहुत गहरा प्रकाश डाला है । इस भाषाका साहित्य सम्वत चौथी पाँचवीं शताब्दिसे प्रारंभ होता है । जैनसमाजके पण्डितोंका ध्यान हम इस भाषाकी ओर खास तौरसे अकर्षित करते हैं । अभी अभी हमारी नजरसे इस भाषाके कई अच्छे-अच्छे ग्रन्थ गुजर चुके हैं ।

५-अजित ब्रह्मचारी ।

‘कल्याणालोचना’ या कल्याणालोचना नामक प्राकृत ग्रन्थके कर्ता अजितब्रह्म या अजित ब्रह्मचारी हैं जैसा कि इस ग्रन्थकी अन्तिम गाथासे मालूम होता है । ये सम्वत वे ही हैं जिन्होंने ‘हनुमच्चरित्र’ नामका एक संस्कृत ग्रन्थ रचा है । सुहृद्वर बाबू जुगलकिशोरजीने उक्त ग्रन्थको देखा है । उससे

“योगीन्द्रदेवैरप्युक्तं—

प्राधि सप्यञ्जल प्राधि मरुत्, बंध य मोक्षस्तु करोत् ।

सिद्ध परमरथे जोइया, सिद्धबट पठ मजेत् ॥

वद्यपि बनसेनसुरिश्च निरिच्छत समन माह्वय नहीं है, परन्तु उन्हींकी वकई हुई पंचास्तिकावगुणित्थी एक प्रति सिद्ध संवत् १३९९ की सिद्धी हुई है । यदि यह प्रति प्रकृत बननेके कर्मके कम सौ वर पीछे भी सिद्धी गई होगी तो चानेनाचार्यकी सिद्धकी तेरहवीं शताब्दिमें माधना चाधिप और तब योगीन्द्र चार्यका समय तेरहवीं शताब्दिके पहलेका निश्चित होता है ।

सिद्धसारकी श्रीपद्मप्रममन्वहारिदेवकृत टीकामें भी योगीन्द्रदेवके कुछ पद उद्धृत किये गये हैं; इससे माह्वय होता है कि वे पद्मप्रमदेवके पहले हो गये हैं और पद्मप्रमने पूर्वमें अर्थात्की टीकाके अन्तमें श्रीवीरनन्दि मुनिको वन्दन स्मरण किया है:—

पस्थ प्रतिक्रमणमेव सदा मुमुक्षो-

नास्त्यप्रतिक्रमणमप्यणुमात्रमुच्चैः ।

तस्मै नमः सकलसंयमभूपप्याय

श्रीवीरनन्दिमुनिनामधराय नित्यं ॥

इससे माह्वय होता है कि श्रीवीरनन्दि मुनि पद्मप्रमदेवके कोई समसामयिक आचार्य हैं और उन्हें वे पूज्य उचिते वेदते हैं । आश्चर्य नहीं कि वे उनके गुण ही हों । टीकाके प्रारम्भमें भी उन्होंने तद्विद्यालय वीरनन्दि श्रुतीश्रुतम् कहकर वन्दन स्मरण किया है । यदि वे वीरनन्दि आचार्यके कर्ता वीरनन्दि ही हों और इत्यादि अनुपपन्न है कि वे ही होंगे तो इससे पद्मप्रमका समय सिद्ध संवत् १३९९ के आसप निश्चित हो जाता है । क्योंकि वीरनन्दिने आचार्य के स्वकृत कर्मकी व्वाक्यात्ममें उसकी रचनाका समय एक संवत् १ ७९ किया है—

“स्वस्तिश्रीमग्नेषधम्नैर्बिद्यदेवर श्रीपापप्रसादासाहिताराम
भापसमस्तविद्याप्रमावसकलविगर्तिकीर्तिश्रीमन्वीरनन्दिनीश्यास्ति
वचनपरिगतु प्राकपर्य १७७९ श्रीमुखनामसंपरसरे ज्येष्ठ

शुक्ल १ सोमवार दंडु तावु माडिदाचारसारक्के कर्णाटवृत्तिय माडिदपर ॥”

यदि प्रज्ञप्रभका यह समय ठीक है, तो योगीन्द्रदेव वि० संवत् १२११ के भी पहलेके विद्वान् हैं ।

‘अमृताशीति’के ७८ और ७९ वे नम्वरके दो पद्य भर्तृहरिके वैराग्यशतकके हैं । जान पडता है कि ग्रन्थकर्ताने इन्हें ‘उक्त च’ रूपमें दिया होगा, परन्तु लेखकोंकी कृपासे ‘उक्त च’ उड़ गया है और ये मूल ग्रन्थके ही पद्य बन गये हैं । वैराग्यशतकमें भी ये इसी रूपमें मिलते हैं, केवल इतना अन्तर है कि पहले पद्यके पहले दो चरण आगे पीछे हैं । शतकमें इस प्रकार है:—

प्राप्ताः श्रियः सकलकामदुघास्ततः किं

दत्तं पदं शिरसि विद्धिपतां ततः किं ।

इस ग्रन्थकी अन्य प्रतियोंमें ‘उक्त च’ पद अवश्य लिखा मिलेगा ।

योगसार और परमात्मप्रकाशकी भाषाके सम्बन्धमें हम इतना और कह देना चाहते हैं कि जैसा बहुत लोगोंने समझ रक्खा है, वह प्राकृत नहीं है किन्तु अपभ्रंश है जो एक समय लोकभाषा या बोलचालकी भाषा रह चुकी है और दिगम्बर विद्वानोंने जिसमें सैकड़ों ग्रन्थोंकी रचना की है । इसके प्रयोग प्राकृत व्याकरणके नियमोंसे सिद्ध नहीं होते हैं । जर्मनीके सुप्रसिद्ध विद्वान् डा० हर्मन जेकोवीने अभी कुछ ही समय पहले दिगम्बर कवि पंडित धनपालके ‘पंचमी-कहा’ (पञ्चमीकथा) नामक ग्रन्थको प्रकाशित करके इस भाषाके सम्बन्धमें बहुत गहरा प्रकाश डाला है । इस भाषाका साहित्य समवत चौथी पाँचवीं शताब्दिसे प्रारंभ होता है । जैनमहाजके पण्डितोंका ध्यान हम इस भाषाकी ओर खास तौरसे अकर्षित करते हैं । अभी अभी हमारी नजरसे इस भाषाके कई अच्छे अच्छे ग्रन्थ गुजर चुके हैं ।

५-अजित ब्रह्मचारी ।

‘कल्याणालोचना’ या कल्याणालोचना नामक प्राकृत ग्रन्थके कर्ता अजितब्रह्म या अजित ब्रह्मचारी हैं जैसा कि इस ग्रन्थकी अन्तिम गाथासे मालूम होता है । ये समवत वे ही हैं जिन्होंने ‘हनुमच्चरित्र’ नामका एक संस्कृत ग्रन्थ रचा है । सुहृद्वर वावू जुगलकिशोरजीने उक्त ग्रन्थको देखा है । उससे

“योगीन्द्रदेवैरप्युक्त—

जपि उप्यस्यद् जपि मरद् बंध एव मोक्षसु करेत् ।

अित परमत्ये ओहया अिष्यथ एव मणेह ॥

यद्यपि जपसेवसुरिष्य निरिषत समय माह्यम नहीं है; परन्तु उन्हींकी बगल ही पंचास्तिकावृत्तिकी एक प्रति विक्रम संवत् १३९९ को लिखी हुई है। यदि यह प्रति प्रत्य बननेके कम्पे कम ही बने पीछे मी लिखी गई होगी तो जपसेवाचार्यको विक्रमकी तेरहवीं सताब्दिमें मानना चाहिए और तब योगीन्द्राचार्यस्य समय तेरहवीं सताब्दिके पहलेका निरिषत होता है।

मित्रमसारकी भीषघप्रममकवारीदेवकृत टीकामें भी योगीन्द्रदेवके कुछ पद्य उद्धृत किये गये हैं; इससे माह्यम होता है कि वे पद्यप्रमदेवके पहले ह्ये गये हैं और पद्यप्रमने पीचमें जप्यावकी टीकाके जन्तमें श्रीवीरवन्दि मुनिको नम स्कार किया है:—

यस्य प्रतिक्रमणमेव सदा मुमुक्षो-

मौस्त्वप्रतिक्रमणमण्यणुमात्रमुषीः ।

तरुमे नमः सकलसयममूपण्याय

भीषीरवन्दिमुनिनामघणाय निरर्ष ॥

इससे माह्यम होता है कि श्रीवीरवन्दि मुनि पद्यप्रमदेवके कोई समकालिक आचार्य है और उन्हीं वे पूज्य दृष्टिसे देखते हैं। आश्चर्य नहीं कि वे उनके गुरु ही हों। टीकाके प्रारंभमें भी उन्हींने तद्विद्यादर्ष श्रीरवन्दि सुतीन्द्रम् कहकर नमस्कार किया है। यदि वे वीरवन्दि आचार्यारके कृत श्रीरवन्दि ही हों और हमारा अनुमान है कि वे ही होंगे तो इससे पद्यप्रमका सकल विक्रम संवत् १३९९ के समय निरिषत ही जाता है। क्योंकि वीरवन्दिने आचार्यारके स्तुत कनड़ी व्याकरणमें उसकी रचनाका समय एक संवत् १७९ लिखा है:—

“स्यस्तिभीमग्नेषधम्प्रीषिषवेयव भीषाद्प्रसादासादितारामप्र भावसमस्तपिषायमायसकलद्विषतिकीर्तिर्भीमश्रीरवन्दिर्महास्ति कश्चकपतिंगसु शक्यर्ष १७७३ श्रीसुरनामसंघरसरे ज्येष्ठ

शुक्ल १ सोमवार दंडु तावु माडिदाचारसारफके फर्णाट्टवृत्तिय माडिदपर ॥”

यदि प्रद्युम्नका यह समय ठीक है, तो योगीन्द्रदेव वि० संवत् १२११ के भी पहलेके विद्वान् हैं।

‘अमृताशीति’के ७८ और ७९ वे नम्बरके दो पद्य भर्तृहरिके वैराग्यशतकके हैं। जान पड़ता है कि ग्रन्थकर्ताने इन्हें ‘उक्त च’ रूपमें दिया होगा, परन्तु लेखकोंकी कृपासे ‘उक्त च’ उड़ गया है और ये मूल ग्रन्थके ही पद्य बन गये हैं। वैराग्यशतकमें भी ये इसी रूपमें मिलते हैं, केवल इतना अन्तर है कि पहले पद्यके पहले दो चरण आगे पीछे हैं। शतकमें इस प्रकार है:—

प्राप्ताः श्रियः सकलकामदुवास्तत. किं

दत्तं पद् शिरसि विद्धिपता ततः किं ।

इस ग्रन्थकी अन्य प्रतियोंमें ‘उक्त च’ पद अवश्य लिखा मिलेगा।

योगसार और परमात्मप्रकाशकी भाषाके सम्बन्धमें हम इतना और कह देना चाहते हैं कि जैसा बहुत लोगोंने समझ रक्खा है, वह प्राकृत नहीं है किन्तु अपभ्रंश है जो एक समय लोकभाषा या बोलचालकी भाषा रह चुकी है और दिगम्बर विद्वानोंने जिसमें सैकड़ों ग्रन्थोंकी रचना की है। इसके प्रयोग प्राकृत व्याकरणके नियमोंसे सिद्ध नहीं होते हैं। जर्मनीके सुप्रसिद्ध विद्वान् डा० हर्मन जेकोथीने अभी कुछ ही समय पहले दिगम्बर कवि पंडित धनपालके ‘पंचमी—कहा’ (पञ्चमीकथा) नामक ग्रन्थको प्रकाशित करके इस भाषाके सम्बन्धमें बहुत गहरा प्रकाश डाला है। इस भाषाका साहित्य संभवतः चौथी पाँचवीं शताब्दिसे प्रारम्भ होता है। जैनमहाजके पण्डितोंका ध्यान हम इस भाषाकी ओर खास तौरसे अर्पित करते हैं। अभी अभी हमारी नजरसे इस भाषाके कई अच्छे अच्छे ग्रन्थ गुजर चुके हैं।

५—अजित ब्रह्मचारी ।

‘कल्याणालोचना’ या कल्याणालोचना नामक प्राकृत ग्रन्थके कर्ता अजितब्रह्म या अजित ब्रह्मचारी हैं जैसा कि इस ग्रन्थकी अन्तिम गाथासे मालूम होता है। ये संभवतः वे ही हैं जिन्होंने ‘हनुमच्चरित्र’ नामका एक संस्कृत ग्रन्थ रचा है। सुहृदर बाबू जुगलकिशोरजीने उक्त ग्रन्थको देखा है। उससे

महाम होता है कि वे १६ वीं सताब्दिमें हुए हैं। ये देवेन्द्रकीर्तिके शिष्य थे। इसके पिताका नाम बीरसिंह, माताका बीषा या पूषी और बंस योकरांगर (गोक सिंघाडे) था। म विद्याभित्तके आदेशसे इन्होंने सगुणध्व मय (मरौच) में इन्द्रमन्त्रिकी रचना की थी। स्व बाबा बुडीचन्द्रजीकी मन्त्र नाममात्रमें उत्सवपद्धति नामका एक और मन्त्र इका बनाया हुआ बतलाया गया है।

६-आचार्य श्री शिवफोटि ।

आचार्य शिवफोटि विगम्बरसम्प्रदायमें एक बहुत ही प्रसिद्ध आचार्य हो गये हैं। उनका बनाया हुआ 'भगवती आराधना' नामका प्राकृत मन्त्र बहुत ही प्रचीन है। इसकी रचनाशैली और इसकी भाषा भी इसकी प्राचीनताकी सखी देती है।

इस मन्त्रकी प्रकृतिकी नीचे लिखी हुई गाथायें पढ़िए:—

मञ्ज जिज्जन्दिगणि सध्वगुत्तगोप्य भस्त्र मिच्छर्षीर्ष ।

अवगमिय पाद्मूले सर्म सुत्तं च अत्यं च ॥ ६१ ॥

पुष्पापरियणिवन्दा उषजीविता इमा स सत्तीप ।

आराधना सिबद्धेण पाण्डिसमोयिणा रइवा ॥ ६२ ॥

आराधना भगवती पर्यं मत्तीप वण्णिका संती ।

संयन्त्र सिबद्धसु व समाधिवरमुत्तमं देव ॥ ६४ ॥

अर्थ—आय जिज्जन्दि गणि सर्पगुप्त वणि और आर्ष मित्रमन्त्रिके पर गोक सिद्ध सुत्र और अर्षको अर्षी तरह समझकर पाण्डिसमोयी (पाणिपात्र) शिवार्चने वह आराधना रणी। वह भगवती आराधना इस तरह मन्त्रपूर्वक वर्णित हुई संज्ञको और शिवार्चको उत्तम समाधि देवे।

इससे महाम होता है कि इस मन्त्रके कर्त्तका नाम शिवार्च था। अपने तीनों पुत्रभक्त नामके साथ उन्होंने 'आर्ष' विशेषण दिया है। इससे जान पड़ता है कि उनके नामके साथ ही 'आर्ष' शब्द है, वह भी विशेषण ही है और इस लिए उनके नाम शिवमन्त्र शिवगुप्त या ऐसा ही कुछ होय जिसे कि संक्षेपमें 'शिव' कहा जा सकता है।

मन्त्रविशेषज्ञाचार्यने अपने आदिपुत्राके प्रारम्भ में शिवफोटि आचार्यका स्मरण किया है:—

शीतीभूतं जगद्यस्य वाचाराध्यचतुष्टयं ।

मोक्षमार्गं स पायान्नः शिवकोटिमुनीश्वरः ॥ ४९

इस श्लोकके 'आराध्यचतुष्टय' पदसे भगवती आराधनाका ही बोध होता है और इससे मालूम होता है कि उनका पूरा नाम आर्य शिवकोटि था । भगवती आराधनामें इसी नामको सक्षिप्तरूपसे 'आर्य शिव' या 'शिवार्य' लिखा है ।

आराधनाकथाकोशमें समन्तभद्र स्वामीकी जो कथा मिलती है उसमें लिखा है कि शिवकोटि वाराणसीके राजा थे और वे शैव थे । समन्तभद्र स्वामीने उनके समक्ष 'शिवलिङ्ग' को अपने स्तोत्रके प्रभावसे फोड़कर उसमेंसे 'चन्द्रप्रभ' की प्रतिमा प्रकट की थी । इससे उक्त राजा उनका शिष्य बन गया था और उसीने मुनि अवस्थामें भगवती आराधनाकी रचना की थी । परन्तु इस बातपर विश्वास नहीं होता कि भगवती आराधनाके कर्ता वही शिवकोटि राजा होंगे जो समन्तभद्रके शिष्य हो गये थे । यदि ये वही होते तो यह कदापि संभव नहीं था कि वे अपने इतने बड़े ग्रन्थमें अपने परमगुरु समन्तभद्रका कहीं उल्लेख भी नहीं करते । कमसे कम उनका स्मरण तो अवश्य ही करते । उन्होंने अपने जिन तीन गुरुओंका स्मरण किया है और जिनके चरणोंके निकट बैठकर उन्होंने अपने ग्रन्थके पदार्थको समझा है, उनमें भी समन्तभद्रका नाम नहीं है । अतएव उक्त कथाको छोड़कर जब तक कोई दूसरा प्रबल प्रमाण न मिले, तब तक कमसे कम यह बात सन्देहास्पद अवश्य है ।

हमारी निजकी राय तो यह है कि भगवती आराधना समन्तभद्र स्वामीसे भी पहलेकी रचना है ।

बहुतसे लोगोंका खयाल है कि शिवकोटिका ही दूसरा नाम शिवायन है, परन्तु विक्रान्त कौरवीय नाटकमें शिवकोटि और शिवायनको जुदा जुदा बतलाया है और लिखा है कि ये दोनों ही समन्तभद्रके शिष्य थे — "शिष्यौ तदीयौ शिवकोटिनामा, शिवायन. शास्त्रविदां वरिष्ठौ ।"

अभी तक भगवती आराधनाको छोड़कर शिवकोटि आचार्यका और कोई भी ग्रन्थ नहीं सुना गया है और न कहीं किसीने उसका उल्लेख ही किया है । परन्तु अभी हाल ही यह 'रत्नमाला' नामक छोटासा ग्रन्थ उपलब्ध हुआ है जिसके अन्तमें इसके कर्ताका नाम शिवकोटि प्रकट किया गया है और ग्रन्थके अ

प्रसिद्ध होता है कि वे १६ वीं सताब्दिमें हुए हैं। वे देवेन्द्रकीर्तिके शिष्य थे। इनके पिताका नाम बीरसिंह माताका बीबा का पृथ्वी और बंध गोळगरेगार (गोक सिंघाडे) का। म विद्यानन्दिके आवेससे इन्होंने मृगुकण्ठ नगर (भरौच) में हनुमन्तरिषकी रचना की थी। स्व बाबा हुकीचन्द्रजीकी प्रन्ध नाममात्रमें उत्सवपत्राति नामका एक और प्रन्ध इनका बनाया हुआ बतलया गया है।

६-आचार्य श्री शिवकोटि ।

आचार्य शिवकोटि दिगम्बरसम्प्रदायमें एक बहुत ही प्रसिद्ध आचार्य हो पये हैं। उनका बनाया हुआ 'भगवती आराधना' नामका प्रसिद्ध प्रन्ध बहुत ही प्राचीन है। इसकी रचनासली और इसकी भाषा भी इसकी प्राचीनतन्त्री साही होती है।

इस प्रन्धकी प्रचलितकी नीचे लिखी हुई याचार्ने पढ़िए—

अस्मि जिजर्णदिगणि सध्वगुत्तगोप्य अस्मि मित्तर्णदीर्ण ।

अवगमिय पादमूले समं सुत्तं च अर्त्यं च ॥ ११ ॥

पुष्पायरिषणियदा तषजीभित्ता इमा स सत्तीप ।

आराधणा सिवज्ञेय पाण्डित्कमोयिष्ठा रहदा ॥ १२ ॥

आराधणा भगवती एवं भत्तीप वण्णिया न्ती ।

संभस्स सिवज्ञास थ समाधिबरमुत्तमं वड ॥ १४ ॥

अर्थात्—आर्य शिवनन्दि पनि सर्वगुप्त पनि और आर्य शिवनन्दिके घर बोकें सिद्ध सूत्र और अर्चको अच्छी तरह समझकर पाण्डित्कमोयी (पाणिपात्र) शिवायने यह आराधना रची। यह भगवती आराधना इस तरह अधिकपूर्वक वर्णित हुई संकषे और शिवायको उत्तम समाधि देने।

इससे माहम होता है कि इस प्रन्धके कर्ताका नाम शिवाय का। अपने तीनों पुत्रबोकें नामके साथ उन्होंने आर्य' विशेषण दिया है। इससे जान पड़ता है कि उनके नामके साथ भी आर्य' लब्ध है यह भी विशेषण ही है और इस लिए ब्रह्मा नाम शिवनन्दि शिवगुप्त या ऐसा ही कुछ होना जिसे कि संक्षेपमें 'शिव' कहा जा सकता है।

मण्डविजयदेवाचार्यने अपने आदिपुराणके प्रारंभमें शिवकोटि आचार्यका स्मरण किया है।—

शीतीभूतं जगद्यस्य वाचाराध्यचतुष्टयं ।

मोक्षमार्गं स पायान्नः शिवकोटिमुनीश्वरः ॥ ४९

इस श्लोकके 'आराध्यचतुष्टय' पदसे भगवती आराधनाका ही बोध होता है और इससे मालूम होता है कि उनका पूरा नाम आर्य शिवकोटि था । भगवती आराधनामें इसी नामको सक्षिप्तरूपसे 'आर्य शिव' या 'शिवार्य' लिखा है ।

आराधनाकथाकोशमें समन्तभद्र स्वामीकी जो कथा मिलती है उसमें लिखा है कि शिवकोटि वाराणसीके राजा थे और वे शैव थे । समन्तभद्र स्वामीने उनके समक्ष 'शिवलिङ्ग' को अपने स्तोत्रके प्रभावसे फोड़कर उसमेंसे 'चन्द्रप्रभ' की प्रतिमा प्रकट की थी । इससे उक्त राजा उनका शिष्य बन गया था और उसीने मुनि अवस्थामें भगवती आराधनाकी रचना की थी । परन्तु इस बातपर विश्वास नहीं होता कि भगवती आराधनाके कर्ता वही शिवकोटि राजा होंगे जो समन्तभद्रके शिष्य हो गये थे । यदि ये वही होते तो यह कदापि संभव नहीं था कि वे अपने इतने बड़े ग्रन्थमें अपने परमगुरु समन्तभद्रका कहीं उल्लेख भी नहीं करते । कमसे कम उनका स्मरण तो अवश्य ही करते । उन्होंने अपने जिन तीन गुरुओंका स्मरण किया है और जिनके चरणोंके निकट बैठकर उन्होंने अपने ग्रन्थके पदार्थको समझा है, उनमें भी समन्तभद्रका नाम नहीं है । अतएव उक्त कथाको छोड़कर जब तक कोई दूसरा प्रबल प्रमाण न मिले, तब तक कमसे कम यह बात सन्देहास्पद अवश्य है ।

हमारी निजकी राय तो यह है कि भगवती आराधना समन्तभद्र स्वामीसे भी पहलेकी रचना है ।

बहुतसे लोगोंका खयाल है कि शिवकोटिका ही दूसरा नाम शिवायन है, परन्तु विक्रान्त कौरवीय नाटकमें शिवकोटि और शिवायनको जुदा जुदा बतलाया है और लिखा है कि ये दोनों ही समन्तभद्रके शिष्य थे — "शिष्यौ तदीयौ शिवकोटिनामा, शिवायन. शास्त्रविदा वरिष्ठौ ।"

अभी तक भगवती आराधनाको छोड़कर शिवकोटि आचार्यका और कोई भी ग्रन्थ नहीं सुना गया है और न कहीं किसीने उसका उल्लेख ही किया है । परन्तु अभी हाल ही यह 'रत्नमाला' नामक छोटासा ग्रन्थ उपलब्ध हुआ है जिसके अन्तमें इसके कर्ताका नाम शिवकोटि प्रकट किया गया है और ग्रन्थके अन्तकी

बौद्धों तो उन्हें 'स्वामिसमस्तमग्रशिष्य' तक लिख दिया गया है। इसका भी पहले नहीं बताया था कि वह उन विद्यार्थियों ही प्रमाण है विद्यार्थी स्मरण आदिपुत्रणके कृताने किया है और इस सम्बन्धमें हमने वैदहितोपीमें एक छोटीसा नोट भी लिखा था; परन्तु प्रन्वकी अच्छी तरह पढ़नेसे अब हमें इस विषयमें बहुत कुछ सन्देह हो गया है। हमारी समझमें यह प्रन्व इतना प्राचीन नहीं हो सकता। यह अपेक्षाकृत आधुनिक है और वा तो इसके अन्तिम श्लोकके शिष्यकोटिस्वामानुयात् पढ़ते ही किसीने इसके कर्ताके नामकी सम्प्रदाय कर ली है और यदि इस पदमें कर्ताने अपना नाम भी लिखित किया है तो वे कोई दूसरे ही विद्यार्थी हैं।

इस प्रन्वका नीचे लिखा हुआ श्लोक देखिए—

कञ्ची काळे बने वासा वर्णते मुनिसत्तमा ।

स्वीयते च जिनागारे भ्रामादिपु विशेषता ॥ २२

अर्थात् इस कविचन्द्रमें मुनियोंको वर्णमें व रखा चाहिए। भेदमुनियोंके इसको वर्णित बतलाना है। इस समय उन्हें वैदमित्तिरोमें विशेष करके प्रामादिकोंमें रखना चाहिए।

इससे यह साफ प्रकट होता है कि वह उस समयकी रचना है जब विष्ण्वर सम्प्रदायमें वैतव्यास * अच्छी तरह बस रहा था और इसके अनुयायी इतने प्रबल हो गये थे कि उन्होंने वर्णोंमें रक्षा वर्णित तक बतला दिया था। मन्दिरोमें और प्रामोंमें रहनेको किसी तरह बावब बतलाना दूसरी बात है और कन्धीमें रक्षा चाहिए वर्णमें नहीं यह दूसरी बात है।

यन्वकी आराधनाका स्वाभाव करनेवाके सखन इस बातपर अच्छी तरह विचार करें कि उसके कर्ता अपने इस दूसरे प्रन्वमें क्या इस तरहका विचार कर सकते हैं।

जैनसाहु अकाशमेंसे धी-धिके निमित्त बसप्रह्व नहीं करते। भावकोंसे प्रप्त किया हुआ प्राणक बस ही उनके अग्र्य जाता है। परन्तु इसमें इस विषयके विचार किया है—

* वैतव्यासी और वनवासी साधुओंके विषयमें वैदहितोपी मात १४ अंक ४५ पर विस्तृत लेख देखिए।

पाषाणोत्स्फुटितं तोयं घटीयंत्रेण ताडितं ।
 सद्यः सन्तसवापीनां प्रासुकं जलमुच्यते ॥ ६३ ॥
 देवर्षीणा प्रशौचाय स्नानाय च गृहार्थिनां ।
 अप्रासुकं परं वारि महातीर्थजमप्यदः ॥ ६४ ॥

इस विधानसे भी हम यही अनुमान करते हैं कि यह ग्रन्थ आधुनिक है और भगवती आराधनाके कर्ताका तो कदापि नहीं है ।

इस ग्रन्थको विचारपूर्वक पढनेसे इस तरहकी और भी अनेक बातें मालूम हो सकती हैं ।

इस ग्रन्थका ६५ वाँ श्लोक यशस्तिलक चम्पूके उपासकाध्ययनके एक श्लोकसे विलकुल मिलता जुलता हुआ है और ऐसा मालूम होता है कि उसी परसे लिया गया है । चम्पूका वह श्लोक इस प्रकार है —

सर्वमेव हि जैनाना प्रमाणं लौकिको विधिः ।
 यत्र सम्यक्त्वहानिर्न यत्र न व्रतदूषणम्

यशस्तिलक शक सवत् ८८१ (वि० सवत् १०१६) में समाप्त हुआ है । इस ग्रन्थमें कोई खास विशेषता नहीं है । मामूली उपदेशरूप ग्रन्थ है जिसमें श्रावकाचारसम्बन्धी प्रकीर्णक बातें लिखी गई हैं । एक महान् आचार्यकी कृतिके योग्य इसमें कुछ भी नहीं है ।

७-श्रीमाघनन्दि योगीन्द्र ।

ये 'शास्त्रसारसमुच्चय' नामक सूत्रग्रन्थके कर्ता हैं । इस नामके भी कई आचार्य हो गये हैं, इस कारण नहीं कहा जा सकता कि इसके कर्ता कौनसे माघनन्दि हैं । कर्नाटक-कवि-चरित्रके अनुसार एक माघनन्दिका समय ईस्वी सन् १२६० (वि० सवत् १३१७) है और उन्होंने इस शास्त्रसारसमुच्चयपर एक कनडी टीका लिखी है तथा माघनन्दि-श्रावकाचारके कर्ता भी यही हैं । इससे मालूम होता है कि शास्त्रसारसमुच्चय (मूल) के कर्ता इनसे पहले हुए हैं और उनका समय भी विक्रमकी चौदहवीं शताब्दिसे पहले समझना चाहिए ।

मद्रासकी ओरियण्टल लायब्रेरीमें 'प्रतिष्ठाकल्पटिप्पण' या 'जिनसंहिता' नामका एक ग्रन्थ है । उसके प्रारंभमें लिखा है —

पंथमें तो उन्हें 'स्वामिसमन्तमद्रशिष्य' तक लिख दिया गया है। हमारा भी पढ़ते यही कथाक था कि वह उन शिवकोटिछा ही प्रन्थ है शिवका स्मरण आदिपुराणके कर्त्तवि किना है और इस सम्बन्धमें हमने वैचरितैषीमें एक छोटासा मीट भी लिखा था, परन्तु प्रन्थको अच्छी तरह पढ़नेसे अब हमें इस शिवमें बहुत कुछ सम्येह हो गया है। हमारी समझमें वह प्रन्थ इतना प्राचीन नहीं हो सकता। वह अपेक्षाकृत आधुनिक है और या तो इसके अन्तिम शोकके शिवकोटिस्वमाप्नुयात् पढ़ते ही किशोने इसके कर्त्ताके नामकी कल्पना कर ली है और नहि इस पदमें कर्त्तवि अपना शय भी अन्तित किना है तो वे कोई दूसरे ही शिवकोटि हैं।

इस प्रन्थका मीचे लिखा हुआ शोक देखिए—

कसौ काखे वस वासो जय्यते मुनिसत्तमैः ।

स्वीयते च जिनागारे प्रामादिपु विद्योपतः ॥ २२

अर्थात् इस कम्पिनाकमें मुनिबोको बनमें न रहना चाहिए। श्रेष्ठमुनिबोने इसको वर्जित बतलाना है। इस समय उन्हें जैनमन्दिरोमें विशेष करके प्रयास किशोमें ठहरना चाहिए।

इससे यह साफ प्रकट होता है कि वह उस समयकी रचना है जब विष्ण्वर सम्प्रदानमें वैश्यास * अच्छी तरह बक पया था और इसके अनुयायी इतने प्रकल हो गये थे कि उन्होंने बनमें रहना वर्जित तक बतलाना दिया था। मन्दिरोमें और प्रामोंमें रहनेको किसी तरह जायज बतलाना दूसरी बात है और बन्दीमें रहना चाहिए बनमें नहीं वह दूसरी बात है।

मयवती आराधनाका स्वाम्भान करनेवाके सम्जन इस बातपर अच्छी तरह लिखा करे कि उसके कर्त्ता अपने इस दूसरे प्रन्थमें नवा इस तरहका विधान कर सकते हैं।

जैनसाधु ब्रह्मचर्यमें ही जीनादिके निश्चित ब्रह्मचर्य नहीं करते। प्रायकोषि प्राप्त किना हुआ प्रायक बक ही उनके काम आता है। परन्तु इतमें इस शिव मके विद्वत् लिखा है—

* वैश्याशी और बनवाशी साधुओंके शिवमें वैचरितैषी माप १४ अंश ४५ का विरहित शोक देखिए।

पापाणोत्स्फुटितं तोयं घटीयंत्रेण ताडितं ।
 सद्यः सन्तप्तवापीनां प्रासुकं जलमुच्यते ॥ ६३ ॥
 देवर्षीणां प्रशौचाय स्नानाय च गृहार्थिनां ।
 अप्रासुकं परं वारि महातीर्थजमप्यदः ॥ ६४ ॥

इस विधानसे भी हम यही अनुमान करते हैं कि यह ग्रन्थ आधुनिक है और भगवती आराधनाके कर्ताका तो कदापि नहीं है ।

इस ग्रन्थको विचारपूर्वक पढ़नेसे इस तरहकी और भी अनेक बातें मालूम हो सकती हैं ।

इस ग्रन्थका ६५ वाँ श्लोक यशस्तिलक चम्पूके उपासकाध्ययनके एक श्लोकसे बिलकुल मिलता जुलता हुआ है और ऐसा मालूम होता है कि उसी परसे लिया गया है । चम्पूका वह श्लोक इस प्रकार है —

सर्वमेव हि जैनानां प्रमाणं लौकिको विधिः ।

यत्र सम्यक्त्वहानिर्न यत्र न व्रतदूषणम्

यशस्तिलक शक सवत् ८८१ (वि० सवत् १०१६) में समाप्त हुआ है । इस ग्रन्थमें कोई खास विशेषता नहीं है । मामूली उपदेशरूप ग्रन्थ है जिसमें श्रावकाचारसम्बन्धी प्रकीर्णक बातें लिखी गई हैं । एक महान् आचार्यकी कृतिके योग्य इसमें कुछ भी नहीं है ।

७-श्रीमाघनन्दि योगीन्द्र ।

ये 'शास्त्रसारसमुच्चय' नामक सूत्रग्रन्थके कर्ता हैं । इस नामके भी कई आचार्य हो गये हैं, इस कारण नहीं कहा जा सकता कि इसके कर्ता कौनसे माघनन्दि हैं । कर्नाटक-कवि-चरित्रके अनुसार एक माघनन्दिका समय ईस्वी सन् १२६० (वि० सवत् १३१७) है और उन्होंने इस शास्त्रसारसमुच्चयपर एक कनडी टीका लिखी है तथा माघनन्दि-श्रावकाचारके कर्ता भी यही हैं । इससे मालूम होता है कि शास्त्रसारसमुच्चय (मूल) के कर्ता इनसे पहले हुए हैं और उनका समय भी विक्रमकी चौदहवीं शताब्दिसे पहले समझना चाहिए ।

मद्रासकी ओरियण्टल लायब्रेरीमें 'प्रतिष्ठाकल्पटिप्पण' या 'जिनसहिता' नामका एक ग्रन्थ है । उसके प्रारंभमें लिखा है —

“ श्रीमाधनन्दिशिखान्तचक्रवर्तितनूमयः ।

कुमुदेन्दुरत्वं चक्षिम प्रतिष्ठाकल्पटिप्यम् ॥

और अन्तमें सिखा है—

इति श्रीमाधनन्दिशिखान्तचक्रवर्तितनूमयवत्तुर्विषयादिद्वयस्य
 चक्रवर्तिभीवादिकुमुदचन्द्रमुनीन्द्रपिरचिते त्रिसंहिताटिप्यणे पूज्य
 पूजकपूजकाचार्यपूजाफलप्रतिपादनं समाप्तम् ॥

इससे माहम होता है कि प्रतिष्ठाकल्पटिप्यणके कर्ता कुमुदेन्दु या कुमुद
 चन्द्र माधनन्दिशिखान्तचक्रवर्तिके (शिष्य) थे ।

माधनन्दिशास्त्रकार और शास्त्रसारसमुच्चयके टीकाकार माधनन्दिने कन्नाडक
 कविवरिणके अनुसार कुमुदेन्दुको अपना गुरु बतलाया है । संभव है कि शिखा
 शस्त्रसारसमुच्चयके कर्ता माधनन्दि (पहले) के ही शिष्य थे कुमुदेन्दु ही
 त्रिसंहय उक्त प्रतिष्ठाकल्पटिप्यण नामक ग्रन्थ है और उन्हींके शिष्य भावअणा
 रक कर्ता हमारे माधनन्दि हैं । यदि यह ठीक है तो शास्त्रसारसमुच्चयके कर्ताअ
 तमय ५ वर्ष और पहले अर्थात् विक्रमसंवत् १२६० के अग्रमय माधना
 बाहिए ।

८-भीवादिराज कवि ।

ज्ञानसौवर्णस्तोत्र के कर्ता भीवाधिराज हैं । इन्होंने वाग्मटाळकरपर
 कविवन्दिता + नामकी एक पुस्तक संस्कृतटीका लिखी है । उसकी प्रशस्तिसे
 * माहम होता है कि ये खन्देशवाङ्मंसमें उत्पन्न हुए थे और इनके पिताका
 नाम पोमराज था । तलुकवारीके राजा राजसिंह संभवतः थे मंत्री थे और
 राजसेवा करते हुए ही इन्होंने इस टीकाकी रचना की थी । राजा राजसिंह भीम-
 देवके पुत्र थे । कविवन्दिताकी सम्पत्ति इन्होंने विक्रम संवत् १०९९ की बीप
 माळिकाको की थी । ये बहुत बट विद्वान् थे । इन्होंने स्वयं ही कहा है कि इस
 समय में परमजय आछावर और वाग्मटाळा पर चारण करता हूँ । अर्थात् मैं
 इनकी ओरछ विद्वान् हूँ और जिस तरह उक्त तीनो विद्वान् रहस्य थे मैं भी
 रहस्य हूँ—

+ कविवन्दिता टीका की एक प्रति बबुराक मंगलजीके मन्दिरेमें और
 दूरी वाटोहीजीके मन्दिरेमें है । पहली प्रति अधूरी है ।

* यह प्रशस्ति वैदितवी भाग १ अंक १९ में दूरी प्रकाशित हो चुकी है ।

धनंजयाशाधरवाग्भटानां
 धत्ते पदं सम्प्रति वादिराजः ।
 खाण्डिल्यवंशोद्भवपोमसूनुः
 जिनोक्तिपीयूषसुतृप्तगात्रः ॥

प्रशस्तिके एक और श्लोकमें उन्होंने अपनी और वाग्भटकी समानता बड़ी खूबसूरतीसे दिखलाई है —

श्रीराजसिंहनृपतिर्जयसिंह एव
 श्रीतक्षकाख्यनगरी अणहिल्लतुल्या ।
 श्रीवादिराजविवुधोऽपरवाग्भटोऽयं
 श्रीसूत्रवृत्तिरिह नन्दतु चार्कचन्द्रम् ॥

अर्थात् हमारे राजा राजसिंह जयसिंह (वाग्भटकवि जिस राजाके मंत्री थे) ही हैं और यह तक्षक नगरी अणहिल्लवाड़े (जयसिंहकी राजधानी) के तुल्य है और वादिराज दूसरा वाग्भट है ।

इनके बनाये हुए और किसी ग्रन्थका हमें पता नहीं है ।

९-श्री जयानन्दसूरि ।

‘सर्वज्ञस्तवन’ और उसकी टीका इन दोनोंके कर्ता जयानन्दसूरि श्वेताम्बर आचार्य मालूम होते हैं । श्वेताम्बर-जैनकान्फरेन्स द्वारा प्रकाशित जैनग्रन्थावली (पृष्ठ २८०) के अनुसार इसका नाम ‘देवा प्रभो स्तोत्र’ भी है । क्योंकि इसका प्रारंभ इन्हीं शब्दोंसे होता है । पाटणके श्वेताम्बर-भटारमें भी इसकी एक प्रति है । ये सोमतिलकसूरिके शिष्य थे और विक्रमकी १५ वीं शताब्दिमें हुए हैं । इनके बनाये हुए और भी कई ग्रन्थ हैं । हेमचन्द्रके व्याकरणपर इनकी एक वृत्ति भी है । इस स्तोत्र-टीकामें जो ‘व्याकरणसूत्र’ जगह जगह आते हैं, वे भी हेमचन्द्र (श्वेताम्बराचार्य) के ही मालूम होते हैं ।

१०-श्री गुणभद्र ।

चित्रवन्धस्तोत्रके कर्ता गुणभद्र या गुणभद्रकीर्ति नामके कोई आचार्य मालूम होते हैं । परन्तु यह निश्चय है कि ये भगवज्जिनसेनके शिष्य गुणभद्राचार्यके अतिरिक्त कोई दूसरे ही हैं । इस स्तोत्रके २७ वें श्लोकमें इस स्तुतिकी ‘मैधाविना

“ श्रीमाधनन्दिस्त्रिदशान्तश्चकवर्तितनूमथा ।

कुमुदेन्दुरर्ह वक्षि प्रसिद्धाकल्पटिप्पणम् ॥

और अन्तमें लिखा है—

इति श्रीमाधनन्दिस्त्रिदशान्तश्चकवर्तितनूमथाचतुर्विधपाण्डित्यञ्च
कवर्तिभीवादिकुमुदश्चन्द्रमुनीन्द्रविरचिते त्रिनसहितारिप्पणे पूज्य
पूजकपूजकाचार्यपूजाफलप्रतिपादनं समाप्तम् ॥”

इससे माहम होता है कि प्रसिद्धाकल्पटिप्पणके कर्ता कुमुदेन्दु वा कुमुद
चन्द्र माधनन्दिस्त्रिदशान्तश्चकवर्तकि (शिष्य) थे ।

माधनन्दिभाबधवार और शास्त्रसारसमुच्चयके टीकाकार माधनन्दिने कर्नाटक
कविचरित्रके अनुसार कुमुदचन्द्रको अपना पुत्र बतलाया है । संभव है कि शिवा
न्तसारसमुच्चयके कर्ता माधनन्दि (पहले) के ही शिष्य थे कुमुदेन्दु ही
त्रिनका शब्द प्रसिद्धाकल्पटिप्पण नामक ग्रन्थ है और अन्दीके शिष्य भाबधवा
रके कर्ता बूझे माधनन्दि ही । यदि यह ठीक है तो शास्त्रसारसमुच्चयके कर्ताका
समय ५ वीं और पहले अर्थात् विक्रमसंवत् १२९७ के लगभग मानना
चाहिए ।

८—श्रीवादिराज कवि ।

इलकोचनस्तोत्र के कर्ता श्रीवादिराज हैं । इन्होंने बागमठान्तर्गतरपर
कविचन्द्रिका + नामकी एक सुन्दर संस्कृतटीका लिखी है । उसकी प्रशस्तिसे
* माहम होता है कि वे लम्बेकालअवसरेमें उत्पन्न हुए थे और इनके पिताका
नाम पोमराज था । तच्छहजपरीके राजा राजसिंहके संभवतः वे मंत्री थे और
राजसेवा करते हुए ही इन्होंने इस टीकाकी रचना की थी । राजा राजसिंह भीम
देवके पुत्र थे । कविचन्द्रिकाकी समाप्ति इन्होंने विक्रम संवत् १७२९ की शीघ्र
श्राद्धिकाकी थी । ये बहुत बड़े विद्वान् थे । इन्होंने स्वयं ही कहा है कि इस
समय में धर्मजय आघात और बागमठका पक्ष धारण करता हूँ । अर्थात् मैं
बनग्री भीषण विद्वान् हूँ और जिस तरह तब तीनों विद्वान् एहत्थ वे मैं भी
एहत्थ हूँ —

+ कविचन्द्रिका टीका की एक प्रति जबपुरके संनदीजीके मन्दिरमें और
बूझे पादोशीजीके मन्दिरमें है । पहली प्रति अपूर्ण है ।

* यह प्रशस्ति कैमहिठैवी भाग ६ अंक १२ में पूरी प्रकाशित हो चुकी है ।

पढनेवाला बड़ी उलझनमें पड जाता है। अस्तु। हमारा खयाल है कि पद्मनन्दि मुनि उनके कोई गुरुस्थानीय व्यक्ति हैं और इसी लिए उन्होंने उनका स्मरण किया है।

नियमसारकी तात्पर्यवृत्तिके कर्त्ताका नाम श्रीपद्मप्रभमलधारिदेव है। मालूम नहीं कि इस स्तोत्रके कर्त्ता वे ही हैं, अथवा अन्य कोई दूसरे। पद्मनन्दिनामके भी अनेक विद्वान् हुए हैं, इस लिए उनके विषयमें भी कुछ नहीं कहा जा सकता।

काशीकी यशोविजयजैनग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित जैनस्तोत्रसंग्रह (द्वितीय भाग) में अवसे कोई १६-१७ वर्ष पहले यह स्तोत्र मुद्रित हो चुका है। उसके साथ जो टीका छपी है वह राजशेखरसूरिके शिष्य मुनिशेखरसूरिकृत है, परन्तु हम जो यह टीका छाप रहे हैं यह किसी अन्य विद्वान्की है जो कि अपना नाम प्रकट नहीं करते हैं।

उक्त मुद्रितप्रतिमें और खभातके जैनपुस्तकालयकी प्रतिमें—जिसका जिकर पिटर्सनकी १८८४-८६ की रिपोर्ट (पृ० २१२ न० २८) में किया गया है— इस स्तोत्रका अन्तिम श्लोक इसी रूपमें मिलता है, अतएव इसके कर्त्ता पद्मप्रभ-देव ही मालूम होते हैं।

इस स्तोत्रका दूसरा नाम 'लक्ष्मीस्तोत्र' है। क्योंकि इसका प्रारंभ 'लक्ष्मी' शब्दसे शुरू होता है और भक्तामर, कल्याणमन्दिर आदि अनेक स्तोत्रोंके नाम इसी तरह प्रसिद्ध हुए हैं।

१२—श्री अमितगतिसूरि ।*

सामायिकपाठके कर्त्ता अमितगतिसूरि वे ही जान पड़ते हैं जिनके बनाये हुए धर्मपरीक्षा, सुभाषितरत्नसन्दोह, अमितगतिश्रावकाचार, योगसारप्राभृत, और भावनाद्वारिंशतिका† नामक ग्रन्थ+ मुद्रित हो चुके हैं और जो विक्रमकी ग्यारहवीं शताब्दिके आचार्य थे।

* इनका विस्तृत परिचय पानेके लिए मेरी लिखी हुई 'विद्वद्वरत्नमाला' का 'श्रीअमितगतिसूरि' नामक लेख पढ़िए। † यह भी 'सामायिक पाठ' के नामसे छपा है, परन्तु वास्तवमें इसका नाम भावना द्वारिंशतिका है। + अमितगतिका 'पंचसंग्रह' नामक ग्रन्थ इसी ग्रन्थमालामें प्रकाशित होनेवाला है।

संस्कृत' (मेवाजीके द्वारा संस्कार की हुई) विद्येयक दिया है। संभवतः वे बड़ी पं मेवाजी हैं जो बर्मसंप्रदायकाधारके कता हैं और जिन्होंने 'गूढ्यकारकी वसुनभिरुति त्रिकोणप्रति धारि प्रणविके अन्तमें उक्त प्रणविके शान करने बाबेंकी बड़ी बड़ी प्रसस्तिर्की बोड़ी है। यदि हमारा यह अनुमान ठीक है तो यह स्तोत्र १९ वीं अंशधिया कता हुआ है। क्योंकि पं मेवाजीने उक्त प्रसस्तिर्की सि सं १५१९ और १५१९ में रची है।*

मेवाजीके समयमें एक गुणमय नामके आचार्य वे भी इसका पता बैनसि अन्तमयन आराके 'हालांतक नामक प्रणविके केन्द्र-प्रसस्तिसे कता है। यथा—

संवत् १५२१ वर्षे मापाङ्क सुदि ६ सोमवासरे अंगोपाच्छतुर्णे
तोमरबंधो राजाधिराजभीकीर्तिर्सिहरज्यप्रवर्धमाने श्रीकाष्ठार्सवे
माधुराण्ये पुष्कराण्ये म० श्रीगुणकीर्तिविद्यास्तत्पद्मे म श्रीपद्म-
कीर्तिविद्यास्तत्पद्मे म श्रीमलयकीर्तिविद्यास्तत्पद्मे म श्रीगुणमय
देवास्तत्पद्मापे गरीगोत्रे ।

इसके पान्दम होता है कि सि सं १५१९ में म्नाक्रियरमें गुणमयनायके आचार्य वे जो अष्टाधेय-माधुराण्य और पुष्कराण्यकी पदोपर आरब्ध वे। बहुत संभव है कि निरप्रणवस्तोत्रके कता बड़ी हों और इन्हींकी रचनाकी उसी समयमें होनेवाले पं मेवाजीने संस्कृत किया हो।

११-श्री पद्मप्रमदेव ।

पार्श्वनाथस्तोत्रकी अन्तिम पंक्तिमें वरपि उद्ये श्रीपद्मभिरुभिरभिरिर्भित्
श्रिणा है; परन्तु अन्तिम श्लोकके श्रीपद्मप्रमदेवभिरिर्भित्मित् स्तोत्रं अम-
स्मर्गर्भं पश्ये यह स्पष्ट है कि उसके कर्ता श्रीपद्मप्रमदेव है। क्योंकि पद्म
भिरुभिरिर्भित् केवल उल्लेख मात्र किया है और कहा है कि वे उक्त म्नाकरम
वाक्य, और अन्वके श्रीशक्तने विद्वान्त थे। परन्तु उससे यह नहीं मान्य होता है
कि वरपि उल्लेख क्यों किया गया और उनसे उक्त कता सम्भव था। इससे

* देखो बैनसिटीकी माय १५, अंक १-४। पं मेवाजीका कता हुआ बर्मसंप्रदायकाधार नामक प्रणव भी है जो सि संवत् १५४१ में समाप्त हुआ है।

सका । इसी तरह आप्तस्वरूप, पार्श्वनाथसमस्यास्तोत्र, महर्षिस्तोत्र, नेमिनाथ-स्तोत्र और शलाकानिक्षे०के विषयमें यह भी नहीं मालूम हो सका कि इनके रचयिता कौन हैं । जिन प्रतियोंपर से ये छपाये गये हैं, उनमें ग्रन्थकर्त्ताओंके नाम नहीं हैं । इस लिए इनके विषयमें भी कुछ नहीं लिखा जा सका ।

इस परिचयके लिखनेमें सुहृद्दर बाबू जुगलकिशोरजीके कई नोटोंसे और उनकी सूचनाओंसे बहुत कुछ सहायता मिली है, अतएव हम उनके बहुत ही कृतज्ञ हैं ।

बम्बई, अगहन सुदी १४ ।
वि० संवत् १९७९ । ।

नाथूराम प्रेमी ।

हस्तलिखित प्रतियोंकी सहायता ।

१ श्रीयुक्त ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी, जैनधर्मभूषण—१ धम्मर-सायण, २ सारसमुच्चय (ख) और ३ सामायिक पाठ । इनमेंसे पहले दो ग्रन्थोंकी प्रतियाँ आपने देहलीके पुस्तक भाण्डारसे नकल कराकर मिजवाई थीं और उन्हें पालमनिवासी श्रीयुक्त छाजूरामजीने लिखा है । तीसरे ग्रन्थकी प्रेसकापी आपने स्वय ही एक प्राचीन प्रतिसे करके भेजी थी ।

२ श्रीयुक्त बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तार, सरसावा—१ सिद्धान्त-सार मूल, २ अमृताशीति, ३ रत्नमाला, ४ शास्त्रसारसमुच्चय, ५ पार्श्वनाथस्तोत्र, ६ नेमिनाथस्तोत्र, ७ निजात्माष्टक और ८ आप्तस्व-रूप । इनमेंसे अधिकांश ग्रन्थोंकी कापी आपने जैनसिद्धान्तभवन आराकी प्रतियोंके आधारसे कराके भेजी थी । शास्त्रसारसमुच्चयके सूत्रपाठका सशोधन भी आपने उक्त ग्रन्थकी कनडी टीकाके आधारसे कर दिया था । पिछले ग्रन्थकी प्रेस कापी अपने स्वय अपने हाथसे करके भेजी थी ।

३ श्रीयुक्त पं० रामलाल कंचनलालजी, मरसेना—१ सिद्धान्तसार-टीका, २ अंगप्रज्ञप्ति । इन दोनों ग्रन्थोंकी प्रतियाँ श्रीयुक्त बाबू जुगलकिशोरजीने उक्त महाशयसे प्राप्त करके भेजनेकी कृपा की थी ।

४ श्रीयुक्त पं० इन्द्रलालजी साहित्यशास्त्री जयपुर—१ ज्ञानलोचन-स्तोत्र, २ समवसरणस्तोत्र, ३ सर्वज्ञस्तवन, ४ पार्श्वनाथसमस्या-स्तोत्र, ५ चित्रबन्धस्तात्रे, ६ महर्षिस्तोत्र, ७ शखदेवाष्टक । जयपुरके

इस प्रन्वक्य नाम हमें सामाजिकपाठ नहीं मालूम होता था। वही यह पूर्व भी नहीं मालूम होता। क्योंकि इसके अन्तमें लिखा है कि इति द्वितीयमावना समाप्ता। अर्थात् ही इसके पहले प्रथम मावना रही होगी। अन्तिम श्लोकसे संभव है कि इसका नाम 'तत्त्वमावना' रहा हो।

इसकी कृपा श्रीवैश्वदेवमूपम ब्रह्मचारी श्रीश्रीतत्त्वप्रसादजी अपने प्रथममें प्राप्त की हुई किसी स्थापके सरस्वतीमण्डालकी प्रति परसे स्वयं करके क्ये से भार उठी परसे वह मुद्रित कराई गई है। अतएव अब तक इसकी कोई दूसरी प्रति प्राप्त न हो अब तक इसके नामका और पूर्णता अपूर्णताका निर्णय नहीं हो सकता।

१३-५० श्री आश्विन ।

अश्विनमास के कृता पं मासावर प्रसिद्ध सिद्धान्त हैं। उनके वनामे हुए दो प्रथम समावसाय (नं २) और अन्त्यारणमास (नं १४) इसी प्रथममासमें मुद्रित हो चुके हैं और उसमें उनका परिचय भी दिया जा चुका है। वे सिद्धांतकी १३ वीं शताब्दिके अन्त तक मान्य थे।

अपरिचित ग्रन्थकर्ता ।

अश्विनमासके कृता प्रमावसाय^१ संख्येवाचकके^२ कृता मानुकीर्ति^३ वनैर चापनके कृता पद्यमन्त्रि^४ सप्तसुवचके कृता कुलमन्त्र और मुतावतारके कृता विदुष्य श्रीधरके सिद्धमें हमें कोई उल्लेखयोग्य परिचय प्राप्त नहीं हो

१-प्रमावसाय नामके अनेक आचार्य और मशरक हो चुके हैं। २-अश्विन मासके अन्तमें 'हाकमिरी संख्येवमि पाठ है जिससे मालूम होता है कि होकमि रिममक पर्वतपर संख्येवर या संख्येवर पार्श्वनाथ नामका कोई तीर्थ है। मालूम नहीं इस समय वह ज्ञात है या नहीं। संभवतः वह पश्चिम कनाटककी ओर होय। ३-मानुकीर्ति कई हो गये हैं। एक गणपतिपुण्डरीकके शिष्य वैश्वदेवके पुत्रमार्दे वे और दो १० वीं शताब्दिके हुए हैं—एक पुनमसुतिके पदपर और दूसरे वदःकीर्तिके पदपर होवेनाके जिक्रके कि शिष्य श्रीगुरुक वे। ४-पद्यमन्त्रिपंचमिलितिकाके कृता जम्बूद्वीपप्रसिद्धिके कृता आदि कई पद्यमन्त्रि हो गये हैं। ५ एक विदुष्य श्रीधर मल्लिकार्जुनपरितके कृता हुए हैं। संभव है वे ही ये हों।

सका । इसी तरह आप्तस्वरूप, पार्श्वनाथसमस्यास्तोत्र, महर्षिस्तोत्र, नेमिनाथ-स्तोत्र और शलाकानिक्षे०के विषयमें यह भी नहीं मालूम हो सका कि इनके रचयिता कौन हैं । जिन प्रतियोंपर से ये छपाये गये हैं, उनमें ग्रन्थकर्ताओंके नाम नहीं हैं । इस लिए इनके विषयमें भी कुछ नहीं लिखा जा सका ।

इस परिचयके लिखनेमें सुहृद्दर बाबू जुगलकिशोरजीके कई नोटोंसे और उनकी सूचनाओंसे बहुत कुछ सहायता मिली है, अतएव हम उनके बहुत ही कृतज्ञ हैं ।

बम्बई, अगहन सुदी १४ ।
वि० संवत् १९७९ । ।

नाथूराम प्रेमी ।

हस्तलिखित प्रतियोंकी सहायता ।

१ श्रीयुक्त ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी, जैनधर्मभूषण—१ धम्मर-सायण, २ सारसमुच्चय (ख) और ३ सामायिक पाठ । इनमेंसे पहले दो ग्रन्थोंकी प्रतियाँ आपने देहलीके पुस्तक भाण्डारसे नकल कराकर मिजवाई थीं और उन्हें पालमनिवासी श्रीयुक्त छाजूरामजीने लिखा है । तीसरे ग्रन्थकी प्रेसकापी आपने स्वय ही एक प्राचीन प्रतिसे करके भेजी थी ।

२ श्रीयुक्त बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तार, सरसावा—१ सिद्धान्त-सार मूल, २ अमृताशीति, ३ रत्नमाला, ४ शास्त्रसारसमुच्चय, ५ पार्श्वनाथस्तोत्र, ६ नेमिनाथस्तोत्र, ७ निजात्माष्टक और ८ आप्तस्व-रूप । इनमेंसे अधिकांश ग्रन्थोंकी कापी आपने जैनसिद्धान्तभवन आराकी प्रतियोंके आधारसे कराके भेजी थी । शास्त्रसारसमुच्चयके सूत्रपाठका सशोधन भी आपने उक्त ग्रन्थकी कनडी टीकाके आधारसे कर दिया था । पिछले ग्रन्थकी प्रेस कापी अपने स्वय अपने हाथसे करके भेजी थी ।

३ श्रीयुक्त प० रामलाल कंचनलालजी, मरसेना—१ सिद्धान्तसार-टीका, २ अगप्रज्ञप्ति । इन दोनों ग्रन्थोंकी प्रतियाँ श्रीयुक्त बाबू जुगलकिशोरजीने उक्त महाशयसे प्राप्त करके भेजनेकी कृपा की थी ।

४ श्रीयुक्त पं० इन्द्रलालजी साहित्यशास्त्री जयपुर—१ ज्ञानलोचन-स्तोत्र, २ समवसरणस्तोत्र, ३ सर्वज्ञस्तवन, ४ पार्श्वनाथसमस्या-स्तोत्र, ५ चित्रवन्धस्तात्रे, ६ महर्षिस्तोत्र, ७ शखदेवाष्टक । जयपुरके

प्राचीन पुस्तक-मंडाओंकी प्रतिबोधपरसे आपने इन सब स्तोत्रोंकी प्रसन्न्यपी करके भेजी थी ।

५ स्वर्गीय प० यणेशास्त्रजी गोवा बनपुर—१ योगसार० और २ कल्याणालोकना ।

६ श्रीयुक्त प० पद्मालाखजी बाबुजीबाबू—१ श्रुतापतार, २ शाळाका निक्षेपण और ३ कल्याणमाख । कोई १० वर्ष पहले आपने बनपुरसे इन्हें बकक कराके भेजा था ।

७ श्रीयुक्त छाळा मफलमछालजी बवांची पोळधी स्त्रीय येरठ बननी—सारसमुच्चय (६) की एक प्राचीन प्रति खिचनर लिखे जाने का संवत् आदि नहीं है ।

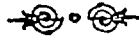
८ सरस्वतीमंडार—विष्णुवर्त्मनमन्दिर भोक्तर, बम्बई—सर्हस्र पञ्चम ।

९ श्रीयुक्त पं० नाना रामचन्द्र भाग कुंभोज—रत्नमाळाकी आपने भी एक सुंदर रूपी वैतसिख्यन्तमचन आणकी प्रति परसे करके भेजी थी ।



* इस प्रन्वकी एक और पुरानी प्रतिसे सहायता प्राप्त हुई है खिचनर लिख संवत् संवत् नहीं है और व बड़ी माखम है कि कौनसे संवत्से इसे भेजा था ।

ग्रन्थ-सूची ।



पृष्ठांक.

१ सिद्धान्तसारः—श्रीजिनचन्द्राचार्यकृत , श्रीज्ञानभूषणकृतभाष्योपेतः	१
२ योगसारः—श्रीयोगीन्द्रदेवकृत	५५
३ कल्याणालोचना (कल्याणालोचना)—श्रीअजितब्रह्मकृता	७५
४ अमृताशीतिः—श्रीयोगीन्द्रदेवकृता	८५
५ रत्नमाला—श्रीशिवकोटिकृता	१०२
६ शास्त्रसारसमुच्चयः—श्रीमाघनन्दिकृत	१०९
७ अर्हत्प्रवचनम्—श्रीप्रभाचन्द्रविरचित	११४
८ आप्तस्वरूपम्—	११७
९ ज्ञानलोचनस्तोत्रम्—श्रीवादिराजप्रणीतम्	१२४
१० समवशरणस्तोत्रम्—श्रीविष्णुसेनरचितम्	१३३
११ सर्वज्ञस्तवनम् सटीकम्—श्रीजयानन्दसूरिकृतम्	१४०
१२ पार्श्वनाथसमस्यास्तोत्रम्—	१४८
१३ चित्रबन्धस्तोत्रम्—श्रीगुणभद्ररचितम्...	१५१
१४ महर्षिस्तोत्रम्—	१५६
१५ पार्श्वनाथस्तोत्रम्—श्रीपद्मप्रभदेवकृतम्	१५८
१६ नेमिनाथस्तोत्रम्—	१६४
१७ शंखदेवाष्टकम्—श्रीभानुकीर्तिकृतम्	१६६
१८ निजात्माष्टकम्—श्रीयोगीन्द्रदेवकृतम्	१६८
१९ सामायिकपाठः—श्रीअमितगतिकृत	१७०
२० धम्मरसायण—श्रीपद्मनन्दिरचित	१९२
२१ सारसमुच्चयः—श्रीकुलभद्रकृत	२२६
२२ अंगपण्णत्ती (अङ्गप्रज्ञप्ति)—श्रीशुभचन्द्रकृता	२५७
२३ श्रुतावतारः—विभुश्रीधरकृत	३१६
२४ शलाकानिक्षेपणनिष्काशनविवरणं ..	३१९
२५ कल्याणमाला—प० आशाधरकृता	३२१



श्रीपंचगुरभ्यो नमो नमः ।

सिद्धान्तसारादिसंग्रहः ।

श्रीजिनेन्द्राचार्य-प्रणीतः

सिद्धान्तसारः ।

(भाष्योपेतः ।)

श्रीस्वयं प्रणम्याहो लक्ष्मीवीरेन्दुमेवितम् ।

भाष्य सिद्धान्तसारस्य चक्ष्यं गाननुभूषणम् ॥ १ ॥

जीवगुणठाणसण्णापज्जतीपाणमग्गणणवृणे ।

सिद्धंतमारमिणमो भणामि सिद्धे णमंसित्ता ॥ १ ॥

जीवगुणस्थानमंजपर्याप्तिप्राणमार्गणानवोनान् ।

सिद्धान्तमारमिदानीं भणामि सिद्धान् नमस्कृत्य ॥

एतद्वाचार्थ — इणमो—इदानीं । सिद्धन्तमार—इति, सिद्धान्तसार-
नामग्रन्थं । भणामीति—भणिष्यामि कथयिष्यामि । यावत् किं क्व वा १
पूर्वं सिद्धे णमंसित्ता—सिद्धान् नमस्कृत्य । कथभूतान् सिद्धान् १ जीव-
गुणठाणसण्णापज्जतीपाणमग्गणणवृणे—जीवगुणस्थानसंज्ञापर्याप्तिप्रा-
णमार्गणानवकोनान् । जीव इति-चतुर्दशजीवसमासा । गुणठाण—चतु-

जीवगुणे तह जोए सपच्चए मग्गणासु उवओगे ।

जीवगुणेषु वि जोगे उवओगे पच्चए वुच्छं ॥ ३ ॥

जीवगुणान् तथा योगान् सप्रत्ययान् मार्गणासु उपयोगान् ।

जीवगुणेष्वपि योगान् उपयोगान् प्रत्ययान् वक्ष्ये ॥

सकलप्रन्थार्यसूचनद्वाररूपेय गाया । वुच्छ इति—वक्ष्ये, कान् १ मग्गणासु—चतुर्दशमार्गणासु जीवगुणान्, जीवाश्चतुर्दशभेदा गुणाश्चतुर्दशगुणस्थानानि । जीवाश्च गुणाश्च जीवगुणास्तान् जीवगुणान् चतुर्दशमार्गणासु वक्ष्ये । मार्गणा. काश्चेत् १ तदाह—गई, इत्यादि गायोक्ताश्चतुर्दशमार्गणाः । तह जोए—तथा तेनैव प्रकारेण चतुर्दशमार्गणासु पचदशयोगान् वक्ष्ये । सपच्चए—मार्गणासु सप्तपचाशत्प्रत्ययान् आस्त्वान् वक्ष्ये । तथा मार्गणासु द्वादशोपयोगान् वक्ष्ये । तथा जीवगुणेषु वि—जीवगुणेष्वपि वक्ष्ये । कान् १ जोगे—योगान्, चतुर्दशजीवसमासेषु योगान् पचदश वक्ष्ये । चतुर्दशगुणस्थानेष्वपि पचदश योगान् वक्ष्ये । उवओगे पच्चए वुच्छ—पुन जीवसमासेषु गुणस्थानेषु च द्वादशोपयोगान् सप्तपचाशत्प्रत्ययांश्च वक्ष्ये । मार्गणासु जीवान् गुणान् तथा योगान् सप्रत्ययान् उपयोगान् वक्ष्ये । अन्तुं च जीवेषु गुणेषु च योगान् उपयोगान् प्रत्ययान् वक्ष्ये इति स्पष्टार्थः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्दशमार्गणासु चतुर्दशजीवसमासान् कथयन्नाह,—

तिगईसु सण्णिज्जुयलं चउदस तिरिएसु दोण्णि वियलेसु ।

एयपणक्खे वि य चदु पुठवीपणए थ चत्तारि ॥ ४ ॥

१ गइ इदिये च काए जोगे वेए क्खायणाणे थ ।

सज्जमदसणलेस्साभवियासम्मत्तसण्णिआहारे ॥ १ ॥

२ ' जोए ' इति पाठ टीकायां । ३ पश्चात् ।

ईशगुणस्थानानि । सण्णा—चतस्र संज्ञा । पञ्चस्ती—वदुपर्याप्तय ।
पाण—दशद्रव्यप्राणा । मग्गणव इति—नवसंज्ञोपेता मार्गणा । एतै
उणे—उमान् रहितानित्यर्थ ॥ १ ॥

सिद्धान्तं सिद्धगई दंसण णाणं च केवलं सुइयं ।

सम्मत्तमणाहारे सेसा संसारिए जीवे ॥ २ ॥

सिद्धानां सिद्धगति दर्शनं ज्ञानं च केवलं क्षापिकं ।

सम्यक्त्वमनाहारकं शेषा संसारिणि जीवे ॥

ममस्कारगाथायां प्रोक्तं मार्गणानवरहितान् सिद्धान् नत्वा, तर्हि सि
द्धेषु पंच का संस्तीत्याशंकायामाह—सिद्धानां सिद्धगई इत्यादि ।
सिद्धानां सिद्धगति स्यात् । सिद्धगतिरिति कोऽर्थः ? सिद्धपर्यायप्र-
तिरित्यर्थ । इत्येका मार्गणा सिद्धेषु वर्तते । तथा, दंसण णाणं च
केवलं सुइयं—केवलशब्दे प्रत्येकममित्यभ्यते, सिद्धानां केवल-
दर्शनमिति सिद्धेषु द्वितीया मार्गणा वर्तते । केवलज्ञानमिति तृतीया
मार्गणा सिद्धेषु स्यात् । सम्मतमणाहारे—सिद्धानां क्षापिकं सम्यक्त्वं
चतुर्थी मार्गणा सिद्धेषु विद्यते । सिद्धानामनाहारकत्वं पंचमी मार्गणा
सिद्धेषु भवति । तात्पर्यमाह—इत्युक्तपंचमार्गणासहितान् नवमार्गणा
रहितान् सिद्धान् नत्वेत्यर्थः । सेसा संसारिए जीवे—शेषा उद्धरिता
मार्गणा संसारिषु वर्तन्ते । अपवा असेसा संसारिए जीवे—ये के संसा-
रिणो जीवा वर्तन्ते तेषु अशेषाश्चतुर्दशमार्गणा स्युरित्यर्थ ॥ २ ॥

अथ प्रथमसूत्रपाठनिकामाहः—

जीवगुणे तह जोए सपच्चए मग्गणासु उवओगे ।

जीवगुणेसु वि जोगे उवओगे पच्चए वुच्छं ॥ ३ ॥

जीवगुणान् तथा योगान् सप्रत्ययान् मार्गणासु उपयोगान् ।

जीवगुणेष्वपि योगान् उपयोगान् प्रत्ययान् वक्ष्ये ॥

सकलप्रन्थार्थसूचनद्वाररूपेय गाथा । वुच्छ इति—वक्ष्ये, कान् ? मग्गणासु—चतुर्दशमार्गणासु जीवगुणान्, जीवाश्चतुर्दशभेदा गुणाश्चतुर्दशगुणस्थानानि । जीवाश्च गुणाश्च जीवगुणास्तान् जीवगुणान् चतुर्दशमार्गणासु वक्ष्ये । मार्गणाः काश्चेत् ? तदाह—गई, इत्यादि गाथोक्ताश्चतुर्दशमार्गणाः । तह जोए—तथा तेनैव प्रकारेण चतुर्दशमार्गणासु पचदशयोगान् वक्ष्ये । सपच्चए—मार्गणासु सप्तपचाशत्प्रत्ययान् आस्रवान् वक्ष्ये । तथा मार्गणासु द्वादशोपयोगान् वक्ष्ये । तथा जीवगुणेसु वि—जीवगुणेष्वपि वक्ष्ये । कान् ? जौगे—योगान्, चतुर्दशजीवसमासेषु योगान् पचदश वक्ष्ये । चतुर्दशगुणस्थानेष्वपि पचदश योगान् वक्ष्ये । उवओगे पच्चए वुच्छ—पुन जीवसमासेषु गुणस्थानेषु च द्वादशोपयोगान् सप्तपंचाशत्प्रत्ययाश्च वक्ष्ये । मार्गणासु जीवान् गुणान् तथा योगान् सप्रत्ययान् उपयोगान् वक्ष्ये । अत्तुं च जीवेषु गुणेसु च योगान् उपयोगान् प्रत्ययान् वक्ष्ये इति स्पष्टार्थः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्दशमार्गणासु चतुर्दशजीवसमासान् कथयन्नाह,—

तिगईसु सण्णिजुयलं चउदस तिरिएसु दोण्णि वियलेसु ।

एयपणक्खे वि य चदु पुढवीपणए य चत्तारि ॥ ४ ॥

१ गइ इदिये च काए जोगे वेए कसायणाणे य ।

संजमदसणलेस्साभवियासम्मत्तसण्णिआहारे ॥ १ ॥

२ ' जोए ' इति पाठ टीकायां । ३ पश्चात् ।

त्रिगतिषु सङ्घियुगलं चतुर्दश तिर्यक्षु द्वौ विकलेषु ।

एकपंचाङ्केऽपि च चत्वारः पृथिवीपंचके च चत्वारः ॥

‘ तिग ’ इत्यादि । तिस्रु गतिषु मरकमनुष्यदेवगतिषु जीवसमासद्वयं भवति । तत् किं ? सङ्घियुगलं—पंचेन्द्रियसंज्ञिनो युग्ममिति । कोऽर्थः ? मरकगत्यां पंचेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ जीवसमासौ भवतः । तथा मनुष्यगत्यां देवगत्यां च संज्ञिपर्याप्तापर्याप्तिर्जीवसमासद्वयं भवति । चतुर्दश तिरिपसु—तिर्यक्षु तिर्यग्गतौ चतुर्दशजीवसमासा भवन्ति । ते के ?—

बाह्यसुहमेगिद्वियचितिचत्वारिद्वियसङ्घिसङ्घी यः ।

पञ्चत्तापञ्चत्ता एषं तं जोहसा जीवा ॥ १ ॥

एवं गायोक्तचतुर्दशजीवसमासा भवन्ति । दोष्णि द्वियुग्मेसु—द्विषु त्रिषु चत्वारिन्द्रियेषु, दोष्णि—द्वौ पर्याप्तापर्याप्तौ जीवसमासौ भवतः । एष पञ्चकले वि य चतुः—एकेन्द्रियेषु पंचेन्द्रियेषु च चत्वारो जीवसमासाः । तत्रैकेन्द्रियेषु एकेन्द्रियसूक्ष्मबाह्यपर्याप्तापर्याप्ता इति चत्वारो जीवसमासाः सन्ति । पंचेन्द्रियेषु पंचेन्द्रियसंज्ञिसंज्ञिनः पर्याप्तापर्याप्ता इति चत्वारो जीवसमासा भवन्ति । पुढवीपणए य चत्वारि—पृथ्वीपंचके च चत्वारः पृथ्व्येतेजीवायुवनस्पतियु चत्वारो जीवसमासा भवन्ति । ते के ? सूक्ष्मबाह्यपर्याप्तापर्याप्ता इति चत्वारः । पृथ्वी सूक्ष्मा बाह्यरा पर्याप्ता अपर्याप्ता च । एषमवादिषु योज्यम् ॥ ४ ॥

दस सप्तकाए सङ्घी सचमणार्हिसु सप्तजोगेसु ।

वेद्विद्यादिपुण्या पणमद्वे सच ओराले ॥ ५ ॥

१ बाह्यसुहमेगिद्वियचितिचत्वारिद्वियसङ्घिसङ्घीसंज्ञिमन्त्रः ।

पञ्चाष्टपर्याप्ता ऋषं तं चतुर्दश जीवाः ॥

२ पंचेन्द्रियेषु इति पाठः पुस्तके नास्ति । ३ अपर्याप्ता इति पाठः पुस्तके नास्ति ।

दश त्रसकाये सज्ञी सत्यमनआदिषु सप्तयोगेषु ।

द्वीन्द्रियादिपूर्णाः पचाष्टमे सप्त ओराले ॥

दस तसकाए—त्रसकायेषु द्वित्रिचतुरिन्द्रियपचेन्द्रियेषु दश जीव-
समासा भवन्ति । ते के १ द्वित्रिचतुरिन्द्रियाः पर्याप्तापर्याप्ता इति
षट् । पचेन्द्रियसङ्घसंज्ञिनः पर्याप्तापर्याप्ता इति चत्वार एवं दश ।
सण्णी सञ्चमणाईसु सत्तजोगेसु—सत्यमनःप्रभृतिषु सत्यासत्यो-
भयानुभयमनोयोगेषु सत्यासत्योभयवचनयोगेषु सप्तसु योगेषु प्रत्येकं
एकः सज्ञिपर्याप्तको जीवसमासो भवति । वेइंदियादिपुण्णा पण-
मट्टे—अष्टमेऽनुभयवचनयोगे द्वीन्द्रियादयः पर्याप्ताः पंच जीवसमासा
भवन्ति । तानाह—द्वित्रिचतुरिन्द्रियपंचेन्द्रियसङ्घसंज्ञिनः पर्याप्ता इति
पच । सत्त ओराले—औदारिकशरीरे सप्तजीवसमासा भवति । एकेन्द्रि-
यसूक्ष्मवादरपर्याप्ता इति द्वयं द्वित्रिचतुरिन्द्रियपचेन्द्रियसङ्घसंज्ञिनः प-
र्याप्ता इति पच, एव सप्तजीवसमासा औदारिककाययोगे भवन्ती-
त्यर्थः ॥ ५ ॥

मिस्से अपुण्णसग इगिसण्णी वेउव्वियादिचउसु च ।

कम्मइए अट्ट त्थी-पुंसे पंचक्खगयचउरो ॥ ६ ॥

मिश्रे अपूर्णसप्त एकसज्ञी विगूर्विकादिचतुर्षु च ।

कार्मणे अष्टौ स्त्रीपुसोः पचाक्षगतचत्वारः ॥

मिस्से अपुण्णसग इगिसण्णी—औदारिकमिश्रकाययोगे अपर्याप्ताः
सप्त, इगिसण्णी—एक संज्ञिपर्याप्तक एवमष्टौ जीवसमासा । ते के ?
एकेन्द्रियसूक्ष्मवादरद्वित्रिचतुरिन्द्रियपचेन्द्रियसङ्घसंज्ञिनोऽपर्याप्ताः सप्त,
एकः पर्याप्तः सज्ञी स च केवलिसमुद्घातापेक्षया ग्राह्यः, एवमष्टौ जीव-
समासा औदारिकमिश्रकाययोगे भवन्तीति विज्ञेय । वेउव्वियादिचउसु
च—वैक्रियिकादिचतुर्षु काययोगेषु चकारादेकः सज्ञी । अत्र भेदः—

वैक्रियिककाययोगे पंचेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्त इत्येको भवति । वैक्रियिकमि-
थ्रकाययोगे पंचेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्तको भवति । आहारककाययोगे पंचेन्द्रि-
यसंज्ञिपर्याप्तको भवति । आहारकमिथ्रकाययोगे पंचेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्तको
भवति । कम्मइए अह—कामणकाययोगे औदारिकमिथ्रकायोक्त्य अष्ट
जीवसमासा भवन्ति । त्वीपुसे पंचकखगयचतुरो—स्त्रीवेदे पंचेन्द्रियसं-
ज्ञिपर्याप्तापर्याप्तपंचेन्द्रियासंज्ञिपर्याप्तापर्याप्ता एते चत्वार । पुवेदे स्त्री
वेदोक्ताश्चत्वारो जीवसमासा भवन्ति ॥ ६ ॥

संड कोहे माये मायालोहे य कुमइकुसुईये य ।

चोइस इगि बेभंगे मइसुइवहीसु सण्णिदुगं ॥ ७ ॥

पंडे कोवे माने मायाखोमयो च कुमतिकुसुतयोः च ।

चतुर्दश एको विभंगे मतिश्रुतावधिपु संज्ञिदिकं ॥

संडे—मपुंसकवेदे चतुर्दश जीवसमासा भवन्ति । तथा कोहे
माणे मायालोहे य—क्रोधे माने मायायां खोमे च चतुर्दश जीवसमासा
भवन्ति । तथा कुमइकुसुईये—कुमती कुमुती च चतुर्दश जीवस
मासा भवन्ति । इगि बेभंगे—विभंगे कवधिज्ञाने एक पंचेन्द्रियसंज्ञि
पर्याप्तक एव । मइसुइवहीसु सण्णिदुगं—मतिश्रुत्येवधिज्ञानेषु त्रिषु
प्रत्येकं सण्णिदुगं—पंचेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ द्वौ जीवसमासौ स्त
इत्यर्थ ॥ ७ ॥

मणकेवलेसु सण्णी पुण्णो सामायादिछसु तह य ।

चउदस असंजमे पुष छोयमअवलोयये छककं ॥ ८ ॥

मन केवलयो संज्ञी पूर्ण सामायिकादिपदसु तथा च ।

चतुर्दश असंजमे पुन खोचनावलोकने पदकं ॥

मणकेवलेसु सण्णी पुण्णो—मन.पर्ययकेवलज्ञानयोः द्वयो. पचेन्द्रिय-
संज्ञिपर्याप्त एव एकजीवसमासो भवति । सामाइयादिछसु तह य—तथा ते-
नैव प्रकारेण च देशसंयम—सामायिक—च्छेदोपस्थापना—परिहारविशुद्धि—
सूक्ष्मसोम्यराय—यथाख्यातसयतेषु षट्सु सयमेषु प्रत्येक संज्ञिपर्याप्त एक
एव स्यात् । चउदस असजमे—असयमनाम्नि सप्तमे संयमे चतुर्दशजीव-
समासा भवन्ति । पुण लोयणअवलोयणे छक्क—पुनः लोचनावलोकने
चक्षुर्दर्शने जीवसमासषट् भवति । चतुरेन्द्रियपर्याप्तापर्याप्तौ द्वौ, पचे-
न्द्रियासंज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ द्वौ, पचेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ उभौ इति
षट्जीवसमासाश्चक्षुर्दर्शने भवन्तीत्यर्थः ॥ ८ ॥

चउदस अचक्खुलोए दो एकं अवहिकेवलालोए ।

किण्हादितिए चउदस तेजाइसु सण्णियदुगं च ॥ ९ ॥

चतुर्दश अचक्षुरालोके द्वौ एकोऽवधिकेवलालोके ।

कृष्णादित्रिके चतुर्दश तेजआदिषु संज्ञिद्विक च ॥

चउदस अचक्खुलोए—अचक्षुर्दर्शने चतुर्दशजीवसमासा भवन्ति ।
दो एकक अवहिकेवलालोए—अत्र यथासख्येन व्याख्या, अवधिज्ञाने
पचेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ द्वौ जीवसमासौ भवतः, केवलदर्शने प-
चेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्तक एक एव जीवसमासः स्यात् । किण्हादितिए
चउदस—कृष्णादित्रिके कृष्णनीलकापोतासु लेश्यासु तिसृषु चतुर्दश-
जीवसमासा ज्ञेयाः । तेजाइसु सण्णियदुगं च—तेजआदिषु पीतपद्म-
शुक्ललेश्यात्रिके पचेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्तापर्याप्तजीवसमासद्विकं भवति ॥९॥

चउदस भन्वाभव्वे दुण्णेगं खाइयादितिसु मिस्से ।

अपुण्णा सग पुण्णा सण्णी इगि चउदस य दोसु कमे ॥१०॥

चतुर्दश भव्यामभ्ययो द्वौ एकः क्षायिकादित्रिषु मित्रे ।

अपूर्णा सप्त पूर्णं संज्ञी एक चतुर्दश च द्वयो क्रमेण ॥

भव्यजीवेऽभव्यजीवे च चतुर्दश जीवसमासा भवन्ति । दुष्णोर्ग
साह्यादितिषु मिस्त—अत्र यथासंख्यं व्याख्याय, क्षायिकादित्रिषु क्षा-
यिकोपसामवेदकसम्पत्त्वेषु पंचेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्तापर्याप्तजीवसमासौ द्वौ
भवतः, मित्रे सम्पत्त्वे पंचेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्तक एक एव जीवसमासो भ-
वति । मित्रे मरणासंभवादपर्याप्तत्वं तु न संभवति । अपुष्णा सग
पुष्णा सष्णी इति चतुदश य दोसु क्रमे—क्रमे इति—क्रमेण, दोसु—
द्वयो सासादनमिष्यात्वसम्पत्त्वयो, अपुष्णा सग—अपर्याप्ता सप्त,
सष्णी इति—पर्याप्तसंज्ञी एक, चतुर्दश च, । अथ व्यैक्ति—सासाद-
नसम्पत्त्वे एकेन्द्रियसूक्ष्मबादरद्वित्रिचतुरेन्द्रियपंचेन्द्रियसंज्ञिन एते
सप्त अपर्याप्ता पंचेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्त एक एव एवं अष्टौ जीवसमासाः
(सासादनसम्पत्त्वे) भवन्तीति भावः । मिष्यात्वसम्पत्त्वे एकेन्द्रियाद
पञ्चतुर्दश जीवसमासा भवन्तीति सूत्रार्थ ॥ १० ॥

सष्णिमसष्णिषु दोष्णि य आहारअणाहारएषु विष्णोया ।

जीवसमासा चतुदश अष्टौ जिष्णेहि गिरिहा ॥ ११ ॥

संख्यसंज्ञिनो द्वौ च आहारअणहारक्योः विज्ञेया ।

जीवसमासाश्चतुर्दश अष्टावेव त्रिभै निर्दिष्टा ॥

सष्णिमसष्णिषु दोष्णि य—संज्ञिजीवे पंचेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्ताप-
र्याप्तौ द्वौ जीवसमासौ भवतः । असंज्ञिजीवे असंज्ञिपर्याप्तापर्याप्ता जीव

१ सासादनं च मिष्यात्वं च सासादनमिष्यात्वे ते च ते सम्बन्धे तद्विधि-
निर्णयः । २ अक्षिप्रासादनं पुस्तके पाठः । ३ एषोऽर्थं द्विष्योऽतः दोष्णे
निहिषोऽस्यानि ।

समासौ स्याताम् । आहारानाहरकेषु ज्ञेया जीवसमासाश्चतुर्दश अष्टा-
वेव । को भावः ? आहारकमार्गणाया चतुर्दशजीवसमासा विज्ञेया ।
अनाहरकमार्गणायामष्टावेव जीवसमासा बोद्धव्या । ते के इति चेदु-
च्यते—एकेन्द्रियसूक्ष्मवादादद्वित्रिचतुरिन्द्रियपचेन्द्रियसइयसज्ञिन एते सप्त
अपर्याप्ताः, एकः सज्ञिपचेन्द्रियपर्याप्तक इत्यष्टौ जीवसमासाः । अनाहारे
एतेऽष्टौ कथं सभवतीत्याशकायामाह—कचिद्विग्रहगत्यपेक्षया क्वचित्के-
वलिसमुद्घातापेक्षया । तथा चोक्तः—

विग्रहगइमावण्णा समुद्घाइयकेवलिअजोगिजिणा ।

सिद्धा य अणाहारा सेसा आहारिया जीवा ॥ १ ॥

जिणेहिं णिदिद्धा—जिनैः कथिता मार्गणासु यथासंभव जीवसमासा
जिनैर्भणिता इत्युक्तिर्लेशः ॥ ११ ॥

इति चतुर्दशमार्गणासु जीवसमासाश्चतुर्दश संक्षेपेण कथिता ।

अथ चतुर्दशमार्गणासु चतुर्दशगुणस्थानान्यवतारयन्नाह ग्रन्थकर्ता
(मार्गणासु गुणस्थाननिरूपणार्थं गाथामाह)—

णारयतिरियणरामरगईसु चउपंचचउदसचयारि ।

इगिदुतिचउरक्खेसु य मिच्छं विदियं च उववादे ॥१२॥

नारकतिर्यङ्गनरामरगतिषु चतुःपंचचतुर्दशचत्वारि ।

एकद्वित्रिचतुरक्षेपु च मिथ्यात्व द्वितीय चोपपादे ॥

इय गाथा यथासंख्य व्याख्येया । नारकतिर्यङ्गनरामरगतिषु चतुः-
पंचचतुर्दशचत्वारि गुणस्थानानि यथासंख्य भवन्ति । इति गतिमार्गणा

१ विग्रहगतिमापन्ना समुद्घातकेवल्ययोगिजिना ।

सिद्धाश्चानाहारका शेषा आहारका जीवा ॥

समाप्ता । इगिदुतिचत्तरक्सेसु य मिच्छं विदियं च उक्त्वादे—एकादि
त्रिचत्तरक्षेपु च एकेन्द्रियेषु द्वीन्द्रियेषु त्रीन्द्रियेषु चतुरिन्द्रियेषु चैक मि
प्यात्सं । च पुन एतेष्वेव द्वितीयं सासादनगुणस्यानं, उक्त्वादे—उत्प-
त्तिकात्वे अपर्याप्तसमये स्यात् । एकेन्द्रियादिषु चतुर्षु मिप्यात्वसासा
दनगुणस्यानद्वयं भवतीत्यर्थं ॥ १२ ॥

चतदस पंचकखतसे घरादितिषु दुगिगि तेयपवणेसु ।

सञ्चाणुमये तेरस मणवयणे वारसङ्गेषु ॥ १३ ॥

चतुर्दश पंचाक्षप्रसयो घरादित्रिषु द्वे एकं तेज-पवनयो ।

सत्यानुभययो प्रयोदश मनोवचनयो द्वादशान्येषु ॥

चतदसेत्यादि । पंचकखतसे—पंचाक्षेषु पंचेन्द्रियेषु मिप्यात्वादि-
चतुर्दशगुणस्थानानि भवन्ति । इन्द्रियमार्गणा समाप्ता । ‘तसे’ इत
प्रारम्य कायमार्गणा निरूप्यते—तसे—इति, प्रसक्तयेषु च मिप्यात्वादि
चतुर्दशगुणस्थानानि स्यु । घरादितिषु दुगि—घरादिषु त्रिषु पृथि
प्यस्वनस्पतिकायेषु, दुगि—मिप्यात्वसासादनगुणस्थानद्वयं भवति । इगि
तेयपवणेसु—तेज पवनकायेषु एकं मिप्यात्वगुणस्थानं भवति । इति
कार्यमार्गणा समाप्ता । सञ्चाणुमयं तेरस मणवयणे—सत्यानुभयमनोयोगे
मिप्यात्वादिप्रयोदश, सत्यानुभयवचनयोगे प्रयोदश । वारसङ्गेषु—अ-
न्येषु असत्पमनोयोगोभयमनोयोगासत्यवचनयोगोभयवचनयोगेषु चतुर्षु
प्रत्येकं वारस—(इत्थं) मिप्यात्वादीनि क्षणिकयायाप्तानि स्यु ॥ १३ ॥

ओरालिष य तेरस मिस्से कम्मे य मिस्सतिथिज्जोगी ।

वेठम्बियदुग चदुतिय पमत्तमाहारदुगे य ॥ १४ ॥

औदारिके च त्रयोदश मिश्रे कर्मणे च मिश्रत्रिकयोगिन ।

वैगूर्धिकद्विके चतुःत्रिक प्रमत्तमाहारकद्विके च ॥

औदारिककाययोगे मिथ्यात्वादिसयोगकेवलिपर्यन्तानि त्रयोदश गुण-
स्थानानि भवन्ति । मिस्से कम्मे य मिस्सतियजोगी—मिस्से इति
औदारिकमिश्रकाययोगे, कम्मे य—इति, कर्मणकाययोगे च, मिस्सतिय-
जोगी—मिश्रत्रिक सयोगिगुणस्थान च भवति । मिश्रत्रिकामिति कोऽर्थ २
मिथ्यात्वसासादनाविरतानीति मिश्रत्रय भण्यते । औदारिकमिश्रकाययोगे
कर्मणकाययोगे च मिथ्यात्वसासादनाविरतसयोगकेवलीनि नामानि च-
त्वारि गुणस्थानानि भवन्तीत्यर्थ । मिश्रकर्मणकाययोर्मिश्रगुणस्थान
कुतो न सभवति २ मरणाभावात् । तथा*चोक्त,—

‘मिश्रे क्षीणे सयोगे च मरण नास्ति देहिनाम्’

इति वचनात् । वेरब्बियदुग चटुतिय—वैक्रियिकद्विके चत्वारि
त्रीणि यथासख्य । वैक्रियिककाययोगे मिथ्यात्वसासादनमिश्राविरतगुण-
स्थानचतुष्टय भवति । वैक्रियिकमिश्रकाययोगे मिथ्यात्वसासादनाविरत-
गुणस्थानत्रिक भवति । प्रमत्तमाहारदुगे य—आहारकद्विके आहारक-
काययोगे आहारकमिश्रकाययोगे च प्रमत्ताख्य एक पष्ठ भवति । इति
योगमार्गणा समाप्ता ॥ १४ ॥

वेदति ए कोहति ए णवगुणठाणाणि दसय तह लोहे ।

अण्णाणति ए दो मइति ए चउत्थादिणव चेव ॥ १५ ॥

वेदत्रिके क्रोधत्रिके नवगुणस्थानानि दशक तथा लोभे ।

अज्ञानत्रिके द्वे मतित्रिके चतुर्थादिनव चैव ॥

वेदति ए—वेदत्रिके स्त्रीवेदपुवेदनपुंसकवेदेषु त्रिषु मिथ्यात्वादीन्य-
निवृत्तिकरणपर्यन्तानि नवगुणस्थानानि भवन्ति । इति वेदमार्गणा ।

कोहृत्तिर् गव-कोषत्रिके क्रोभमानमायासु मिष्यात्वादीन्यनिवृत्तिकरण
 पयन्तानि गुणस्थानानि भवन्ति । दस्य तद् ओहे—सया लोभे मिष्या-
 त्वप्रभतिसूक्ष्मसाम्परायपयन्तं गुणस्थानदशकं भवति । इति कपायमार्गजा
 पूर्णा । अण्णाण्णत्तिर् दो—अज्ञानत्रिके इ गुणस्थाने, कुमतिकुसुतक-
 वविषु त्रिषु प्रत्येकं मिष्यात्वसासादनगुणस्थाने द्वे भवत । मइत्तिर्
 षट्त्वादिगत्र चैव—मतित्रिके मतिध्रुताभविज्ञानेषु षट्त्वर्यादिगत्र चैव
 अविरतादिक्षीणकपायपर्यन्तानि नवगुणस्थानानि भवन्ति ॥ १५ ॥

सग मणपञ्जे केवलणाप्ये जोगदुर्गं पमत्तादी ।

षट् सामाह्यपुण्यले पमत्तपुण्यले च परिहार ॥ १६ ॥

सप्त मन पर्यये केवलज्ञाने योगिद्विकं प्रमत्तादीनि ।

षट्पारि सामायिकपुण्यले प्रमत्तपुण्यले च परिहारे ॥

सग मणपञ्ज—मणपञ्जे—इति, मन पर्ययज्ञाने, सग—इति, सप्त गुणस्वा-
 नानि स्यु । तानि कानि षेदुर्ष्यते प्रमत्तादिक्षीणकपायपर्यन्तानि सप्त
 भवन्ति । केवलणाप्ये जोगदुर्गं—केवलज्ञाने योगद्विकं सयोगायोगकेव
 ट्त्रिगुणस्थानद्वयं भवति । इति ज्ञानमार्गजा । पमत्तादी षट् सामाह्यपु
 ष्ठे—सामायिकपुण्यले सामायिकपुण्यलेपस्यापनद्वयो प्रमत्तापनिवृत्ति-
 करणगुणस्थानपर्यन्तानि षट्पारि भवन्ति । पमत्तपुण्यले च परिहार—
 परिहारविशुद्धिसंयमे तृतीये प्रमत्ताप्रमत्तगुणरूपानद्वयं भवति ॥ १६ ॥

गुह्यं गुह्यं अन्तिमपचारि इत्यति जइत्वाद ।

परिपापरिण इरकं पंचमयं असंज्ञमे पउरो ॥ १७ ॥

गूह्ये गूह्ये अन्तिमपचारि भवन्ति यथाप्यते ।

परितापरिण एकं पंचमकं असंज्ञमे पउरी ॥

सुहमे—इति, सूक्ष्मसाम्पराये चतुर्थे सयमे, सुहम—इति, सूक्ष्मसाम्प-
रायनाम दशम एकं गुणस्थान भवति । अतिमचत्वारि जहखादे—इति,
यथाख्याते पचमसयमे अन्तिमचत्वारि गुणस्थानानि भवन्ति । तानि
कानि किन्नामानि चेत् ? उपशान्तकपायक्षीणकपायसयोगायोगकेवलि-
नामानि ज्ञेयानि । चरियाचरिए ईकक पचमय—चरिताचरिते सयता-
सयते पष्टे सयमे, ईकक पचमय—इति, पचम देशविरताख्य भवति ।
असजमे चउरो—असयते सप्तमे मिथ्यात्वादिचतुर्थगुणस्थानानि चत्वारि
भवन्ति । इति सयममार्गणा पूर्णा ॥ १७ ॥

वारस चखुदुगे णव अवहीए दुण्णि केवलालोए ।

किण्हादितिए चउरो तेजापउमासु सत्तगुणा ॥ १८ ॥

द्वादश चक्षुर्द्विके नव अवधौ द्वे केवलालोके ।

कृष्णादित्रिके चत्वारि तेज.पद्मयो. सप्तगुणाः ॥

वारस चखुदुगे—इति, चक्षुर्द्वये चक्षुर्दर्शनेऽचक्षुर्दर्शने च
मिथ्यात्वादीनि क्षीणकषायपर्यन्तानि द्वादश गुणस्थानानि स्युः ।
णव अवहीए—अवधिदर्शने अविरतप्रभृतिक्षीणकषायावसानानि नवगु-
स्थानानि भवन्ति । दुण्णि केवलालोए—केवलालोके केवलदर्शने, दुण्णि-
सयोगायोगकेवलिगुणस्थानद्वय स्यात् । इति दर्शनमार्गणा । किण्हादि-
तिए चउरो—कृष्णादित्रिके चउरो—मिथ्यात्वसासादनमिश्राविरत्यभि-
धानानि गुणस्थानानि चत्वारि भवन्ति । तेजापउमासु—पीतपद्मलेश्य-
योर्द्वयोः, सत्तगुणा—मिथ्यात्वादीन्यप्रमत्तान्तानि सप्त भवन्ति ॥ १८ ॥

सियलेस्साए तेरस भव्वे सव्वे अभव्वए मिच्छं ।

इगिदह चदु अड खाइयतिए तहण्णोसु णियइक्कं ॥ १९ ॥

सितलेश्यायां त्रयोदश भव्ये सर्वाणि भव्ये मिथ्यात्वं ।

एकादश चत्वारि अथौ क्षायिकत्रये तथान्येषु निजैकम् ॥

सिधलेस्साए तेरस—सितलेश्यायां शुक्ललेश्यायां मिथ्यात्वप्रभृतित्रयो-
दशगुणस्थानानि भवन्ति । इति लेश्यामार्गणा । भव्ये सव्ये—इति, भव्य
जीवे, सव्ये—इति, मिथ्यात्वाद्ययोगकेत्रस्थिपर्यन्तानि चतुर्दशगुणस्थानानि
सर्वाणि भवन्ति । भव्यम्—इति, भव्यजीवे एकं मिथ्यात्वगुणस्थानं
भवति । इति भव्यमार्गणा । इगिदह चतु भव साइयतिए—क्षायिकत्रिके
अत्र यथासंख्येन व्याख्या वर्तते तथाहि—क्षायिकसम्पत्त्वे एकादश
चतुर्थादिसिद्धपर्यन्ताम्बद्वादशगुणस्थानानि विद्यन्ते । वेदकसम्पत्त्वे,
चतु—अधिरताद्यप्रमत्तान्तानि चत्वारि गुणस्थानानि प्रतिपत्तव्यानि ।
एपरामसम्पत्त्वे, अह—अधिरताद्युपशान्तकथाभ्यान्तानि अष्टौ द्वेषानि ।
तहऽण्येषु—तथाम्येषु मिथ्यात्वसासादनमिधेषु, णियइककं—निजैक-
मिति । कोऽर्थः ? मिथ्यात्वसम्पत्त्वे मिथ्यात्वमेकं भवति । सासादन-
सम्पत्त्वे निजे सासादनगुणस्थानमस्ति । मिथ्यनाभि सम्पत्त्वे स्वकीयं
मिथ्यमामगुणस्थानं भवेत् । इति सम्पत्त्वमार्गणा ॥ १९ ॥

सञ्चिभसञ्चिणसु चारस दो पदमादितिदस पण गुणा कमसो ।

आहारभआहारे एसु इदि मग्गणठाणएसु गुणा ॥ २० ॥

संस्पसञ्चिषु द्वादश द्वे प्रथमादित्रयोदश पंच गुणाः कमसः ।

आहारकानाहरके एतेषु इति मार्गणस्थानेषु गुणा ॥

सञ्चिभसञ्चिणसु चारस दो—अत्र यथासंख्याच्छार । संज्ञिजीवे
प्रथमादिकीयक्यापपर्यन्तानि द्वादशगुणस्थानानि स्युः । भसञ्चिणसु—भसं
ञ्चिजीवेषु दो गुणौ मिथ्यात्वसासादने भवत इत्यर्थः । इति संज्ञिमार्गणा ।
पदमादितिदसपणगुणा कमसो आहारभणाहारे—कमसो—इति, अनु

क्रमेण यथासख्यतया, आहारके प्रथममिध्यात्वादिसयोगान्तानि त्रयोदश-
गुणस्थानानि सन्ति । अनाहारके पण गुणा—पञ्चगुणस्थानानि भवन्ति
मिध्यात्वसासादनाविरतिसयोगकेवल्ययोगकेवलिनामानि पञ्चगुणस्थानानि
स्युः । अनाहारके एतानि पञ्चगुणस्थानानि कथं सभवतीत्यारेकाया-
माह—मिध्यात्वसासादनाविरतेषु त्रिषु जीवानां विग्रहगत्या सत्या अ-
नाहरकत्वं सभवति । सयोगकेवलिनि समुद्धातापेक्षया ज्ञेयं । तथा
चोक्त—

विग्गहगइमावण्णा समुग्घयकेवलिअजोगिजिणा ।

सिद्धा य अणाहारा सेसा आहारिया जीवा ॥ १ ॥

अयोगकेवलिनि तु स्वभावतोऽनाहरकत्वमस्ति । एषु इदि मग्गण-
ठाणएसु गुणा—इत्यमुना प्रकारेण एतेषु मार्गणास्थानेषु गुणा गुण-
स्थानानि ज्ञेयाः ॥ २० ॥

इति मार्गणासु गुणा भणिता ।

अथ चतुर्दशमार्गणासु पञ्चदशयोगान् प्रकटयन्नाह सूरीः—

आहारयओरालियदुगेहि हीणा हवंति णिरयसुरे ।

आहारयवेउव्वियदुगजोगे इगिदस तिरियक्खे ॥ २१ ॥

आहारकौदारिकद्विकैः हीना भवन्ति नारकसुरेषु ।

आहारकवैक्रियिकद्विकयोगेन एकादश तिरश्चि ॥

आहारय इत्यादि । णिरयसुरे—नरकगतौ देवगतौ च आहारका-
हारकमिश्रकाययोगे इति द्वय, औदारिकौदारिकमिश्रकाययोगद्वय इति चतु-
र्योगैर्हीना अन्ये उद्धरिता, इगिदस—एकादशयोगा भवन्ति । ते के
इति चेत् १ मनोयोगचत्वारि वचनयोगचत्वारि वैक्रियिककाययोग-

वैक्रियिकमिध्रक्ययोगकर्मणक्ययोगा एवं एकादशयागा नरकगत्या
 देवगत्यां भवन्तीति ज्ञेयं । आहारयवेउभियदुगजोगे इगिदस तिरियक्से-
 तिर्यग्गतौ आहारकाहारकमिध्रवैक्रियिकतन्मिध्रक्ययोगैर्हाना भव्ये
 एकादशयोगा भवन्ति । ते के ? अष्टौ मनोबचनयोगा औदारिकतन्मि-
 ध्रकार्मणक्ययोगाश्चेति त्रय एवं एकादश योगाः स्यु ॥ २१ ॥

वेगुध्वियदुगरहिया मणुए सेरस एयक्खकायेपु ।

पंचसु ओरालदुगं कम्मइयं तिण्णि बियलेसु ॥ २२ ॥

वेगूर्धिकद्विकरहिता मनुजे त्रयोदश एकादशक्येपु ।

पंचसु औदारिकद्विकं कर्मणं त्रयो विकलेपु ॥

वेगुध्वियरहिया मणुए सेरस—इति, मनुष्यगतौ वैक्रियिकवैक्रियिकमि-
 ध्रक्ययोगद्वयरहिता भव्ये त्रयोदश योगा भवन्ति । इति गतिमार्गणा ।
 एयक्खकायेसु पंचसु ओरालदुगं कम्मइयं तिण्णि इति, एकेन्द्रिये, का-
 येसु पंचसु—इति, पृथिव्यप्लेजोवायुवनस्पतिक्रियेषु च औदारिकौदारिक-
 मिध्रक्ययोगद्वयं, कम्मइयं—कार्मण क्ययोग इति त्रयो योगा भवन्ति ।
 बियलेसु इति पदस्य व्याख्यानमुत्तरगाथायां वर्तते ॥२२॥ तथया;—

अणुमयवचनेषु शुभा चतु पंचवसे हु पंचदस जोगा ।

तसकाए विण्णेया पणदइ जोगेसु भियइक्कं ॥ २३ ॥

अनुमयवचनेन पुताः चत्वार पंचाशे तु पंचदश योगा ।

त्रसक्ये विण्णेया पंचदश योगेषु त्रिके ॥

वियलेसु अणुमयवचनेण शुभा चतु—इति, विकलेन्द्रियेषु
 द्वित्रिचतुरिन्द्रियेषु अनुमयवचनेन पुक्ताः चत्वारो योगा भवन्ति ।
 ते के ? औदारिकौदारिकमिध्रकार्मणानुमयवचननामान एते चत्वारो
 योगाः । पंचवसे तु पंचदस जोगा—तु पुन पंचाशे पंचेन्द्रियेषु

पचदश योगा भवन्ति । पचेन्द्रियेषु नानाजीवापेक्षया यथासभव-
मुत्प्रेक्षणीयाः । तसकाए त्रिण्णया पणदह—इति, त्रसकायेषु
सामान्यत्वेन पचदशयोगाः सन्ति । इतीन्द्रियमार्गणाकायमार्गणाद्वयं
जात । जोगेसु णियइक्क—इति, पचदशयोगेषु निजैकः स्वकीयः स्वकीयो
योगो भवति । को भाव १ सत्यमनोयोगे सत्यमनोयोगः, असत्यमनो-
योगेऽसत्यमनोयोगः । एव सर्वत्र ज्ञेय । इति योगमार्गणा ॥ २३ ॥

आहारयदुगरहिया तेरस इत्थीणउंसए पुंसे ।

कोहचउक्के सव्वे अण्णाणदुगे तिदह हुंति ॥ २४ ॥

आहारकद्विकरहिताः त्रयोदश स्त्रीनपुसकयोः पुंसि ।

क्रोधचतुष्के सर्वे अज्ञानद्विके त्रयोदश भवन्ति ॥

आहारय इत्यादि । स्त्रीवेदे नपुसकवेदे च आहारकतन्मिश्रकाययोग-
द्वयरहिता अन्येऽत्रशिष्टास्त्रयोदश योगा भवन्ति । पुंसे—पुंवेदे, सव्वे—
सर्वे पचदश योगाः स्युः । इति वेदमार्गणा । कोहचउक्के सव्वे—क्रोध-
चतुष्के क्रोधमानमायालोभचतुष्टये सर्वे योगा भवन्ति । इति कषाय-
मार्गणा । अण्णाणदुगे—अज्ञानद्विके कुमतिकुश्रुतज्ञाने आहारकद्वय-
योगवर्ज्यास्त्रयोदश योगा भवन्ति ॥ २४ ॥

मिस्सदुगाहारदुगंक्म्मइयविहीण हुंति वेभंगे ।

दस सव्वे णाणतिए मणपज्जे पढमणवजोगा ॥ २५ ॥

मिश्रद्विकाहारद्विककर्मणविहीना भवन्ति त्रिमगे ।

दश सर्वे ज्ञानत्रिके मनःपर्यये प्रथमनवयोगा ॥

मिस्सेत्यादि । विभगज्ञाने क्वधिज्ञाने, मिस्सेत्यादि—औदारिकमि-
श्रवैक्रियिकमिश्रकाययोगद्वयाहारकतन्मिश्रकाययोगद्वयकर्मणकाययोगवि-
हीना उद्धरिता दशयोगा भवन्ति । ते के १ अष्टौ मनोवचनयोगा औ-
दारिकवैक्रियिककाययोगौ एव दश योगाः क्वधिज्ञाने भवन्तीत्यर्थः ।

सध्ये णाणतिए—ज्ञानत्रिके मतिश्रुतात्रिभिर्ज्ञानत्रये सर्वे पंचदशयोगा
भवन्ति । मणपञ्चे पठमणवज्जोगा—मनःपर्ययज्ञाने प्रथमे 'अस्पादेर्वा'
प्रथमा नवयोगा भवन्ति । ते के ? अष्टौ मनोवचनयोगा एक औदा-
रिक्त्योग एवं नवयोगा ॥ २५ ॥

ओरात्थिय तम्मिस्सं कम्मइयं सच्चअणुमयार्थं च ।

मणवयणाण चउष्कं केवलज्जाने सगिगिदेसयं ॥ २६ ॥

औदारिक तन्मिन्न कर्मणं सत्यानुभवानां च ।

मनोवचनानां चतुष्कं केवलज्ञाने सप्त एकदशकं ॥

केवलज्जाने—केवलज्ञाने, सग—सप्तयोगा भवन्ति । कित्तमा-
माम ? ओरात्थियं तम्मिस्सं—औदारिककाययोगः, तन्मिन्न औदारिक-
मिन्नकाम्ययोग, कर्मणकाम्ययोग एते त्रयो योगा । सञ्जेत्यादि—
सत्यानुभवमनोवचनानां चतुष्कं सत्यमनोयोगानुभवमनोयोगौ, सत्य
वचनयोगानुभववचनयोगौ इति चत्वारो योगा एवं एकत्रीकृता सप्त-
योगा केवलज्ञाने भवन्तीत्यर्थः । अत्र तटस्थेनोच्यते—औदारिककाम्ययोग
औदारिकमिन्नकाम्ययोग कर्मणकाम्ययोगैते त्रय केवलज्ञाने कर्षं संभ-
वन्तीति चेत्, तदुच्यते—समुदातापेक्षया संभाषनीया । तथा चोक्तं
आगमग्रन्थे—

इंदियुगे ओरात्थं क्वाडज्जुगळे य पपरसंवरणे ।

मिस्सओरात्थिय मणियं सेसतिए जाण कम्मइय ॥ १ ॥

अस्पा अर्थ — ईदकपाटमुग्गे औदारिककाययोगो भवति । क्वाड-
जुगळे य—अ पुन कपाटप्रतरमुग्गे औदारिककाम्ययोगो भवति । पपरसं-

१ इतिवचनं पुस्तके मूल्यात्वात् टीकाप्राप्त्यापि । १ ओरात्थं टीकायां
पाठः ।

२ ईदिके औदारिकं क्वाडजुगळे च प्रतरसंवरणे ।

मिच्छौदारिकं मन्त्रितं ज्ञेयविके जायीदि कर्मणं ॥

वरणे मिस्तोरालिय भणिय—प्रतरसवरणे प्रतरसमुद्धातसकोचने औदारिकमिश्रकाययोगो भणितः । शेष त्रिकं प्रतरलोकपूरणसवरणत्रये कार्मणकाययोग जानीहि । इति ज्ञानमार्गणा । 'इगिटसय' इति पदस्य उत्तरगाथाया सम्बन्धः ॥ २६ ॥

कम्मइयदुवेगुच्चियमिस्सोरालूण पढमजमजुयँले ।

परिहारदुगे णवयं देसजमे चेव जहखादे ॥ २७ ॥

कार्मणद्विवैक्रियिकमिश्रौदारिकोना. प्रथमयमयुगले ।

परिहारद्विके नवक देशयमे चैव यथाख्याते ॥

इगिटसयामिति पूर्वगाथास्थित पद, एकादशयोगाः प्रथमसयमयुगले सामायिकच्छेदोपस्थापनाद्वये भवन्ति । ते के १ कम्मइय इत्यादि कार्मणकाययोगवैक्रियिकतन्मिश्रकाययोगद्वयौदारिकमिश्रकाययोगैरूना हीना अन्ये एकादशयोगा । ते के २ अष्टौ मनोवचनयोगा औदारिककाययोग आहारकद्वयमित्येकादशयोगाः । परिहारदुगे णवय—परिहारविशुद्धिसूक्ष्मसापरायसंयमद्वये नवयोगा भवन्ति । ते के २ अष्टौ मनोवचनयोगा एक औदारिककाययोग इति नव । देसजमे चेव—च पुन. देशसंयमे एते पूर्वोक्ता मनवचनानामष्टौ, एक औदारिकयोग एव नवयोगा भवन्ति । जहखादे—इति, उत्तर गाथाया सम्बन्धोऽस्ति ॥ २७ ॥

वेउच्चियदुगहारयदुगूण इगिटस असंजमे जोगा ।

तेरस आहारयदुगरहिया चक्खुम्मि मिस्सूणा ॥ २८ ॥

वैक्रियिकद्विकाहरकद्विकोना एकादश असयमे योगाः ।

त्रयोदश आहारकद्विकरहिता चक्षुषि मिश्रोना ॥

जहसाते—यथाख्यातचारित्रे, वेदवियेस्यादि—वैक्रियिकमैक्रियि-
कमिध्याहारकामिध्याहारकमिध्याना एकदश भवन्ति । ते के ? अथौ मनो-
बचनयोगा औदारिकतमिध्याकर्मणकाययोगा एव एकदशयोगा यथा-
ख्यातसंयमे भवन्तीत्यर्थ । असंयमे जोगा तेरस आहारयदुगतरहिया—
असंयमे आहारकयोगाद्वयरहिता अन्ये त्रयोदशयोगा भवन्ति । इति संय-
ममार्गणा । चक्षुस्त्रिमि मिस्तूणा—इति पदस्योत्तरगाथायां सम्बन्ध ॥२८॥

भारस अचक्षुजवद्विस्तु सन्धे सत्तेव केवलालोए ।

किण्हादितिए तेरस पणदह तेजादियचठके ॥ २९ ॥

द्वादश अचक्षुरवप्यो सर्वे सत्तेव केवलालोके ।

कृष्णादित्रिके त्रयोदश पंचदश तेज-आदिकचतुष्के ॥

चक्षुस्त्रिमि मिस्तूणा—इति चक्षुर्दर्शने मिध्याना औदारिकमिध्यावैक्रियि-
कमिध्याकर्मणकायहीना, भारस—द्वादशयोगा भवन्ति । अचक्षुजव-
द्विस्तु सन्धे—अचक्षुर्दर्शनेऽवधिदर्शने च सर्वे पंचदशयोगा स्युः ।
सत्तेव केवलालोए—केवलादर्शने सत्तेव केवलाज्ञानोक्ता भवन्ति । इति
दर्शममार्गणा । किण्हादितिए तेरस—कृष्णादित्रिके कृष्णनीलप्रपोत-
केस्यासु आहारकद्वयं विना त्रयोदश योगा भवन्ति । पणदह तेजादिय-
चठके—पीतपद्मशुद्धेस्यासु मध्ये च इति चतुष्के, पणदह—पंच-
दश योगा भवन्ति ॥ २९ ॥

तिदसाऽमन्धे सन्धे खाइपज्जुम्मे सु उवसमे सम्मे ।

सासणमिच्छे तेरस अतिमिस्ताहारकम्मइया ॥ ३ ॥

त्रयोदशामन्धे सर्वे ज्ञापिकयुग्मे ससु उवसमे सम्यक्त्वे ।

सासादनमिध्यात्वयो त्रयोदश अत्रिमिस्ताहारकर्मणा ॥

अमम्यजीवे आहारद्वयं विना अन्धे त्रयोदश योगा भवन्ति । इति
केषामार्गणा—मम्यमार्गणाद्वय । सन्धे खाइपज्जुम्मे सु—सु सुन्द,

क्षायिकयुग्मे क्षायिकवेदकसम्यक्त्वे च सर्वे पंचदशयोगाः सन्ति ।
उवसमे सम्मे सासणमिच्छे तेरस—इति, उपशमसम्यक्त्वे सासादनसम्य-
क्त्वे मिथ्यात्वसम्यक्त्वे आहारकाहारकमिश्रकाययोगद्वय विना, तेरस—
त्रयोदश योगा भवन्ति । अतिमिस्साहारकम्मइया—इति पदस्य उत्तर-
गाथाया सम्बन्धः ॥ ३० ॥

मिस्से दस सण्णीए सब्बे चउरो असण्णिए जोगा ।

गयकम्मइयाहारे अणाहारे कम्मणो इक्को ॥ ३१ ॥

मिश्रे दश सङ्गिनि सर्वे चत्वारोऽसङ्गिनि योगाः ।

गतकार्मणा आहारके अनाहारके कार्मण एकः ॥

अतिमिस्साहारकम्मइया मिस्से दस इति क्रियाकारकसम्बन्धः। मिस्से—
इति, मिश्रे सम्यक्त्वे दशयोगा भवन्ति । अतिमिस्सेति—त्रिमिश्राश्च औ-
दारिकमिश्रवैक्रियिकमिश्राहारकमिश्रा आहारकश्च कार्मणकश्च त्रिमिश्राहा-
रकार्मणका न विद्यन्ते येषु योगेषु ते तथोक्ताः । कोऽर्थः ? मिश्रसम्यक्त्वे
एते पंचवर्जा अन्ये अष्टौ मनोवचनयोगा औदारिककाययोग-वैक्रियिकका-
ययोगौ द्वौ एव दश योगा भवन्तीत्यर्थः । इति सम्यक्त्वमार्गणा । सण्णीए
सब्बे—सङ्गिजीवे सर्वे योगा भवन्ति । चउरो असण्णिए जोगा—असङ्गि-
जीवे औदारिकौदारिकमिश्रकार्मणकाययोगानुभयभाषा एते चत्वारो योगाः
स्युः । इति सङ्गिमार्गणा । गयकम्मइयाहारे—आहारके जीवे गतकार्मणाः
कार्मणकाययोगवर्जा अन्ये चतुर्दशयोगाः सन्ति । अणाहारे कम्मणो
इक्को—अनाहारके जीवे कार्मणकार्मण एको योगः । कदा यदा जीवो
विग्रहगतिं करोति तदा भवतीत्यर्थः । इति आहारकमार्गणा ॥ ३१ ॥

इति मार्गणास्तु पंचदशयोगा समाप्ता ।

अथ चतुर्दशमार्गणास्यानेषु द्वादशोपयोगा फल्पन्ते,—

णव णव बारस णव गइचउक्कए तिण्णि इगिधितियक्खे ।

चउरक्खे उवओगा चउ बारस हुंति पंचक्खे ॥ ३२ ॥

नव नव द्वादश नव गतिचतुष्के त्रय एकद्वित्र्यक्षे ।

चतुरक्षे उपयोगाश्चत्वारो द्वादश भवन्ति पंचाक्षे ॥

णवोत्थादि । गतिचतुष्के, णव णव बारस णव—नव नव द्वादश

भव । अत्र यथासंख्यासंस्कार । तथाया । नरकगतौ नवोपयोगा । ते

के ? कुमति—कुमुत्त—कवधि—सम्यग्ज्ञानश्रीणि चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनानि

श्रीणि, एवं उपयोगा नव नरकगतौ नारकाणां ज्ञेया । तिर्यग्मातावपि

एते एव उपयोगा नव भवन्ति । मनुष्यगतौ द्वादशोपयोगा भवन्ति ।

ते के ? कुमति—कुमुत्त—कवधि—सुमति—सुमुत्ता—ऽवधि—मनःपर्यय-

केवलज्ञानान्यथै चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनानि चत्वारि एवं द्वादशो-

पयोगा मनुष्यगतौ मनुष्याणां ज्ञातव्या इत्यर्थः । देवगतौ नव ये नारक-

गतावुक्तास्त एवोपयोगा भव भवन्ति । इति गतिमार्गणा । तिण्णि

इगेधितियक्खे—एकेन्द्रिये द्वौन्द्रिये त्रीन्द्रिये च, तिण्णि—इत्युपयोग

त्रयं भवति । कुमति—कुमुत्तज्ञानद्वयं अचक्षुर्दर्शनमेकमिति त्रयं । चउ

रक्खे उवओगा—चतुरिन्द्रिय उपयोगाश्चत्वार । ते के ? कुमति—कुमुत्त

ज्ञानोपयोगौ द्वौ चक्षुरचक्षुर्दर्शनोपयोगौ द्वौ एवं चत्वार । बारस हुंति

पंचक्खे—पंचाक्षे पंचेन्द्रिये द्वादशोपयोगा भवन्ति मनुष्यापेक्षया ।

इतीन्द्रियमार्गणा ॥ ३२ ॥

कुमई कुमुय अचवस्सु तिण्णि वि भूआउतेउवाउवप्ये ।

बारस तसेसु मणवधिसव्वाणुमएसु बारस वि ॥ ३३ ॥

कुमति कुमुत्तं अचक्षु त्रयाऽपि स्वप्नबोवायुवनस्पतिषु ।

द्वादश त्रयेषु मनोवचनसत्यानुमयेषु द्वादशापि ॥

कुमइ इत्यादि । कुमतिज्ञान कुश्रुतज्ञानमचक्षुर्दर्शनमेते त्रयोपयोगाः,
भू इति पृथिवीकाये अष्काये तेजःकाये वायुकाये वनस्पतिकाये च
भवन्ति । वारस तसेसु—इति, त्रसकायेषु द्वादशोपयोगा भवन्ति । इति
कायमार्गणा । मणवचिसच्चाणुभएसु वारस वि—इति, सत्यमनोयोगेऽनु-
भयमनोयोगे सत्यवचनयोगेऽनुभयवचनयोगे एतेषु चतुर्षु योगेषु द्वादशैव
उपयोगा भवन्ति ॥ ३३ ॥

दस केवलदुग वज्जिय जोगचउक्के दुदसय ओराले ।

केवलदुगमणपज्जवहीणा णव होंति वेउव्वे ॥ ३४ ॥

दश केवलद्विक वर्जयित्वा योगचतुष्के द्वादश औदारिके ।

केवलद्विकमनःपर्ययहीना नव भवन्ति वैक्रियिके ॥

दस केवलदुग वज्जिय जोगचउक्के—इति, असत्यमनोयोगोभयमनो-
योगासत्यवचनयोगोभयवचनयोगा इति योगचतुष्के केवलद्विकवर्जिताः
केवलज्ञानकेवलदर्शनद्वयरहिता अन्ये दशोपयोगाः सन्ति । दुदसय ओ-
राले—इति, औदारिककाययोगे द्वादशोपयोगा विद्यन्ते । केवलदुगमणप-
ज्जवहीणा णव होंति वेउव्वे—इति, वैक्रियिककाययोगे केवलज्ञानकेवल-
दर्शनद्वयमनःपर्ययज्ञानहीना अन्ये नव उपयोगा भवन्ति ॥ ३४ ॥

चक्खु विभंगूणा सग मिस्से आहारजुम्मए पढमं ।

दंसणतियणाणतियं कम्मए ओरालमिस्से य ॥ ३५ ॥

चक्षुर्विभगोना. सप्त मिश्रे आहारकयुग्मे प्रथम ।

दर्शनत्रिकाज्ञानत्रिक कर्मणे औदारिकमिश्रे च ॥

चक्खुविभगूणा सग मिस्से—इति, वैक्रियिकमिश्रकाययोगे चक्षुर्दर्श-
नविभंगज्ञानोना. सप्त भवन्ति । के ते २ कुमतिकुश्रुतसुमतिश्रुतावधिज्ञान-
नानि पच अचक्षुर्दर्शनावधिदर्शनद्वयमिति सप्तोपयोगा स्यु । आहार-

सुम्भए पठमं दंसणतिय णाणतियं—आहारकयुग्मे च, पठमं णाणतियं—
प्रथमं ज्ञानत्रिकं प्रथमं दर्शनत्रिकं भवति । कोऽर्थः ? मतिप्रुतावधि
ज्ञानोपयोगाख्य, चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनोपयोगाख्य., एवं पद्मपयोगा
आहारकयुग्मे भवन्तीति स्पष्टार्थः । कस्मिन् भोराखमिस्से य—इति,
पदस्य म्याह्वानं उत्तरगाथायां श्लेषः ॥ ३५ ॥

वेमंगचक्खुदसणमणपञ्जयहीण णव वधूसंठे ।

मणकेवलदुगहीणा णव दस पुंसे कसाएसु ॥ ३६ ॥

विभंगचक्षुर्दर्शनमन पर्ययहीना नव वधूसंठयो ।

मन केवलद्विकहीना नव दस पुंसि कषायसु ॥

कस्मिन् भोराखमिस्से य—कार्मणकषययोगे लौदारिकमिच्छकाययोगे च,
वेमंगचक्खुर्दसणमणपञ्जयहीण णव—विभंगज्ञानचक्षुर्दर्शनमन पर्यय
ज्ञानरहिता अन्ये नवोपयोगा सन्ति । इति योगमार्गणा । वधूसंठे—
कौन्ते नपुंसकवैदे च, मणकेवलदुगहीणा णव—मन पर्यय-केवलज्ञान-
केवलदर्शनरोमिच्छिमिहीना इतरे नवोपयोगा सु । दस पुंस—इति, पुंवेदे
केवलज्ञानकेवलदर्शनाभ्यां विना अन्ये दस उपयोगा भवन्ति । इति
वैदमाणणा । कसाएसु—कोचमानमास्याओमवु केवलज्ञानदर्शनवर्जा दस
एव भवन्ति । इति कषापमार्गणा ॥ ३६ ॥

अण्णाणतिए ताणि य ति चक्खुसुम्भं च पंच सग चउसु ।

चठ तिष्णि षाअ दंसअ पंचमणार्थतिमा दुष्णि ॥ ३७ ॥

अज्ञानत्रिके तास्येव त्रीणि चक्षुर्गुम्भं च पंच सप्त चटुर्दु ।

चत्वारि त्रीणि ज्ञानानि दर्शनानि पंचमज्ञानऽन्तिमौ द्वौ ॥

अण्णाणेत्यादि । अज्ञानत्रिके कुमतिकुमुत्तकषिज्ञानत्रिके, ताणि य
ति—तामि अज्ञानानि त्रीणि । चक्खुसुम्भं च पंच—च पुन चक्षुर्गुम्भं

एव पच । कुमतिज्ञाने कुश्रुतज्ञाने क्वधिज्ञाने च कुमतिकुश्रुतविभग-
ज्ञानानि त्रीणि चक्षुरचक्षुदर्शने द्वे एते उपयोगाः पच स्युः । सग चउसु
चउ तिणिण णाण दंसण—इति, चतुर्षु मतिश्रुतावधिमन.पर्ययज्ञानेषु स-
प्तोपयोगा भवन्ति । ते के १ चत्वारि ज्ञानानि त्रीणि दर्शनानि एव स-
प्तोपयोगा स्युः । पचमणाणतिमा दुणिण—इति, पचमे केवलज्ञाने अ-
न्तिमौ केवलज्ञानदर्शनोपयोगौ द्वौ भवतः । इति ज्ञानमार्गणा ॥ ३७ ॥

सामाइयजुम्मे तह सुहमे सग छप्पि तुरियणाणूणा ।

परिहारे देसजई छवभणिय असंजमे णविति ॥ ३८ ॥

सामायिकयुग्मे तथा सूक्ष्मे सप्त पडपि तुरीयज्ञानोनाः ।

परिहारे देशयतौ षट् भणिता असयमे नवेति ॥

सामाइयजुम्मे तह सुहमे सग—सामायिकयुग्मे सामायिकच्छेदोप-
स्थापनासयमादिके तथा सुहमे—सूक्ष्मसाम्परायसयमे सप्तोपयोगा
भवन्ति । ते के १ मतिश्रुतावधिमन.पर्ययज्ञानोपयोगाश्चत्वारः चक्षुरच-
क्षुरवधिदर्शनोपयोगास्त्रय एव सप्त । छप्पि तुरियणाणूणा परिहारे—
इति, परिहारविशुद्धिसयमे पडप्युपयोगास्तुरीयमनःपर्ययज्ञानोना मति-
ज्ञानादित्रय चक्षुर्दर्शनादित्रय चेति षट् सभवन्ति । देसजई—दशसयमे
सयमासयमे, छवभीणय—पडुपयोगा ये परिहारसयमोक्तास्त एवोपयोगा
भवन्ति । असजमे णविति—असयमे नवोपयोगा । ते के १ कुमत्या-
दित्रय सुमत्यादित्रय एव षट् चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनोपयोगास्त्रय एव नव
भवन्ति ॥ ३८ ॥

पणणाण दंसणचउ जहखादे चक्खुदंसणजुगेसु ।

गयकेवलदुग दंसणगदणाणुत्ता हि अवहिदुगे ॥ ३९ ॥

पंचज्ञानानि दर्शनचतुष्क यथाख्याते चक्षुर्दर्शनयुग्मेपु ।

गतकेवलद्विक दर्शनगतज्ञानोक्ता हि अवधिद्विके ॥

पणणाण दंसणचठ जहसादे—यथाख्यातसंयमे मतिज्ञानादिपंचज्ञानोपयोगा, चक्षुरादिदर्शनोपयोगाश्चत्वार एवमुपयोगा नव भवन्ति । इति संयममार्गणा । चक्षुर्दंसणशुगेसु—चक्षुरश्चक्षुर्दर्शनद्वये, गत्यकेवलदुग्—केवलज्ञानदर्शनद्वयरहिता अन्ये दशोपयोगा स्यु । दंसणेत्यादि, अविदुगे—अविदुर्दर्शने केवलदर्शने च दर्शनाश्रितज्ञानोक्त्य अविदुर्दर्शनोक्ता । तत् कथं ? येऽविदुर्दर्शने कथितास्ते सप्त मतिश्रुतावधिमान पर्ययज्ञानोपयोगाश्चत्वारश्चक्षुरश्चक्षुर्दर्शनोपयोगाश्चोऽविदुर्दर्शने भवन्तीत्यर्थ । यौ केवलज्ञाने केवलज्ञानदर्शनोपयोगौ प्रोक्तौ तौ केवलदर्शने भवत । इति दर्शनमार्गणा ॥ ३९ ॥

मणपञ्चवकेवलदुग्हीणुवओगा इवति किण्हतिए ।

णव दस तेजाजुमले मन्वे वि य दुदस सुक्काए ॥ ४ ॥

मनःपर्ययकेवलद्विकहीनोपयोगा भवन्ति कृष्णात्रिके ।

नव दश तेनोयुगले मन्वेऽपि च द्वादश शुद्धायां ॥

मण इत्यादि । किण्हतिए—कृष्णनीलकापोतलेश्यात्रिके मनःपर्ययकेवलज्ञानकेवलदर्शनैस्त्रिमिहीना अन्ये त्रयोपयोगा भवेसु । दस तेजाजुमले मन्वे—पीतपद्मलेश्यायां चो केवलज्ञानदर्शनवर्णा अन्ये दशोपयोगा सन्ति । मन्वे वि य दुदस सुक्काए—शुक्ललेश्यायां द्वादशोपयोगाः स्यु । इति लेश्यामागणा । मन्वेऽपि च द्वादशोपयोगा सन्ति ॥ ४० ॥

पंच असुह् अमन्वे स्वाइमतिदण य णव सग छेय ।

मिस्सा मिस्स सामण मिच्छे छर्पंच पणय च ॥ ४१ ॥

पंच अशुमा अभम्ये क्षापिकत्रिके च नव सप्त पदेव ।

मिद्धा मिद्ध सासन मिप्यारं पट्ट पंच पंचकं च ॥

पंचेत्यादि । अभम्यतीवे कुमतिकुम्भुतविमंगहानं चक्षुरश्चक्षुर्दर्शनोपयोगा पंच अशुमा भवन्ति । इति मन्वेमार्गणा । स्वाइमतिदण णव

सग छेय—क्षायिकत्रिके नव सप्त षडेव । अत्र यथासख्यालकारः । क्षायिकसम्यक्त्वे कुज्ञानत्रयवर्जा अन्ये नवोपयोगा भवन्ति । वेदकसम्यक्त्वे कुज्ञानत्रयकेवलज्ञानदर्शनद्वयरहिता अपरे सप्तोपयोगा सन्ति । उपशमसम्यक्त्वे सुमत्यादित्रयचक्षुरादित्रय एव षडुपयोगा स्युः । मिस्ता मिस्ते—मिश्रे सम्यक्त्वे मिश्राः षट् भवन्ति । ते के ? मतिश्रुतावधिज्ञानोपयोगास्त्रयो मिश्ररूपाः । मिश्रा इति कोऽर्थः ? किञ्चित्किञ्चित्कुज्ञान किञ्चित्किञ्चित्सुज्ञान चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनोपयोगास्त्रय एव षडुपयोगाः । सासण—इति, सासादनसम्यक्त्वे कुज्ञानत्रयचक्षुरचक्षुर्दर्शनद्वयं एव पचोपयोगाः स्युः । मिच्छे—मिथ्यात्वसम्यक्त्वे सासादनोक्तानामुपयोगानापचक भवति । इति सम्यक्त्वमार्गणा ॥ ४१ ॥

दस सणिण असण्णीए चट्टु पढमाहारए य वारसयं ।

मणचक्खुविभंगूणा णव अणाहारेय उवओगा ॥ ४२ ॥

दश सङ्गिणि असङ्गिणि चत्वारः प्रथमे आहारके च द्वादशकं ।

मनश्चक्षुर्विभगोना नव अनाहारे च उपयोगा ॥

दस सणिण इति । केवलज्ञानदर्शनद्वयरहिता अपरे दशोपयोगा संज्ञिजीवे भवन्ति । असण्णीए चट्टु पढमा—असङ्गिजीवे प्रथमाश्चत्वार उपयोगा भवन्ति । ते के ? कुमतिद्वय चक्षुरचक्षुर्दर्शनद्वयमेव चत्वारः । इति सङ्गिमार्गणा । आहारए वारसय—आहारकजीवे उपयोगानां द्वादशक भवेत् । मणचक्खुविभंगूणा णव अणाहारे उवओगा—अनाहारकजीवे मनपर्ययज्ञानचक्षुर्दर्शनविभगज्ञानैरूना रहिता अन्ये नवोपयोगा भवन्ति ॥ ४२ ॥

इति चतुर्दशमार्गणासु द्वादशोपयोगा निरूपिता ।

अथ चतुर्दशमीवसमासेषु पंचदशयोगा कल्पन्ते;—

षडसु चतुष्के इके जोगा इगि दो हवंति बारसया ।

तन्मषगईसु एदे भवतरगईसु कम्मइओ ॥ ४३ ॥

सप्तसु पुण्येसु इवे ओरालिय मिस्सयं अपुण्णेसु ।

इगिइगिओग विहीणा जीवसमासेसु ते ज्ञेया ॥ ४४ ॥

नवसु चतुष्के एकस्मिन् योगा एको द्वौ भवन्ति द्वादश ।

तद्भवगतिषु एते भवान्तर्गतिषु कर्मण ॥

सप्तसु पूर्णेषु भवेत् औदारिकं मिश्रकं अपूर्णेषु ।

एकैक्याग द्विहीना जीवसमासेषु ते ज्ञेया ॥

गाथाद्वयेन सम्बन्ध । जीवसमासेषु ते ज्ञेया—जीवसमासेषु ते योगा ज्ञेया ज्ञातव्या भवन्ति । कथमित्याह—णवसु चतुष्के इके जोगा इगि दो हवंति बारसया—यथासंख्येन व्याख्येयं, नवसु जीवसमासस्थानेषु इगि—एकत्रे योगो ज्ञेय । चतुष्के—चतुर्षु जीवसमासस्थानेषु, दो—द्वौ योगौ ज्ञातव्यौ । इके—एकस्मिन् जीवसमासस्थाने, बारसया—द्वादशयोगा भवन्ति । नवसु जीवसमासेषु एको योग इत्युक्तं तर्हि नवसमासा के, तत्र एकत्रे योगो क इति चेदुच्यते—एकेन्द्रियसूक्ष्मापर्याप्ति औदारिकमिश्रकाययोग एकः स्यात् । एकेन्द्रियसूक्ष्मपर्याप्ति औदारिककाययोग एको भवति । एकेन्द्रियबादरपर्याप्ति औदारिकमिश्रकाययोगोऽस्ति । एकेन्द्रियबादरपर्याप्ति औदारिककाययोग एको वर्तते । त्रीन्द्रियापर्याप्तकाले औदारिकमिश्रकाययोग एक संभवति । त्रीन्द्रियापर्याप्तकाले औदारिकमिश्रकाययोग एक स्यात् । चतुरिन्द्रियापर्याप्तकाले औदारिकमिश्रकाययोग एक प्रवर्तते । पंचेन्द्रियासंज्ञिजीवापर्याप्ति औदारिकमिश्रकाययोग एक स्यात् । पंचेन्द्रियसंज्ञिजीवापर्याप्तकाले

औदारिकमिश्रकाययोग एको भवति । एव नवसु जीवसमासस्थानेषु योग एको भवति । एव चतुर्षु—जीवसमासेषु द्वौ योगौ भवत इति प्रोक्त तर्हि चत्वारो जीवसमासाः के तत्र द्वौ योगौ कौ इत्याशकायामाह—द्वीन्द्रियपर्याप्ते औदारिककाययोगानुभयवचनयोगौ भवतः । त्रीन्द्रियपर्याप्तकाले औदारिककाययोगानुभयवचनयोगौ स्तः । चतुरिन्द्रियपर्याप्ते औदारिककाययोगानुभयवचनयोगौ वर्तेते । पचेन्द्रियासङ्गिपर्याप्ते औदारिककाययोगानुभयवचनयोगौ सभवतः । इति चतुर्षु जीवसमासेषु द्वौ द्वौ योगौ प्ररूपितौ । एकस्मिन् जीवसमासे द्वादशयोगा भवन्तीति पूर्वगाथाया सूचितं तर्हि एको जीवसमासः कः तत्र द्वादशयोगाः के इत्याह—पंचेन्द्रियसङ्गिपर्याप्तजीवसमासे अष्टौ मनोवचनयोगा औदारिककाययोगवैक्रियिककाययोगाहारकाययोगाहारकमिश्रकाययोगाश्चत्वारः, एव द्वादशयोगाः पचेन्द्रियसङ्गिपर्याप्तकाले सभवन्तीत्यर्थः । इत्येकस्मिन् जीवसमासे द्वादशयोगा निरूपिताः । तन्भवगईसु एदे—इति, तेषामेकेन्द्रियसूक्ष्मापर्याप्तादीनां जीवानां भवप्राप्तेषु, एदे—इति, एते एको द्वौ द्वादश योगा भवन्ति । भवतरगईसु कम्मइओ—कार्मणको योगः स भवान्तरगतिषु । प्रकृताद्भवान्यो भवो भवान्तर तत्र गतयो गमनानि भवान्तरगतिषु भवान्तरगमनेषु कार्मणकाययोगो भवतीत्यर्थः । सत्तसु पुण्णेषु हवे औरालिय—सत्तसु जीवसमासेषु पर्याप्तेषु औदारिककाययोगो भवति । मिस्सय अपुण्णेषु—इति, अपर्याप्तेषु सत्तसु एकेन्द्रियसूक्ष्मवाद्द्वित्रिचतु पचेन्द्रियसङ्गिसङ्गिजीवेषु अपर्याप्तकालेषु सत्तस्थानेषु, मिस्सय—औदारिकमिश्रकायो भवेत् । इगि इगि जोग—इति, द्वीन्द्रियत्री-

१ यदा मनुष्यतियगता जीवा प्राप्नुवन्त तदा औदारिकमिश्र सभवति । यदा नरकदेवगती प्राप्नुवन्ति तदा वैक्रियिकमिश्रकाय सभवति । २ देवनारकापेक्षया वैक्रियिकयोगोऽपि । ३ भत्रापि पचेन्द्रियसङ्गिषु पूर्ववद्व्यवस्था ।

न्द्रियचतुरिन्द्रियपंचेन्द्रियासंज्ञिपर्याप्तिषु चतुःस्थानेषु एकैकस्य योगस्य पुनरप्यन्यस्यैकस्य योगस्य संयोग क्रियते एवं द्वयं स्यात् । ऋऽर्ष ! द्वीन्द्रियादिपर्याप्तिषु चतुःस्थानेषु औत्तारिककाययोगानुमयवचनयोगौ द्वौ भवत इत्यर्थः । विहीणा—पंचेन्द्रियपर्याप्तिषु द्वादशयोगा भवन्तीति कथितं तत्रैकं योगास्तु पंचदश वर्तन्ते ! ते योगाः, विहीणा—शाम्या-मौदारिकमिथक्कायबैक्रियिकमिथक्कायाम्यां हीना क्रियन्ते । भर्वातरगर्भसु कम्मइओ इति वचनात् कर्मणकायेन विना अन्ये द्वादशयोगा पंचेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्तकेषु भवन्तीत्यर्थः ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

इति बीजसमासेषु योग्य उपपत्त्याः ।

अथ चतुर्दशजीवसमासेषु पद्यासंभवमुपयोगाः स्मर्यन्ते,—

कुमरदुगा अचक्षुः त्रिय दससु दुगे चतु इवन्ति अक्षुःसुद ।
सण्णियपुण्ये पुण्ये सग दस जीवेषु उक्त्वोगा ॥ ४५ ॥

कुमरिद्विकी अचक्षुः त्रय दशसु द्विके अस्वारो भवन्ति ।

चक्षुर्मुता संस्यपर्याप्ति पर्याप्ते सप्त दश जीवेषु उपयोगा ॥

कुमरदुगा अचक्षुः त्रिय दससु—इति, दशसु जीवसमासेषु कुमरि-कुशुतज्ञानोपयोगौ द्वौ अचक्षुर्दर्शनोपयोगश्चैक एते त्रय उपयोगा भवन्ति । ते दशजीवसमासाः के पेष्वेते त्रय उपयोगा जायन्ते तदाह—एकेन्द्रियसू-क्ष्मापर्याप्तः, एकेन्द्रियसूक्ष्मपर्याप्तः, एकेन्द्रियबादरापर्याप्तः, एकेन्द्रियबा-दरापर्याप्तः द्वीन्द्रियापर्याप्तः द्वीन्द्रियपर्याप्तः, त्रीन्द्रियापर्याप्तः, त्रीन्द्रियप-र्याप्तः, चतुरिन्द्रियापर्याप्तः, पंचेन्द्रियासंज्ञिजीवापर्याप्तः । एतेषु दशसु जीवसमासेषु कुमरिद्विकी कुशुतज्ञानोपयोगौ द्वौ अचक्षुर्दर्शनोपयोगश्चैते त्रयो

भवन्तीति स्पष्टार्थ । दुगे चट्टु हवति चक्खु जुदा—इति, द्वयोर्जीवसमा-
मयोः चतुरिन्द्रियपर्याप्तपचेन्द्रियासङ्गिजीवपर्याप्तयोश्चत्वार उपयोगा भ-
वन्ति । ते के १ पूर्वोक्ता कुमतिकुश्रुताचक्षुर्दृर्शनोपयोगास्त्रयः, चक्खु
जुदा—इति, चक्षुर्दृर्शनोपयोगसहिता एव चत्वार उपयोगाः स्युः । सण्णि
अगुण्णे पुण्णे सग दस—अत्र यथासख्याञ्कार, पचेन्द्रियसंज्ञ्यपर्याप्ते
सग—इति, सप्तोपयोगा भवन्ति । ते के १ कुमतिश्रुतसुमतिश्रुतावधि-
ज्ञानोपयोगाः पच अचक्षुर्दृर्शनावधिदर्शनोपयोगी द्वौ एव सप्त । पुण्णे
दस—पचेन्द्रियसङ्गिपर्याप्ते उपयोगा दश भवन्ति । ते ते दश १ केवल-
ज्ञानदर्शनवर्ज्या अन्ये दशोपयोगाः स्युः । जीवेषु उवओगा—जीवस-
मासेषु द्वादशोपयोगा यथाप्राप्ति प्ररूपिताः ॥ ४५ ॥

इति जीवसमासेषूपयोगा न्यस्ताः ।

अथ चतुर्दशगुणस्थानेषु यथासभव योगा निरूप्यन्ते,—

मिच्छदुगे अयदे तह तेरस मिस्से पमत्तए जोगा ।

दस इगिदस सत्तसु णव सत्त सयोगे अयोगी य ॥ ४६ ॥

मिध्यात्वद्विके अयते तथा त्रयोदश मिश्रे प्रमत्तके योगाः ।

दशैकादश सप्तसु नव सप्त सयोगे अयोगिनि च ॥

मिच्छेत्यादि । मिध्यात्वप्रथमगुणस्थाने सासाढनगुणस्थाने च तथा
अयदे—चतुर्थगुणस्थाने, तेरस—इति, आहारकाहारकमिश्रयोगाम्या विना
अन्ये त्रयोदश योगा भवन्ति । मिस्से पमत्तए जोगा दस इगिदस—अत्र
यथासख्यत्वेन भाव्य, मिस्से—तृतीये मिश्रगुणस्थाने दश योगा भवन्ति ।
ते के १ अष्टौ मनोवचनयोगा औदारिककायवैक्रियिकाययोगौ द्वौ एवं
दश । पमत्तए जोगा इगिदस—षष्ठे प्रमत्तगुणस्थाने योगा एकादश

भवन्ति । ते के ? अष्टौ मनोबधनयोगा औदारिककाम्ययोग आहारक-
काम्ययोगस्तन्मिथकाम्ययोगश्चेति त्रय एव एकादश योगा । सप्तसु पञ्च-
सप्तसु गुणस्थानेषु पंचमे देशविरते सप्तमेऽप्रमत्ते अष्टमेऽदृष्टकरणे
नवमेऽनिवृत्तिकरणे दशमे सूक्ष्मसाम्पराये एकादशे उपशान्तकथाये द्वा-
दशे क्षीणकथाये एवं एतेषु कथितेषु सप्तगुणस्थानेषु नव योगा स्युः ।
ते के ? अष्टौ मनोबधनयोगा औदारिककाम्ययोगश्चैव एव नव । सप्त
सयोगे—सयोगकेतविति सप्त योगा भवन्ति । ते के ? सत्यमनोयो-
गोऽनुभयमनोयोग सत्यबधनयोगोऽनुभयबधनयोग औदारिककाम्ययो-
गस्तन्मिथकाम्ययोग कर्मणकाम्ययोग इति सप्त योगाः । अयोगिनि चतु-
र्विंशत्गुणस्थाने शून्यं योगाभाव ॥ ४६ ॥

इति गुणस्थानेषु बोध विरूपिता ।

अथ चतुर्विंशत्गुणस्थानेषु द्वावशोपयोगा वर्ण्यन्ते,—

पदमदुगे पण पणय मिस्ता मिस्ते तदो दुगे छक्कं ।

सचुक्खोया सचसु दो ओगि अजोगिगुणठापे ॥ ४७ ॥

प्रथमाद्विके पंच पंचकं मिथा मिथे ततो द्विके पट्कं ।

सप्तोपयोगा सप्तसु द्वौ योग्ययोगिगुणस्थाने ॥

पदमदुगे—प्रथमाद्विके मिथ्यात्वसासादनगुणस्थाने पणपणयं—पंच
पंच उपयोगा भवन्ति । ते के ? कुमतिकुश्रुतविभगञ्जानोपयोगाश्चय चक्षुस्-
चक्षुर्दर्शनोपयोगौ द्वौ एव पंच । मिस्ता मिस्ते तदो दुगे छक्कं—
मिथ्यगुणस्थाने सृतीये, तदो—इति ततो मिथ्यगुणस्थानात्, दुगे—इति,
अविरते चतुर्विंशत्गुणस्थाने देशविरतगुणस्थाने पंचमे छक्कं—पदुपयोगा
भवन्ति । के ते ? मतिश्रुतावधिज्ञानोपयोगाश्चय चक्षुरचक्षुस्त्वभिदर्श-

नोपयोगास्त्रयः । अत्र एतावान् विशेषः—ये मिश्रगुणस्थानगा उपयोगास्ते मिश्रा भवन्ति । सत्तुत्रजोगा सत्तसु—सप्तसु गुणस्थानेषु प्रमत्ताप्रमत्तापूर्वकरणानिवृत्तिकरणसूक्ष्मसाम्पराययथाख्यातोपशान्तकपायक्षीणकपायाभिधानेषु उपयोगाः सप्त भवन्ति । ते के ? सुमतिश्रुतावधिमनः-पर्ययज्ञानोपयोगाश्चत्वारः चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनोपयोगास्त्रय एते सप्त स्युः । दो जोगिअजोगिगुणठाणे—सयोगिनि त्रयोदशगुणस्थाने अयोगिनि च द्वौ उपयोगौ स्तः । तौ कौ ? केवलज्ञानदर्शनोपयोगौ द्वौ ॥ ४७ ॥
इति चतुर्दशगुणस्थानेषूपयोगा जाता ।

अथ चतुर्दशमार्गणासु सप्तपचाशत्प्रत्यया यथासंभव कथ्यन्ते । अथ बालबोधनार्थं तेषां प्रत्ययानां पूर्वं नामानि निगद्यन्ते,—

मिच्छत्तमविरदी तह कसाय जोगा य पञ्चयाभेया ।

पण दुदस ब्रंधहेद् पणवीसं पण्णरसा हुंति ॥ ४८ ॥

मिथ्यात्वमविरतयस्तथा कपाया योगाश्च प्रत्ययभेदाः ।

पञ्च द्वादश बन्धहेतवः पञ्चविंशति पञ्चदश भवन्ति ॥

मिच्छत्त—मिथ्यात्वपञ्चक एकान्तविपरीतविनयसशयाज्ञानोद्भवमिति पञ्चभेदः । तथा चोक्तः—

मिच्छंछोदणं मिच्छत्तमसद्ग्रहणं च तच्च अत्थाणं ।

एयतं विवरीयं विणयं ससयिदमण्णाणं ॥ १ ॥

अविरदी (अविरतयः) द्वादश । कास्ताः ? उक्तं च—

छांसिदिपसु विरदी छज्जीवे तह य अविरदी चैव ।

इंदियपाणासंजम दुदस होदित्ति णिद्धिं ॥ १ ॥

१ मिथ्यात्वोदयेन मिथ्यात्व अश्रद्धानं च तत्त्वार्थानां ।

एकान्त विपरीत विनय सशयितमज्ञानमिति ॥

२ पट्टं विन्द्रियेषु अविरति पट्टजीवे तथा चाविरतिश्चैव ।

इन्द्रियप्राणासयमा द्वादश भवन्तीति निर्दिष्टं ॥

तह कसाय—इति, तथा कषाया पंचविंशति । के ते ? अनन्तानु-
बन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसंग्रहविकल्पा क्रोधमानमायाखोभा इति
षोडश, हास्यरस्यरतिशोकमयशुगुन्सास्त्रीपुनपुस्तकमेदा एवं पिण्डीकृता
पंचविंशति स्यु । योगा इति पंचदश । ते के ? सत्यासत्योभयानु-
भयममोहचनविकल्पा षष्टौ योगा औदारिकौदारिकमिथ्यैक्रियिक्रियैक्रि-
यिक्रिमिथ्याहारकाहारकमिथ्यैकर्मणकर्मयोगा सप्त, एवमेकत्रीकृता पंच-
दशयोगा । पक्षयामेया—प्रत्ययभेदा आत्मवप्रकारा । पण दुदस—अत्र
यथासंख्यं, पण—मिथ्यात्वं पंचप्रकारं । दुदस—अविरतयो द्वादश ।
पणवीसं—कषाया पंचविंशति । पण्णरसा—योगा पंचदश । इति—
भवन्ति । कथंभूता एत ? वचहेतु—कर्मबन्धहेतव कर्मबन्धकारणानी
स्यु ॥ ४८ ॥

आहारोरात्रियदुग्तिवीपुंसोहीण गिरइ इगिवर्ण्यं ।

आहारयवेउध्वियदुगुण सेवण्ण तिरियक्खे ॥ ४९ ॥

आहारौदारिक्रिक्रिक्रिक्रीपुहीना मरके एकपंचाशत् ।

आहारकवैमिथिक्रिक्रिक्रोना त्रिपंचाशत् तिरिभि ॥

आहारेत्यादि । गिरइ—मरकगतौ आहारकाहारकमिथ्यद्वयं औदारि-
कौदारिकमिथ्यद्वयं क्रीबेदपुंवेदद्वयं एते पद्भिर्मर्हाना, इगिवर्ण्यं—अग्ये
उद्धरिता एकपंचाशत्प्रत्यया भवन्ति । आहारयेतादि—तिरियक्खे—
थियगतौ आहारकतन्मिथ्यद्वयं वैक्रियिक्रतन्मिथ्यद्वयं एतेभ्यस्तुमित्कना अपरे
तेषण्ण—त्रिपंचाशत् आत्मवा भवन्ति ॥ ४९ ॥

पणवर्ण्यं वेउध्वियदुगुण मणुएमु इति भावण्यं ।

संढाहारोरात्रियदुगेहिं हीप्पा सुरगईए ॥ ५० ॥

पचपचाशत् वैक्रियिकद्विकोना मनुजेषु भवन्ति—

द्विपचाशत् । पढाहारौदारिकद्विकैर्हीना. सुगत्याम् ॥

मणुएमु—मनुजेषु मनुष्यगतौ, वेडध्वियदुगूण—वैक्रियिकतन्मिश्र-
द्विकोना, पणवण्ण—पचपचाशत्प्रत्यया, हृति—सभवन्ति । वावण्ण
सढाहारौरालियदुगेहिं हीणा मुरगईए—मुरगतौ नपुसकवेडश्चाहारकतन्मि-
श्रद्वय च औदारिकौदारिकमिश्रद्वय च तैः पचभिर्हीना, वावण्ण—द्वाप-
चाशदान्मवा स्युः । इति गतिमार्गणासु प्रत्यया निरूपिता ॥५०॥

मणरसणचउक्किक्कीपुुरिसाहारयवेउव्वियजुगेहिं ।

एयक्खे मणवच्चिअडजोगेहिं हीण अडतीसं ॥ ५१ ॥

मनोरसनचतुष्कस्त्रीपुरुपाहारकवैक्रियिकयुगं ।

एकाक्षे मनोवागष्ट्योगैर्हीना अष्टात्रिंशत् ॥

एयक्खे—एकेन्द्रियजीवेषु, मणरसेत्यादि—मनश्च रसनचतुष्कमिति
रसनप्राणचक्षु श्रोत्रचतुष्क च स्त्रीवेदश्च पुवेदश्च आहारकाहारकमिश्रद्वय
च वैक्रियिकतन्मिश्रयुगम चैतैरेकादशाभिर्हीना पुन मणवच्चिअडजोगेहिं
—सत्यासत्योभयानुभयमनोवचनयोगैरष्टभिर्हीना अन्येभ्य एकोनविंशति-
प्रत्ययेभ्य उद्धरिता अन्ये, अडतीस—अष्टात्रिंशत्प्रत्यया भवन्ति ॥५१॥

एदे य अंतभासारसणजुया घाणचक्खुसंजुत्ता ।

चालं इगिवेयालं कमेण वियलेसु विण्णेया ॥ ५२ ॥

एते च अन्तभापारसनायुक्ता घ्राणचक्षु सयुक्ता ।

चत्वारिंशत् एकद्विचत्वारिंशत् क्रमेण विकलेषु विज्ञेयाः ॥

क्रमेण—अनुक्रमेण, वियलेसु—विकलत्रयेषु द्वित्रिचतुरिन्द्रियेषु,
विण्णेया—प्रत्यया ज्ञातव्या स्युः । कथं ? एदे य—एकेन्द्रियोक्ता
अष्टात्रिंशत्प्रत्यया अन्तभापारसनायुक्ता अनुभयवचनजिह्वासहिता ।

घाटं—चत्वारिंशत्प्रत्यया द्विन्द्रियबीजे भवन्तीत्यर्थ । पुनरेते पूर्वोक्त
अष्टात्रिंशत् अनुमयवचनरसनघ्राणसहिता , इगियाळं—एकचत्वारिंशदा-
स्रवालीन्द्रिये स्यु । तथा पूर्वोक्त अष्टात्रिंशत् अनुमयवचनत्रिन्द्रेन्द्रिय-
घ्राणक्षु संयुक्ता , बेयाळं—द्विचत्वारिंशत् चतुरिन्द्रिये हातम्या
इत्यर्थ ॥ ५२ ॥

पचेदिए तसे तह सव्ये एयकसठत अडतीसा ।

यावरपणए गणिया गणणादेहि पचया नियमा ॥ ५३ ॥

पंचेन्द्रिये तसे तथा सर्वे एकसठोक्त अष्टात्रिंशत् ।

स्यावरपंचके गणिता गणनाथै प्रत्यया नियमात् ॥

पंचेत्यादि । पंचन्द्रिये बीजे नानाबीजापेक्षया सर्वे प्रत्यया भवन्ति ।
इन्द्रियमार्गणासु प्रत्यया । तसे तह सव्ये—तथा तसे त्रसकाये सर्वे
सप्तपंचाशन्नानाबीजापेक्षया भासन्वा भवन्ति । यावरपणए—स्याव-
रपंचके पृथिव्यप्तंजावायुवनस्पतिक्रयेषु पंचसु, एयकसठत अडतीसा—
एकोन्द्रिये ये उक्ता अष्टात्रिंशत्प्रत्यया एव ते भवन्तीत्यर्थ । गणिया गण-
णादेहि पचया नियमा—नियमाभिधियात् गणनाथैर्गणभरै प्रत्यया
गणिता यथासंभवं संख्यां नीता । इति कायमार्गव्याख्यानम् ॥५३॥

आहारदुर्गं हिता अणमु जोएमु गिय गियं धित्ता ।

जोगं त सेदाला णायम्वा अणजोगूजा ॥ ५४ ॥

आहारकदिकं हन्वा अम्येणु योगेणु नित्रं नित्रं गृत्वा ।

यामं त त्रिचत्वारिंशत् हातम्या अम्ययागोनाः ॥

आहारदुर्गं हिता—आहारदिकं हन्वा वर्धयित्वा । अणमु जोएमु
गिय गियं धित्ता मार्ग—अम्येणु प्रयादशयोगेणु मध्य नित्रं नित्रं एषकीयं

स्वकीयं योग धृत्वा पुनः, अण्णजोगूणा—अन्यैर्द्वादशभिर्योगैरूनास्ते,
तेदाला णायव्वा—इति, ते प्रत्ययाः स्वकीयस्वकीययोगयुक्ताः त्रिचत्वारिं-
शदास्रवा ज्ञातव्याः । अथ स्पष्टतयोच्यते—सत्यमनोयोगे मिथ्यात्वपंच
(क) अविरतयो द्वादश कपायाः पचविंशतिः स्वकीयमनोयोगश्चैक
एव त्रिचत्वारिंशत् आस्रवा भवन्ति । एवं असत्यमनोयोगे ४३, उभय-
मनोयोगे ४३, अनुभयमनोयोगे ४३, सत्यवचनयोगे ४३, असत्यवच-
नयोगे ४३, उभयवचनयोगे ४३, अनुभयवचनयोगे ४३, औदारिक-
काययोगे ४३, तन्मिश्रे ४३, वैक्रियिककाययोगे ४३, तन्मिश्रकाययोगे
४३, कर्मणकाययोगे ४३, ॥ ५४ ॥

संजालासंढित्थी हवंति तह णोकसायणियजोया ।

वारस आहारजुगे आहारयउहयपरिहीणा ॥ ५५ ॥

सज्वलना अषण्ढच्चियो भवन्ति तथा नोकषायनिजयोगाः ।

द्वादश आहारकयुगे आहारकोभयपरिहीनाः ॥

आहारजुगे—आहारककाययोगे तन्मिश्रकाययोगे च, वारस—द्वादश
प्रत्यया भवन्ति । ते के ? संजाला इत्यादि । सज्वलनक्रोधमानमायालो
भाश्चत्वार, तह—तथा, असंढित्थी—षट्स्त्रीवेदद्वयवर्जिता अन्ये
हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सापुंवेदा इति नोकषाया सप्त । णियजोया—
स्वकीयस्वकीययोगश्चैकैक । आहारके आहारककाययोग, आहारकमिश्रे
आहारकमिश्रकाययोग इत्यर्थः । इति योगमार्गणाया योगा (आस्रवाः)
निरूपिता । ‘ आहारयउहयपरिहीणा ’ इति पदस्य व्याख्यानं उत्तर-
गाथायां ॥ ५५ ॥

तथा हि,—

इत्थिणउंसयवेदे सव्वे पुरिसे य कोहपमुहेसु ।

णियरहियइयरवारसकसायहीणा हु पणदाला ॥ ५ ॥

चालं—चत्वारिंशत्प्रत्यया द्वीन्द्रियजीवे भवन्तीत्यर्थ । पुनरेते पूर्वोक्त
 अष्टात्रिंशत् अनुमयवचनरसनघ्राणसाहिता , इगियालं—एकचत्वारिंशदा-
 स्रबास्त्रीन्द्रिये स्यु । तथा पूर्वोक्त अष्टात्रिंशत् अनुमयवचनत्रिंशेन्द्रिय-
 घ्राणचक्षु संयुक्त , वेयालं—द्विचत्वारिंशत् चतुष्टिन्द्रिये वातव्या
 इत्यर्थ ॥ ५२ ॥

पंचेदिए तसे तह सभ्ये एयकखठच अठतीसा ।

धावरपणए गणिया गणणाहेहि पचया गियमा ॥ ५३ ॥

पंचेन्द्रिये त्रसे तथा सर्वे एकास्त्रोक्त अष्टात्रिंशत् ।

स्यावरपंचके गणिता गणनाथै प्रत्यया नियमात् ॥

पंचेत्यादि । पंचेन्द्रिये जीबे नानाजीवापेक्षया सर्वे प्रत्यया भवन्ति ।
 इन्द्रियमार्गिणां प्रत्यया । तसे तह सभ्ये—तथा त्रसे त्रसकाये सर्वे
 सप्तपंचाशानानाजीवापेक्षया आस्रबा भवन्ति । धावरपणए—स्याव
 रपंचके पृथिव्यप्तेजावायुवमस्पतिक्रापेषु पंचसु, एयकखठच अठतीसा—
 एकेन्द्रिये ये उक्त अष्टात्रिंशत्प्रत्यया एव ते भवन्तीत्यर्थ । गणिया गण-
 नाहेहि पचया गियमा—नियमाभिधयात् गणनाधिर्गणभै प्रत्यया
 गणिता यथासंभव संख्या नीता । इति कायमार्गिणास्त्रास्रबा ॥५३॥

आहारदुगं दित्ता अण्णसु जोएसु गिय गिय धित्ता ।

जोगं त तदाला णायव्वा अण्णजोगूणा ॥ ५४ ॥

आहारकदिके हत्वा अन्यसु योगेषु निजं निजं भूत्वा ।

योगं ते त्रिबन्धा र्शात् वातव्या अन्ययोगेना ॥

आहारदुगं दित्ता—आहारकदिके हत्वा वर्जयित्वा । अण्णसु जोएसु
 गिय गिय धित्ता जोगं—अभ्येषु त्रयादशयोगेषु मध्ये निजं निजं स्वकीयं

कुमड्दुगे—कुमतिज्ञाने कुश्रुतज्ञाने च, पणवण्ण आहारदुगूण—
आहारकाहारकमिश्रद्विकोना अन्ये, पणवण्ण—पंचपचाशत्प्रत्यया भवन्ति ।
कम्ममिस्सूणा वावण्णा वेभगे—विभगे क्वधिज्ञाने आहारकाहारकमिश्र-
कार्मणवैक्रियिकमिश्रौदारिकमिश्रै. पचभिर्हीना अन्ये, वावण्णा—द्वापचा-
शदास्रवा स्युः । 'मिच्छअणपचचउहीणा' पदव्याख्याप्रगाथाया ॥५७॥

णाणतिए अडदालाऽसंढित्थीणोकसाय मणपज्जे ।

वीसं चउसंजाला णवादिजोगा सगंतिल्ले ॥ ५८ ॥

ज्ञानत्रिके अष्टचत्वारिंशत् अपण्ढस्त्रीनोकपाया मन पर्यये ।

विंशतिः चतुःसज्वलनाः नवादियोगा सप्तान्तिमे ॥

मिच्छअणपचचउहीणा णाणतिए अडदाला—णाणतिए—ज्ञानत्रिके
सुमतिश्रुतावधिज्ञानेषु मिथ्यात्वपचकानन्तानुवाविचतुष्कहीना अन्ये अष्टा-
चत्वारिंशत्प्रत्ययाः स्युः । असढीत्यादि—मणपज्जे—मन.पर्ययज्ञाने, वीस
—विंशतिः प्रत्यया भवन्ति । के ते १ असढित्थीणोकसाय—पढस्त्री-
वेदद्वयवज्या अन्ये पुवेदहास्यरत्तरतिशोकभयजुगुप्सानामानः सप्त नोक-
षयाः, चउसजाला—चत्वार. सज्वलनक्रोधमानमायालोभा, णवादिजोगा
—अष्टौ मनोवचनयोगा औदारिक एक इति नव ते सर्वे पिण्डीकृता
विंशतिरास्रवा । सगंतिल्ले—अतिल्ले—अन्तज्ञाने केवलज्ञाने, सग—
सप्त प्रत्यया भवन्ति । के ते १ सत्यमनोयोगानुभयमनोयोगसत्यवचनयो-
गानुभयवचनयोगाश्चत्वार औदारिकौदारिकमिश्रकार्मणकाययोगास्रय एवं
सप्त । इति ज्ञानमार्गणायामास्रवा ॥ ५८ ॥

वेउव्विदुगूराणियमिस्सयकम्मूण एयदसजोया ।

संजालणोकसाया चउवीसा पढमजमजुम्मे ॥ ५९ ॥

वैगूर्विकद्विकौदारिकमिश्रकार्मणोना एकादशयोगाः ।

सज्वलननोकपायाः चतुर्विंशति प्रथमयमयुग्मे ॥

स्त्रीनपुंसकवेदे सर्वे पुरुष च क्रोधप्रभतियु ।

निवर्द्धिततरद्वादशकयापहीना हि पंचचत्वारिंशत् ॥

आहारद्वयपरिहीणा इति षण्ठसप्तवेदे—स्त्रीवेदे नपुंसकवेदे च
आहारद्वयपरिहीना । तथा स्त्रीवेदे निरूप्यमाणे स्त्रीवेदो भवति, नपुं
सकवेद निरूप्यमाणे नपुंसकवेदो भवेत्, पुत्रवेदे निरूप्यमाणे पुत्रवेदोऽ-
स्ति । एवं एकस्मिन् वद निरूप्यमाणे स्वकीयवेदः स्यात् । अन्यवेद
द्वयं न भवति । कोऽर्थः ? स्त्रीवेदे नपुंसकवेद च भिष्यात् ५ अवि-
रति १२ कयाय २३ योग १३ एवं त्रिपंचाशत् अस्रवा स्युरित्यर्थः ।
सम्यं पुरिसे य—इति, पुत्रेद स्त्रीवदमपुंसकवेदद्वयरहिता अन्ये पंचपंचाश
त्प्रत्यया भवन्ति । क्रोधपनुहेसु—क्रोधमानमायालोभेषु चतुषु, हु—
सुष्टं, पणदात्रा—पंचचत्वारिंशत्प्रत्यया भवन्ति । कयमिति चत् । णि
यरहियश्चरवारसकसायहीणा—स्वकीयस्वकीयकयायचतुष्करहिता इतर-
द्वादशकयापहीना । क्रोधचतुष्के यदा स्वकीय क्रोधचतुष्क गृह्यते तदा
इतरे द्वादश कयाया न भवन्ति । यदा मानचतुष्के स्वकीयमानचतुष्कं
गृह्यते तदा तन्परे द्वादशकयाया न स्यु । एवं मायालाभयोर्लोभनीयं ।
अनु च स्पष्टार्थं पंचचत्वारिंशत्प्रत्यया गम्यन्ते, किं नामान ? तथा
हि—अनस्तानुषप्पादिक्रोधचतुष्के भिष्यात् ५ अविरति १२ अन-
स्तानुषप्पादिक्रापचतुष्कं ४ याग १५ हास्यादि ० एवं ४५ । अयं
प्रम मानचतुष्य मायाचतुष्के लाभचतुष्के सभाभाय । इति
कयायमागणायां कयाया १ ॥ १६ ॥

सुमद्गुण पणदण्ण आहारदुगुण कम्ममिम्मूणा ।

पायण्णा चमग मिच्छंअणपंचनउहीणा ॥ ५७ ॥

सुमतिदिके पंचपंचाशत् आहारकदिकाना कर्ममिथ्रीना ।

द्वार्यवागन् रिभेगे भिष्यान्वानपंचचतुर्हीना ॥

कुमद्दुगे—कुमतिज्ञाने कुश्रुतज्ञाने च, पणवण्ण आहारदुग्गूण—
आहारकाहारकमिश्रद्विकोना अन्ये, पणवण्णं—पचपचाशत्प्रत्यया भवन्ति ।
कम्ममिस्सूणा वावण्णा वेभगे—विभगे क्वधिज्ञाने आहारकाहारकमिश्र-
कार्मणवैक्रियिकमिश्रौदारिकमिश्रैः पचभिर्हीना अन्ये, वावण्णा—द्वापचा-
शदास्रवा स्युः । 'मिच्छअणपचचउहीणा' पदव्याख्याप्रगाथाया ॥५७॥

णाणतिए अडदालाऽसंढित्थीणोकसाय मणपज्जे ।

वीसं चउसंजाला णवादिजोगा सगंतिल्ले ॥ ५८ ॥

ज्ञानत्रिके अष्टचत्वारिंशत् अपण्ढस्त्रीनोकपाया मनःपर्यये ।

विंशतिः चतुःसज्वलनाः नवादियोगा सप्तान्तिमे ॥

मिच्छअणपचचउहीणा णाणतिए अडदाला—णाणतिए—ज्ञानत्रिके
सुमतिश्रुतावधिज्ञानेषु मिथ्यात्वपचकानन्तानुवाविचतुष्कर्हाना अन्ये अष्टा-
चत्वारिंशत्प्रत्ययाः स्यु । असढीत्यादि—मणपज्जे—मन पर्ययज्ञाने, वीस
—विंशतिः प्रत्यया भवन्ति । के ते ? असढित्थीणोकसाय—पढस्त्री-
वेदद्वयवर्ज्या अन्ये पुवेदहास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सानामान. सप्त नोक-
षयाः, चउसजाला—चत्वारः सज्वलनक्रोधमानमायालोभाः, णवादिजोगा
—अष्टौ मनोवचनयोगा औदारिक एक इति नव ते सर्वे पिण्डीकृता
विंशतिरास्रवा । सगंतिल्ले—अतिल्ले—अन्तज्ञाने केवलज्ञाने, सग—
सप्त प्रत्यया भवन्ति । के ते ? सत्यमनोयोगानुभयमनोयोगसत्यवचनयो-
गानुभयवचनयोगाश्चत्वार औदारिकौदारिकमिश्रकार्मणक्वाययोगास्त्रय एवं
सप्त । इति ज्ञानमार्गणायामास्रवा ॥ ५८ ॥

वेउच्चिदुगूरालियमिस्सयकम्मूण एयदसजोया ।

संजालणोकसाया चउवीसा पढमजमजुम्मे ॥ ५९ ॥

वैगूर्विकद्विकौदारिकमिश्रकार्मणोना एकादशयोगाः ।

सज्वलननोकपायाः चतुर्विंशतिः प्रथमयमयुग्मे ॥

पटमत्रमशुम्मे—प्रथमयमयुग्मे सामायिकसंयमे छेदोपस्थापनासंयमे च, घटवीसा—चतुर्विंशतिप्रत्यया भवन्ति । के ते ? वेठञ्चि—वैकिक यिकत्वमिध्रद्वयौदारिकमिध्रकार्मणकैश्च चतुर्भिर्हीना अन्ये, एयदसञ्चोया—अष्टौ मनोबचनयोगा औदारिककाययोगाहारकप्रहारकमिध्रकाययोगा—थेति त्रय समुदिता एकत्रदशयोगा । संजाल—संज्वलनक्रोधमानमाया लोभाद्यत्वार । णोकसाया—हास्यादिनवनोकयाया एवं चतुर्विंशति ॥ ५९ ॥

परिहारे आहारयदुगरद्विया से इवति षावीस ।

संज्वलनलोहमादिमणत्रजोगा दसय हुंति सुहुमे य ॥ ६० ॥

परिहारे आहारकद्रिकरहितास्ते भवन्ति द्वाविंशति ।

संज्वलनलोम आदिममत्रयोगा दश भवन्ति सूक्मे च ॥

परिहारेत्वादि । परिहारविद्युदिसंयमे, आहारयदुगरद्विया—आहारकप्रहार कमिध्रद्वयरहितास्ते पूर्वोक्त सामायिकच्छेदोपस्थापनयो कथिता द्वाविं शति प्रत्यया भवन्ति । अथ व्यक्ति—अष्टमनोबचनयोगौदारिकसंज्वलन- चतुष्कहास्याग्निवेति द्वाविंशति प्रत्यया परिहारसंयमे भवन्तीत्यर्थ । संज्वलनेत्यादि । सुहुमे य—य पुन सूक्ष्मसाम्परायसंयमे, दसय हुंति— दश प्रत्यया स्यु । से के ? एक संज्वलनलोम आदिममत्रयोगा एवं दश ॥ ६० ॥

ओगलमिम्मकम्मद्वयसंतुया लोहदीण जहत्याद ।

णवत्रोय णोकसाया अहंतकसाय दसत्रम ॥ ६१ ॥

औदारिकमिध्रकार्मणसंतुता लोभहीना यथाप्याते ।

नवयोगा नोकयाया अष्टातत्रयाया शेषमे ॥

जहत्यादे—यथाप्यातसंयमे गृहमसाम्परायतोक्ता ये दश स, ओगत मिश्रत्यादि—औदारिकमिध्रकायकार्मणकायाम्वा हास्या संयुक्ता द्वात्र

भवन्ति, एते द्वादश लोहहीणा—सज्वलनलोभरहिताः क्रियन्ते तदा
एकादश भवन्ति । के ते १ अष्टौ मनोवचनयोगा औदारिकौदारिकामि-
श्रकार्मणकायास्त्रय एते एकादश यथाख्यातसयमिना भवन्तीत्यर्थः ।
' णवजोय णोकसाया अट्टतकसाय देसजमे ' इयमर्धगाथा तस्याः परि-
पूर्णसम्बन्ध उत्तरगाथाया ज्ञेयः ॥ ६१ ॥

तसऽसंजमहीणऽजमा सव्वे सगतीस संजमविहीणे ।

आहारजुगूणा पणवण्णं सव्वे य चक्खुजुगे ॥ ६२ ॥

त्रसासयमहीना अयमाः सर्वे सप्तत्रिंशत् संयमविहीने ।

आहारकयुगोना पचपचाशत् सर्वे च चक्षुर्युगे ॥

णवजोय णोकसाया अट्टतकसाय देसजमे तसऽसंजमहीणऽजमा
सव्वे सगतीस—देसजमे—सयमासयमे सप्तत्रिंशत्प्रत्यया भवन्ति ।
ते के १ णवजोयेत्यादि । मनोवचनयोरष्टौ औदारिककायस्यैक एव नव,
तथा णोकसाया—हास्यादयो नवनोकषाया., अट्टतकसाय—अष्टौ
अन्त्या. प्रत्याख्यानसंज्वलनक्रोधमानमायालोभाः कषायाः, तसऽसंजम-
हीणऽजमा सव्वे—त्रसवधरहिता अन्येऽसयमा अविरतयः सर्वे एका-
दश एकत्रीकृताः सप्तत्रिंशत् । संजमविहीणे आहारजुगूणा पणवण्णं—
असयमे आहारजुगूणा—आहारकयुगोना आहारकाहारकामिश्रद्वयोनाः,
पणवण्णं—पचपचाशत् प्रत्यया भवन्ति । इति सयममार्गणाया प्रत्ययाः ।
सव्वे य चक्खुजुगे—च पुनः चक्षुर्युगे चक्षुरचक्षुर्दर्शनद्वये नानाजीवा-
पेक्षया सर्वे सप्तपचाशत्प्रत्यया भवन्ति ॥ ६२ ॥

अवहीए अडदालं णाणतिउत्ता हि केवलालोए ।

सग गयदोआहारय पणवण्णं हुंति किण्हतिए ॥ ६३ ॥

अवधौ अष्टचत्वारिंशत् ज्ञानत्रिकोक्ता हि केवलालोके ।

सप्त गतद्विकाहारका पचपंचाशत् भवन्ति कृष्णत्रिके ॥

अथहीए—अबधिदर्शने, गाणतित्ता हि—निश्चितं ज्ञानत्रिके य
 उक्तस्त एव, अददाळ—इति, अष्टत्वारिंशत्प्रत्यया भवन्ति । ते के ? इति
 चेदुच्यते अनन्तानुषन्धिसचतुष्कं मिथ्यास्वपंचकं वर्जयित्वा अपरे अष्टत्वारिंशदास्रवा । केवलाद्ये सग—केवलदर्शने सत । के ते ? सत्या-
 नुभयमनोवचनयोगौदारिकौदारिकमिध्मकार्मिणकाययोगा एव सत प्रथया
 भवन्ति । इति दर्शनमार्गणायामास्रवा । गपदोआहारय किण्दितिए—
 कृष्णनीलकापोतलेस्यात्रिके आहारकतग्मिध्मद्वपरहिता अम्येऽवशिष्टा,
 पणवर्ण—पंचपंचाशत्प्रत्यया, इति—भवन्ति ॥ ६३ ॥

तत्रादितिए मध्ये सव्ये आहारजुम्मयाऽम्ये ।

पणवर्णं ते मिच्छात्रपूण छादाल उवसमए ॥ ६४ ॥

तेनमात्रिके मध्ये सर्वे अनाहारकयुग्मका अम्ये ।

पंचपंचाशत् ते मिथ्यात्वानोना पद्वत्वारिंशत् उपशमे ॥

तेनादितिए—पीतपद्मशुद्धलेस्यात्रिके तथा मध्यबीजे, सव्ये—सर्वे
 सप्तपंचाशत्प्रत्यया नामाभीवापेक्षया भवन्ति । आहारजुम्मयाऽम्ये
 पणवर्ण—अमध्यबीजे आहारकतग्मिध्मवर्ज्या अम्ये पंचपंचाशदास्रवा
 स्यु । इति शेषामव्यमार्गणयो प्रत्ययाः । ते मिच्छात्रपूण छादाल
 उवसमए—उपशमकसम्यक्त्वे ते—इति, अभव्योक्ता पंचपंचाशत्प्रत्यया
 मिथ्यास्वपंचकानन्तानुषन्धिसचतुष्कोना अपरे पद्वत्वारिंशत्प्रत्यया भवन्ति ।
 ते के चेदुच्यते—अविरतय १२ कथया २१ आहारकद्वयं विना
 योगा १३ एवं पद्वत्वारिंशत् ॥ ६४ ॥

आहारयजुषजुत्ता खाद्यदुगे य ए वि अददाला ।

मिस्से तदाला ते तिमिस्साहारयदुग्भा ॥ ६५ ॥

आहारकयुगयुक्ताः क्षायिकद्विके च तेऽपि अष्टचत्वारिंशत् ।

मिश्रे त्रिचत्वारिंशत् ते त्रिमिश्राहारकद्विकोना ॥

खाइयदुगे य—च पुन. क्षायिकयुग्मे क्षायिकवेदकसम्यक्त्वे च आहारयजुवजुत्ता—आहारकद्वयसहिता, ए वि—इति, तेऽपि उपशम-सम्यक्त्वोक्ताः पट्चत्वारिंशत्, अडदाला—अष्टचत्वारिंशत् भवन्ति । ते के ? अविरतयः १२ कपाया २१ योगा. १५ एव ४८ । मिस्से—मिश्रसम्यक्त्वे, तेदाला—त्रिचत्वारिंशत्प्रत्यया भवन्ति । ते—पूर्वोक्ताः क्षायिकवेदकोक्ता अष्टचत्वारिंशद्वर्तन्ते तेभ्यः पच निष्काश्यते । ते के ? तिमिस्साहारयदुगूणा—त्रिमिश्रा औदारिकमिश्रवैक्रियिकामिश्रकर्मणकाहारकाहारकमिश्रमेव पचहीनास्त्रिचत्वारिंशत् । के ते इति चेदुच्यते—अविरतय. १२ कपाया २१ अष्टौ मनोवचनयोगा औदारिकवैक्रियिक-काययोगौ द्वौ एव ४३ मिश्रसम्यक्त्वे भवन्तीत्यर्थ. ॥ ६५ ॥

विदि ए मिच्छपणूणा पण्णं मिच्छे य हुंति पणवण्णं ।

आहारयजुयविजुया पच्चेया सयल सण्णीए ॥ ६६ ॥

द्वितीये मिथ्यात्वपचकोना पचाशत् मिथ्यात्वे च भवन्ति ।

पचपचाशत् आहारकयुगवियुक्ता प्रत्ययाः सकलाः सञ्जिनि ॥

विदि ए—सासादनसम्यक्त्वे, मिच्छपणूणा—मिथ्यात्वपचकोना आहारकयुग्मवर्जिता अन्ये, पण्ण—पचाशत्प्रत्यया स्यु । मिच्छे य हुंति पणवण्ण आहारयजुयविजुया—पुन. मिथ्यात्वसम्यक्त्वे आहारकयुगवियुक्ता अन्ये, पणवण्ण—पचपचाशत्प्रत्यया भवन्ति । इति सम्यक्त्व-मार्गणाया प्रत्यया । पच्चेया सयल सण्णीए—सञ्जिजीवे प्रत्ययाः सकला सर्वे सप्तपचाशन्नानाजीवापेक्षया भवन्ति ॥ ६६ ॥

कम्मयओरालियदुगअसच्चमोसूणजोगमणहीणा ।

पणदालाऽसण्णीए सयलाहारे अकम्मइया ॥ ६७ ॥

कार्मणौदारिकद्विकासत्यमृषेनयोगमनोहीना ।

पंचचत्वारिंशदसंज्ञिनि सकला आहारके अकार्मणका ॥

असण्णीए—असंज्ञिजीवे, पणदाळा—पंचचत्वारिंशत्प्रत्यया भवन्ति ।

कर्मभूता ! कर्मयेत्यादि—कार्मणकश्च औदारिकद्विकश्च असत्य
मृषा केत्यनुभवश्चमयोग एतौ अतुर्मिरुना हीना अन्ये एकादशयोगाश्च
मनश्च तैर्हीना । अथ बाळाबबोधनार्थं स्पष्टतयोच्यते—असंज्ञिजीवे
मिथ्यास्वपंचकं मनोवर्जिता एकादशाविरतय कथाया २५ कार्मण
औदारिकद्वययोगद्वय, असत्यमृषा सत्यं च मृषा सत्यमृषे न विद्येते
सत्यासत्ये यत्र योग सोऽसत्यमृषो योगोऽनुभवश्चमयोग इत्यर्थ एव
१५ प्रत्यया भवन्ति । इति सङ्घिमार्गणायां प्रत्यया । सकलाहारे अक-
र्माद्या—आहारे आहारकजीवे कार्मणकाययोगवर्जिता अन्ये सकला
सर्वे षट्पञ्चाशत्प्रत्यया भवन्ति ॥ ६७ ॥

तेदालाआहारे कर्मेयरजोयहीणया हुंति ।

तित्वप्यहुणा गणिता इति मन्माषपञ्चया भणिता ॥ ६८ ॥

त्रिचत्वारिंशदनाहारके कर्मेतरजोगहीनका भवन्ति ।

तीर्थप्रमुणा गणिता इति मार्गणाप्रत्यया भणिताः ॥

तेदालाणाहारे—अनाहारके जीवे कर्मेयरजोयहीणया—कार्मण
काययोगादिसरे ये चतुर्दशयोगास्तैर्हीना अन्ये, तेदाला—त्रिचत्वारिंश-
त्प्रत्यया भवन्ति । ते के ? मिथ्यास्व ५ अविरतय १२ कथाया २५
कार्मणकाययोग १ एव त्रिचत्वारिंशत्प्रत्यया हुंति—भवन्ति । ति-
त्वप्यहुणा—अमुना प्रकारेण पूर्वं तीर्थकरप्रमुणा तीर्थकरदेवेन मार्गणासु
प्रत्यया इति गणिता इति, पञ्चाक्षरधरदेवादिभिः शब्दरूपेण गायादि
कन्धेन मार्गणामु प्रत्यया भणिता इति शेष ॥ ६८ ॥

इति मार्गणासु प्रत्यया निरर्थाः ।

अथ चतुर्दशजीवसमासेषु यथासभव सप्तपचाशत्प्रत्यया कथ्यन्ते;—

इगिदुतिचउरक्त्वेसु य सण्णीसु भासिया जे ते ।

अडतीसादी सयला, पणदाला कम्ममिस्सूणा ॥ ६९ ॥

सत्तसु पुण्णेषु हवे ओरिलिय मिस्सयं अपुण्णेषु ।

इगिइगिजोगविहीणा जीवसमासेसु ते णेया ॥ ७० ॥

एकद्वित्रिचतुरक्षेपु च सञ्जिपु भापिता ये ते ।

अष्टात्रिंशदादयः सकलाः पंचचत्वारिंशत् कर्ममिश्रोनाः ॥

सप्तसु पूर्णेषु भवेत् औदारिक मिश्रक अपूर्णेषु ।

एकैकयोगविहीना जीवसमासेषु ते ज्ञेयाः ॥

गाथाद्वयेन सम्बन्ध । जीवसमासेसु ते णेया—ते प्रत्ययाश्चतुर्दश-
जीवसमासेषु ज्ञेया ज्ञातव्या भवन्ति इत्याह—इगिदुतिचउरक्त्वेत्यादि—
एकद्वित्रिचतुरिन्द्रियेषु च पुन सश्यसञ्जिजीवेषु ये अष्टात्रिंशदादयः
सकला. प्रत्यया पूर्वं भाषिता । ते प्रत्ययाः पंचचत्वारिंशत् कथ भ-
वन्ति ? एकेन्द्रियादिराश्यपेक्षया अष्टात्रिंशत्प्रत्ययाः, द्वीन्द्रियस्य राश्यपेक्षया
रसनेन्द्रियानुभयभाषयोरधिकत्वाच्चत्वारिंशत्प्रत्यया, त्रीन्द्रियस्य राश्यपेक्षया
घ्राणेन्द्रियाधिकत्वादेकचत्वारिंशत्प्रत्ययाः, चतुरिन्द्रियस्य चक्षुरधिकत्वा-
द्द्वाचत्वारिंशत्प्रत्ययाः, असञ्जिपचेन्द्रियस्य स्त्रीवेदपुवेदश्रोत्राणामधिक-
त्वाद्राश्यपेक्षया पंचचत्वारिंशत्प्रत्यया । कथभूताः पंचचत्वारिंशत् ? क-
म्ममिस्सूणा—कार्मणकायौदारिकमिश्रवैक्रियिकमिश्रोनाः । सत्तसु पुण्णेषु
हवे ओरालिय—सप्तसु पर्याप्तेसु जीवसमासेषु यथासभव पूर्वोक्ताः
प्रत्यया, ओरालिय—औदारिककाययोगश्च भवेत् । मिस्सय अपुण्णेषु—
इति, अपर्याप्तेषु सप्तसु जीवसमासेषु, मिस्सय—औदारिकमिश्रः वैक्रि-
यिकमिश्रो वा यथासभव भवति । इगिइगिजोगविहीणा—सप्तसु पर्या-

तेषु सप्तसु अपर्याप्तिषु एकैकयोगविहीना प्रस्यया भवन्ति । कोऽर्थः १
 सप्तसु पर्याप्तिषु यदा औदारिककाययोगो भवति तदा औदारिकमिध्र
 योगो न भवति यदा अपर्याप्तषु सप्तसु औदारिकमिध्रकायो भवति तदा
 औदारिककाययोगो न भवतीत्यर्थः । अथात्मबुद्धीनां सम्यक्परिज्ञा
 नाय चतुर्दशजीवसमासेषु प्रत्येकं यथासंभवं एतावन्त प्रस्यया
 भवन्तीत्याह—एकेन्द्रियसूक्ष्मापर्याप्ति मिथ्यात्वपञ्चकं धृष्टीवनिकायानां
 विराघना स्पर्शनेन्द्रियस्यैकस्यानिरोध एवं सप्ताविरतय ७ जीवे
 दपुंवेदद्वयवर्ज्या अन्ये कषायास्त्रयोविंशति २३ औदारिकमि
 ध्रकर्मणकाययोगौ द्वौ २ एवं सप्तत्रिंशत् ३७ प्रस्यया भवन्ति ।
 एकेन्द्रियसूक्ष्मपर्याप्ति मिथ्यात्वं ५ अविरतय ७ जीवेदपुंवेद
 वर्ज्या कषायास्त्रयोविंशति औदारिककाययोग एक एव एवं षट्त्रिंशत्प्र
 त्यया स्युः । एकेन्द्रियवादरापर्याप्ति मि० ५ अवि० ५ कषा० २३
 औदारिकमिध्रकर्मणयोगौ द्वौ एवं सप्तत्रिंशत्प्रत्यया भवेयुः ३७ । एके
 न्द्रियवादरपर्याप्ति पञ्चमिथ्यात्वं अविरतय सप्त पूर्वोक्ता २३ कषाया
 औदारिककाययोग एक एवं षट्त्रिंशदास्त्रया स्युः । द्वीन्द्रियापर्याप्ति जी
 वसमासे मिथ्यात्वं ५ षट्कषायानां विराघना स्पर्शरसस्पर्शनिरोध इत्य
 निरतयोष्टौ पूर्ववत्कषायस्त्रयोविंशति औदारिकमिध्रकर्मणकाययोगौ
 द्वौ एवं अष्टत्रिंशत्प्रत्यया भवन्ति । द्वीन्द्रियपर्याप्ति जीवसमासे मि० ५
 अवि० ८ कषाया २३ औदारिककाययोगानुभयभाषायोगौ द्वौ एव
 मष्टत्रिंशत्प्रत्यया संभवन्ति । त्रीन्द्रियापर्याप्ति जीवसमासे मि० ५
 षट्कषायविराघना स्पर्शनरसमग्राणानामनिरोध एवमवितरया नव पूर्व
 वत्कषाया २३ औदारिकमिध्रकर्मणकाययोगौ द्वौ एकैकता एकैकनच-

त्वारिंशत्प्रत्ययाः सन्ति । त्रीन्द्रियपर्याप्ति जीवसमासेऽपि मि० ५ पट्का-
यविराधना पट्स्पर्शनरसनघ्राणाना विषयानुभवन तिष्ठ एवमविरतयो
नत्र कषाया २३ औदारिककायानुभयवचनयोगौ द्वौ एवमेकोनचत्वा-
रिंशत्प्रत्यया ३९ स्यु । चतुरिन्द्रियापर्याप्ते जीवसमासे मि० ५ पट्जीव-
निकायविराधना स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुषामनिरोध एवमविरतयो १० पूर्व-
वत्कषाया औदारिकमिश्रकर्मणकाययोगौ द्वौ एव चत्वारिंशत्प्रत्ययाः
सन्ति । चतुरिन्द्रियपर्याप्ते मि० पञ्च ५ पूर्वोक्ता दशाविरतय १०
कषाया २३ औदारिककायानुभयभाषायोगौ द्वौ २ एव चत्वारिंशदा-
स्रवाः प्रवर्तन्ते । पंचेन्द्रियासङ्गिजीवापर्याप्ते मि० ५ मनोवर्ज्या अन्या
एकादशाविरतय ११ कषाया सर्वे २५ औदारिकमिश्रकर्मणकाययोगौ
द्वौ २ एव त्रिचत्वारिंशदास्रवाः ४३ स्यु । असङ्गिपंचेन्द्रियपर्याप्ते मि०
५ मनइन्द्रिय विना अन्या एकादशाविरतय ११ कषाया २५ औ-
दारिकायानुभयवचनयोगौ द्वौ २ एव त्रिचत्वारिंशत्प्रत्ययाः ४३ स्यु ।
पंचेन्द्रियसङ्गिजीवापर्याप्ते मनइन्द्रिय विना एकादशाविरतयः ११ क-
षाया २५ औदारिकमिश्रवैक्रियिकमिश्रकर्मणकाययोगास्रय एकीकृता
४४ प्रत्यया भवन्ति । पंचेन्द्रियसङ्गिपर्याप्ते जीवसमासे मि० ५ अ-
विरतय १२ कषाया २५ मिश्रकर्मणकाययोगद्वय विना अन्ये त्रयो-
दशयोगा १३ एव पचपचाशत्प्रत्यया भवन्ति ॥ ६९-७० ॥

इति चतुर्दशजीवसमासेषु प्रत्येक यथासंभव प्रत्यया कथिता
व्यक्तिरूपेण बालबोधनार्थम् ।

अथ चतुर्दशगुणस्थानेषु प्रत्ययाः कथ्यन्ते,—

मिच्छे चउपच्चइओ बंधो सासणदुगे तिपच्चइओ ।

ते विरइजुआ अविरइदेसगुणे उवरिमदुगं च ॥ ७१ ॥

दोष्णि तदो पंचसु तिसु, चामव्वो जोगपचई इक्को ।
सामण्णपचया इदि अट्टण्हं होंति कम्मणं ॥ ७२ ॥

मिथ्यात्वे चतुःप्रत्ययो बन्ध सासनद्विके त्रिप्रत्यय ।
ते विरतियुता अबिरतदेशगुणे उपरिमादिकं च ॥
द्वौ तत पंचसु त्रियुःज्ञातम्यो योगप्रत्यय एक ।
सामान्यप्रत्यया इति अष्टानां भवन्ति कर्मणां ॥

गाथाद्वयेन सम्बन्धः । मिच्छे चतुःपचइओ बन्धो—चतुःप्रत्ययबन्धो, कोऽर्थः । मिथ्यास्वगुणस्याने मिथ्यात्वाविरतिक्रपाययोगानां चतुर्णां प्रत्ययानां बन्धो भवतीत्यर्थः । सासनद्विके—द्वितीयसासादनगुणस्याने तृतीयमिच्छगुणस्याने च, तिपचइओ—त्रिप्रत्ययबन्धो बन्ध । कोऽर्थः । सासादनमिच्छगुणस्यानयोऽविरतिक्रपाययोगानां बन्ध स्यादित्यर्थः । तेऽनिरुद्धादि । अबिरतदेशगुणे—चतुर्थेऽविरतिगुणस्याने पंचमे देशविरतिगुणस्याने च, ते—इति, तेऽप्रत्यया भवन्ति । कति मन्वन्तीत्याशङ्कयामाह—उपरिमादिकं—उपरिमादिकं क्रपाययोगाद्युक्तं । कर्ममूर्तः । अविरतियुक्तं एव त्रय प्रत्यया भवन्ति, कोऽर्थः । अबिरतदेशविरतिगुणस्यानयोर्द्वयोर्दविरतिक्रपाययोगानां त्रयाणां प्रत्ययानां बन्धो भवतात्यर्थः । दोष्णि तदो पंचसु—इति ततो दशविरतिगुणस्यानस्तु, पंचसु—इति, पंचगुणस्यानेषु प्रमत्ताप्रमत्तापूर्वकरणानिष्ठिकरणसूक्ष्मसाम्पत्त्याभिधानेषु दोष्णि—द्वौ प्रत्ययो ज्ञातम्यो कोऽर्थः । प्रमत्तादिपंचसु गुणस्यानेषु क्रपाययोगयोर्द्वयोर्बन्ध इति भावः । तत, तिसु—इति, त्रियु गुणस्यानेषु योगप्रत्ययस्यैकस्य बन्ध इत्यर्थः । इदि—इति अनुना प्रकारेण, अट्टण्हं कम्मणं—ज्ञानावरणादीनामष्टानां कर्मणां, सामण्णपचया—सामान्येन मिथ्यात्वादिप्रत्यया बन्धकारणानि भवन्ति ॥ ७१—७२ ॥

पूर्वं सामान्येन प्रत्ययबन्धः कथितः, अधुना विशेषेण प्रत्ययबन्धाः कथ्यन्ते;—

पढमगुणे पणवण्णं विदिए पण्णं च कम्मणअणूणा ।

मिस्सोरालिविउव्वियमिस्सूण तिदालया मिस्से ॥ ७३ ॥

प्रथमगुणे पंचपचांशत् द्वितीये पचाशत् च कार्मणानोना ।

मिश्रौदारिकवैक्रियिकमिश्रोनाः त्रिचत्वारिंशन्मिश्रे ॥

पढमगुणे—प्रथममिध्यात्वगुणस्थाने आहारकतन्मिश्रद्वयवर्ज्या अन्ये पणवण्ण—पचपचाशत्प्रत्यया भवन्ति । विदिए पण्ण च—पुनः सासादनगुणस्थाने मिध्यात्वपचकाहारकद्वयरहिता अन्ये पचाशत्प्रत्यया भवन्ति । कम्मणेत्यादि, मिस्से—तृतीयमिश्रगुणस्थाने ये सासादने कथिताः पचाशत्प्रत्यया । ते कथभूताः १ कर्मणेत्यादि, कार्मणकाययोगानन्तानुबन्धिक्रोधमानमायालोभचतुष्कोना औदारिकमिश्रकायोनो वैक्रियिकमिश्रकायोन एतैः सप्तभिर्हीना अन्ये, तिदाला—त्रिचत्वारिंशत्प्रत्यया भवन्ति ॥७३॥

हुंति छयालीसं खलु अयदे कम्मइयमिस्सदुगजुत्ता ।

विदियकसायतसाजमदुमिस्सवेउव्वियकम्मूणा ॥ ७४ ॥

भवन्ति षट्चत्वारिंशत् खलु अयते कार्मणमिश्रद्विकयुक्ताः ।

द्वितीयकषायत्रसायमद्विमिश्रवैक्रियिककार्मणोनाः ॥

सगतीस देसे १ खलु-निश्चित, अयदे—चतुर्थेऽविरतगुणस्थाने मिश्रगुणस्थानोक्तास्त्रिचत्वारिंशत्प्रत्यया, कम्मइयमिस्सदुगजुत्ता—इति, कार्मणौदारिकमिश्रवैक्रियिकमिश्रत्रययुक्ताः सन्तः, छयालीस—षट्चत्वारिंशत्प्रत्यया भवन्ति । सगतीस देसे—इति, उत्तरगाथाया सम्बन्धः । देसे—इति, पंचमे देशविरतगुणस्थाने सप्तत्रिंशत्प्रत्यया भवन्ति । के ते १ विदियक-

सत्यतसाजमदुमिस्सवेठम्बियकम्मूणा—द्वितीयकपायोऽप्रत्याख्यानक्रोध-
मानमायात्थेमचतुष्कं, तसाजम—इति, प्रसवध, दुमिस्स—भौदारि
कमिध्वैक्रियिकमिध्वद्वयं, वेठम्बिय—इति, वैक्रियिककत्रययोगः, कम्म—
इति, चर्मणकत्रययोग एतैर्नवमिरूना । कोऽर्थः ? यऽविरतगुणस्या-
नोक्तः षट्चत्वारिंशद्वर्तन्ते से एतैर्नवभिर्हज्जा सन्त सप्तत्रिंशदा-
स्रबा भवन्ति—ते सप्तत्रिंशत्प्रत्यया पंचमे गुणस्थाने भवन्तीति
स्पष्टार्थः ॥ ७४ ॥

सगतीसं देसे तह चठवीसं पञ्चया पमत्ते य ।

आहारदुगे यारस अविरदिचउपञ्चयाणूण ॥ ७५ ॥

सप्तत्रिंशदेशे तथा चतुर्निशतिप्रत्यया प्रमत्तं च ।

आहारकद्विकौ एकादशाविरतिचतु प्रत्ययन्यूनाः ॥

सगतीसं देसे इति पदं पूर्वगाथायां व्याख्यातं । तह चठवीसं प
ञ्चया पमत्ते य—च पुन तथा, पमत्ते—इति, षष्ठ प्रमत्तगुणस्थाने चतु
र्निशति प्रत्यया भवन्ति । कथं ? देशविरतगुणस्थानोक्तसप्तत्रिंशत्प्रत्य-
यमध्ये आहारदुगे—आहारकाहारकमिध्वद्वयं यदा क्षिप्यते तदा एकोनच-
त्वारिंशत्प्रत्यया भवन्ति । ते एकोनचत्वारिंशत्प्रत्यया, एवारसविरदिचठ
पञ्चयाणूण—इति एकादशाविरतय चत्वार प्रत्याख्यानक्रोधमानमाया-
ओमा एते पञ्चदशभिर्न्यूनाश्चतुर्निशतिप्रत्ययाः स्युः—ते षष्ठगुणस्थाने
संभवन्तीत्यर्थः । ते चतुर्निशति किन्नामामधेतुर्ष्यते—संभवन्नचतुष्कं
हास्यादिनवनोक्तयाया अथौ मनोवचनयोगा औत्तारिकाहारकाहारकमिध्व
योगात्त्रय एव चतुर्निशति ॥ ७५ ॥

आहारदुग्गा दुसु भावीसं हासच्छक संविस्वी—

पुंकोहाद्विहीणा कमेण अवमं दसं आय ॥ ७६ ॥

आहारकद्विकोना द्विषु द्वाविंशतिः हास्यपट्टेन षडङ्घ्री—।

पुक्रोधादिविहीनाः क्रमेण नवमं दशमं जानीहि ॥

आहारदुग्गुणा दुसु बावीसं—दुसु—इति, अप्रमत्तापूर्वकरणयोर्द्वयोर्गु-
णस्थानयोः प्रमत्तोक्ताश्चतुर्विंशतिप्रत्यया ये ते आहारदुग्गुण—आहारकाहार-
कमिश्रद्वयोनाः, बावीस—द्वाविंशतिप्रत्यया स्युः । ते के चेदुच्यन्ते संज्व-
लन ४ नोकपाया ९ मनोवचनयोगाः ८ औदारिकाययोगः १ एवं २२
द्वाविंशति । हे शिष्य ! नवमं गुणस्थानं जानीहि । हासेत्यादि
हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्साषट्केन हीनः । कोऽर्थः ? नवमेऽनिवृत्तिक-
रणगुणस्थाने पूर्वोक्ता द्वाविंशतिप्रत्यया हास्यादिषट्कहीनाः सन्तः षोडश
आस्रवा भवन्ति । ते किं नामानि ? वेदत्रय ३ सज्वलनचतुष्क ४
मनोवचनयोगा अष्टौ औदारिकाययोगश्चैक एव षोडश आस्रवा अ-
निवृत्तिकरणस्थाने भवन्तीत्यर्थः । हे विनेय ! क्रमेण अनुक्रमेण, दस
जाण—दशमगुणस्थानं विद्धि । हे स्वामिन् ! दशमं गुणस्थानं कीदृशं वेद्वि
तत्र कति प्रत्यया सभवन्तीति शिष्यप्रश्नाद्गुरुराह—दस सुहुमे इत्युत्तर-
गायापदेन सम्बन्धः । ते दश के ? अनिवृत्तिकरणोक्ता षोडश, सट्टि-
त्थीपुकोहाइविहीणा—इति, षडङ्घ्रीपुवेदत्रयसज्वलनक्रोधमानमायात्रिक-
हीना सन्तः दश । अथ च व्यक्तिः—सूक्ष्मसाम्परायदशमे अष्टौ
मनोवचनयोगा औदारिकाययोगसज्वलनलोभौ द्वाविति दश ॥७६॥

दस सुहुमे वि य दुसु णव सत्त सजोगिम्मि पच्चया हुंति ।

पच्चयहीणमणूणं अजोगिठाणं सया वंदे ॥ ७७ ॥

दश सूक्ष्मेऽपि च द्वयोः नव सप्त सयोगे प्रत्यया भवन्ति ।

प्रत्ययहीनमन्यून अयोगिस्थानं सदा वन्दे ॥

दस सुहुमे इति पदस्य व्याख्यानं पूर्वगाथाया कृतं, अवि य—
अपि च, दुसु—द्वयोः एकादशे उपशान्तकषाये द्वादशे क्षीणकषायगुण-

स्थाने च, णव—नव प्रत्यया संभवन्ति । अष्टौ मनोवचनयोगा औदारिककाययोग एक एवं ९ । सप्त सञ्जोगिभिः पञ्चया इति—सयोगकेवलिनि सप्त प्रत्ययाः, इति—भवन्ति । ते के ? सत्यानुभयमनोवचनयोगा औदारिकतमिन्द्रकार्मणकाययोगा एवं सप्त । पञ्चयद्दीणमणूष्यं अञ्जोगिच्छणं सया वंदे—इति, नमस्कुर्वे सदा, किं तत् ? कर्मतापन्नं अयोगिकेवलिगुणस्वानं । किं विशेषणादितं ? पञ्चयद्दीणं—सप्तपञ्चाशत्प्रत्ययेर्हानं रहितं । पुन किंविशिष्टं ? अणूणं—अणूने परिपूर्णं ॥७७॥

इति चतुर्दशगुणस्थानेषु प्रथमाः प्रोक्ताः ।

पवयणपमाभलकखणलंदालकाररहियद्वियण ।

जिणइंदेण पठत्तं इयमागममत्तिजुत्तेण ॥ ७८ ॥

प्रवचनप्रमाणच्छणच्छन्दोऽच्छहाररहितहृदयेन ।

त्रिनचन्द्रेण प्रोक्तं इदं आगममत्तियुक्तेन ॥

इणं—सिद्धान्तसारशाब्दं, पठत्तं—प्रोक्तं । केन कर्त्रा ? जिणइंदेण त्रिनचन्द्रनाम्ना सिद्धान्तप्रन्थवेदिना । कर्पंमूतेन त्रिनचन्द्रेण ? पवयणे त्पादि—प्रवचनप्रमाणच्छणच्छन्दोच्छहाररहितहृदयेन । पुनरपि कर्पंमूतनं ? आगममत्तिजुत्तेण—त्रिनसूत्रस्य भक्ति सेवा तथा युक्तेन ॥७८॥

सिद्धतसारं वरसुत्तगेहा, सोइंतु साह मयमोहचथा ।

पूरंतु दीणं जिणयाइमत्ता, विरायचित्ता मिधमग्गजुत्ता ॥७९॥

सिद्धान्तसारं वरसूत्रगहा, शोषयन्तु साधवो मदमोहव्यक्ता ।

पूरयन्तु दीने त्रिननाथभक्ता विरागचित्ता शिवमार्गपुक्ताः ॥

कवि कथयति, साहू—इति भा साधव ! इमं सिद्धान्तसारं प्रन्थं, साहंतु—शुद्धीकुर्वन्तु अपशम्भरहितं कुर्वन्तु । पुनरपि भो साधव ! पूरंतु

१ प्रारंभे हि त्रिनेत्राचार इति श्रुत्यत्र त्रिगितीऽप्रमानित्वात्पुस्तकं हि

हीण—अस्मिन् ग्रन्थे मया यत्किञ्चिद्धीनं प्रतिपादित भवति तद्वन्तः,
 पूरंतु—पूरयन्तु पूर्णं कृत्वा प्रतिपादयन्तु । कथभूताः साधवः १ वरसुत्त-
 गेहा—वराणि च तानि सूत्राणि जिनवचनानि तेषां गेहा मन्दिरप्राया ।
 पुनरपि कथभूताः २ मयमोहचत्ता—मदमोहैस्त्यक्ताः । पुनरपि कथ-
 भूताः ३ जिणणाहभत्ता—जिननाथभक्ता । पुनरपि कथभूताः ४ विराय-
 चित्ता—विगतो रागो यस्मात् तत्, विराग चित्त मानस येषां ते विराग-
 चित्ताः । अनु च किंविशेषणाचित्ताः ५ शिवमग्गजुत्ता—इति, शिवमार्गो,
 मोक्षमार्गः सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रलक्षणः तेन युक्ताः शिवमार्गयुक्ताः ॥७९॥

इति सिद्धान्तसारभाष्यम् ।*

*अस्मादग्रे पाठोऽयं—स्वरितश्री शके १६९३ खरनाम संवत्सरे आश्विनमासे
 शुक्लपक्षे त्रिदियायां (द्वितीयाया) तिथौ गुरुवासरे श्रीसदलगी श्री-अनन्त-
 तीर्थकरचैत्यालये श्रीसुमतिचन्द्रस्वामिना तच्छिष्यसावतापडित श्रीरत्नत्रयज्ञापनार्थं
 लिखित ।

स्थाने च, णव—नव प्रत्यया संभवन्ति । अष्टौ मनोवचनयोगा औदा
रिक्कत्रययोग एक एवं ९ । सप्त सञ्जोगिष्मि पञ्चया हुति—सयोगकेव
छिनि सप्त प्रत्यया, हुति—भवन्ति । ते क ? सत्यानुभयमनोवचन
योगा औदारिक्रतन्मिधकार्मणकाययोगा एवं सप्त । पञ्चयहीणमणू
अञ्जोगिष्ठाण सया वंदे—इति, नमस्कुर्वे सदा, किं तत् ? कर्मतापसं अयो-
गिकेवच्छिगुणस्थानं । किं विशेषजाहितं ? पञ्चयहीण—सप्तार्पचाशत्प्रत्य-
यैर्हीनं रहितं । पुन किंविशिष्टं ? अणूण—अणूण परिपूर्णं ॥७७॥

इति षट्सप्तगुणस्थानेषु प्रत्ययाः प्रोक्ताः ।

पवमथपमाथलक्ष्ण्यछंटाळकाररदियदियएथ ।

शिणईदेथ पठत्तं इणमागममत्तिशुचेथ ॥ ७८ ॥

प्रवचनप्रमाणलक्षणच्छन्दोऽञ्जहाररहितद्वयेन ।

जिनधन्त्रेण प्रोक्तं इदं आगममत्तिसुक्तेन ॥

इण—सिद्धान्तसारशाब्दं, पठत्तं—प्रोक्तं । केन कर्त्रा ? शिणईदेण
जिनधन्त्रनाम्ना सिद्धान्तप्रत्यवेदिना । कथंमूतेन जिनधन्त्रेण ? पञ्चयजे
त्यादि—प्रवचनप्रमाणलक्षणच्छन्दोऽञ्जहाररहितद्वयेन । पुनरपि कथंमू-
तेन ? आगममत्तिशुचण—जिनसूत्रस्य भक्ति सेवा तथा सुक्तेन ॥७८॥

सिद्धंतसारं वरसुचगेहा, सोइत्तु साह मयमोहचत्ता ।

पूरंतु हीणं जिणणाहमत्ता, विराभचित्ता सिवमग्गान्तुत्ता ॥७९॥

सिद्धान्तसारं वरसूत्रगेहा, शोभयन्तु साधवो मयमोहस्यक्ता ।

पूरयन्तु हीनं जिनमायमक्ता, विरामचित्ता शिवमार्गपुक्ताः ॥

कवि कथयति, साह—इति भो साधव ! इमं सिद्धान्तसारं प्रत्यं,
सोइत्तु—शुद्धीकुर्वन्तु अपराधरहितं कुर्वन्तु । पुनरपि भो साधव ! पूरंतु

१ प्रारंभे हि जिनेन्द्राचार्य इति विस्तृतं शिष्यतोऽस्माभिरन्वन्तुः पुस्तकं वि-
सोच्य ।—सं ।

श्रीयोगीन्द्रचन्द्राचार्यकृतः

योगसारः ।



णिम्मलज्ञाण परिद्विया कम्मकलंक डहेवि ।
अप्पा लद्धउ जेण परु ते परमप्प णवेवि ॥ १ ॥

निर्मलध्याने परिस्थाय, कर्मकलक दग्ध्वा ।

आत्मा लब्धो येन पर त परमात्मान नत्वा ॥

घाइचउक्कह किउविलउ अणंतचउक्कपदिदु ।
तहिं जिणइंदहं पयणविवि अक्खमि कव्वु सुइदु ॥ २ ॥

घातिचतुष्कस्य कृतविलयोऽनन्तचतुष्टयप्रतिष्ठितः ।

त जिनेन्द्र प्रणम्य करोमि काव्य सुष्ठु ॥

संसारह भयभीयाहं मोक्खह लालसियाहं ।
अप्पासंवोहणकयहं दोहा एकमणाहं ॥ ३ ॥

ससारस्य भयभीताना मोक्षस्य लालसिताना ।

आत्मसम्बोधनार्थं दोहकान् एकमनसा ॥

कालु अणाइ अणाइ जीउ भवसायरु जि अणंतु ।
मिच्छादंसणमोहियउ ण वि सुह दुक्ख जि पत्तु ॥ ४ ॥

कालोऽनादिः अनादिर्जीवो भवसागरोऽपि अनन्तः ।

मिथ्यादर्शनमोहितः नापि सुखं दुःखमेव प्राप्तः ॥

जह वीहउ चउगइगमणु तउ परभाव चएवि ।
अप्पा ज्ञायहि णिम्मलउ जिम सिवसुक्ख लहेवि ॥ ५ ॥

१ अन्त्यदोहकेन योगचन्द्रेति नामाभाति ।

परमात्मप्रकाशे तु योगीन्द्रेति नामास्ति ।

समाप्तोय सिद्धान्तसार ।

देहादयो ये परे कथिताः ते आत्मा न भवन्ति ।

इति ज्ञात्वा जीव ! त्व आत्मना आत्मान मन्यस्व ॥

अप्पा अप्पउ जइ मुणहि तउ णिन्वाणु लहेहि ।

पर अप्पा जउ मुणिहि तुहुं तहु संसार भमेहि ॥ १२ ॥

आत्मना आत्मान यदि मन्यसे ततः निर्वाण लभसे ।

पर आत्मान यदि मनुषे त्व तर्हि संसार भ्रमसि ॥

इच्छारहिउ तव करहि अप्पा अप्प मुणेहि ।

तउ लहुः पावइ परमगई पुण संसार ण एहि ॥ १३ ॥

इच्छारहितस्तपः करोषि आत्मना आत्मान मनुषे ।

ततो लघु प्रप्नोसि परमगतिं पुनः संसारे नायासि ॥

परिणामइ वंधु जि कहिउ मोक्ख जि तह जि वीयाण ।

इउ जाणेविण जीव तुहुं तह भावहि परियाणि ॥ १४ ॥

परिणामैर्वन्धोऽपि कथितः मोक्षोपि तैरेव विजानीहि ।

इति ज्ञात्वा जीव ! त्व तान् भावान् परिजानीहि ॥

अह पुण अप्पा ण वि मुणाहिं पुण्ण वि करइ असेसु ।

तउ वि णु पावइ सिद्धसुहु पुणु संसार भमेसु ॥ १५ ॥

अथ पुनरात्मान न मनुषे पुण्यमपि करोषि अशेषम् ।

तथापि न प्राप्नोषि सिद्धसुख पुनः संसारे भ्रमसि ॥

अप्पादंसण इक्क परु अण्णु ण कि पि वियाणि ।

मोक्खह कारण जोईया णिच्छह एहउ जाणि ॥ १६ ॥

आत्मदर्शन एक पर अन्यत् न किञ्चिदपि विजानीहि ।

मोक्षस्य कारण योगिन् । निश्चयेनैतत् जानीहि ॥

पदि विम्यति घटुर्गतिगमनात् तत परमात्रं त्यज ।

आत्मानं ध्याय निर्मलं येन शिवसुखं लभते ॥

विषयारो अप्या मुणहि पर अंतर बहिरप्सु ।

पर इत्यदि अंतरसहित बाहिर चयहि निमित्तु ॥ ६ ॥

त्रिप्रकारं आत्मानं मन्यस्व परमस्ती बहिरात्मानम् ।

परं ध्याय भक्त सहितं बाह्यं त्यज निर्भ्रान्तम् ॥

मिच्छादस्यमोहियत पर अप्या ण मुणेइ ।

सो बहिरप्या त्रिणमणित पुण संसार भमेइ ॥ ७ ॥

विष्यार्चनमोहित परमह्मानं स मनुते ।

स बहिरात्मा त्रिनमणित पुन संसारे भ्रमति ॥

ओ परियाप्सइ अप्य पर ओ परमाव चणइ ।

सो पंडित अप्या मुणहि सो संसार मुणइ ॥ ८ ॥

य परिबानाति आत्मानं परं य परमात्रं त्यजति ।

स पंडित आत्मानं मनुते स संसारं मुञ्चति ॥

विम्मलु णिक्कलु सुद्ध त्रिणु किण्हु सुद्ध सिव संतु ।

सो परमप्या त्रिणमणित एइत जाणि निमित्तु ॥ ९ ॥

निर्मलो निष्कल शुद्ध त्रिन कृष्ण बुद्ध शिव शान्तः ।

स परमात्मा त्रिनमणित यं जानीहि निश्चान्तम् ॥

देहादित जे पर कहिया ते अप्याण मुणेइ ।

सो बहिरप्या त्रिणमणित पुण संसार भमेइ ॥ १० ॥

देहाद्यो य परं कथिता तान् आत्मानं मनुते ।

स बहिरात्मा त्रिनमणित पुनः समो भ्रमति ॥

देहादिक ज पर कहिया ते अप्याण ष होइ ।

इत जाणेविण जीव सुद्ध अप्या अप्य मुण्णै ॥ ११ ॥

देहादयो ये परे कथिताः ते आत्मा न भवन्ति ।

इति ज्ञात्वा जीव ! त्व आत्मना आत्मान मन्यस्व ॥

अप्पा अप्पउ जइ मुणहि तउ णिव्वाणु लहेहि ।

पर अप्पा जउ मुणिहि तुहुं तहु संसार भमेहि ॥ १२ ॥

आत्मना आत्मान यदि मन्यसे ततः निर्वाण लभसे ।

पर आत्मान यदि मनुषे त्व तर्हि ससार भ्रमसि ॥

इच्छारहिउ तव करहि अप्पा अप्प मुणेहि ।

तउ लहुः पावइ परमगई पुण संसार ण एहि ॥ १३ ॥

इच्छारहितस्तपः करोषि आत्मना आत्मान मनुषे ।

ततो लघु प्रप्नोसि परमगतिं पुनः ससारे नायासि ॥

परिणामइ बंधु जि कहिउ मोक्ख जि तह जि वीयाण ।

इउ जाणेविण जीव तुहुं तह भावहि परियाणि ॥ १४ ॥

परिणामैर्वन्धोऽपि कथितः मोक्षोपि तैरेव विजानीहि ।

इति ज्ञात्वा जीव ! त्व तान् भावान् परिजानीहि ॥

अह पुण अप्पा ण वि मुणहिं पुण्ण वि करइ असेसु ।

तउ वि णु पावइ सिद्धसुहु पुणु संसार भमेसु ॥ १५ ॥

अथ पुनरात्मान न मनुषे पुण्यमपि करोषि अशेषम् ।

तथापि न प्राप्नोषि सिद्धसुख पुन ससारे भ्रमसि ॥

अप्पादंसण इक्क परु अण्णु ण किं पि वियाणि ।

मोक्खह कारण जोईया णिच्छह एहउ जाणि ॥ १६ ॥

आत्मदर्शन एक पर अन्यत् न किञ्चिदपि विजानीहि ।

मोक्षस्य कारण योगिन् । निश्चयेनैतत् जानीहि ॥

मगलगुणठाणइ कहिया बबहारेण वि दिदि ।

पिच्छइअइ अप्या मुषहु जिम पावहु परमेदि ॥ १७ ॥

मार्गजागुणस्थानानि कथितानि ब्यबहारनयेन अपि-र्द्धि ।

निश्चयनयेन आरमानं मन्यस्व येन प्राप्तापि परमठिनं ॥

गिदिवावार परद्विया इमाहेठ मुणंति ।

अणुदिण झामहि देठ जिणु लहु पिम्बाण ठइति ॥ १८ ॥

गृहभ्यापारे परिस्थिता हेयमहेयं मन्यन्ते ।

अनुदिने भ्यायन्ति टेवं जिनं ऋषु निर्वाणं भवन्ते ॥

जिण सुमिरहु जिण चितवहु जिण झायहु सुमयेण ।

सो झाईतइ परमपठ सम्मइ इकखयेण ॥ १९ ॥

जिनं स्मर जिनं चिन्तय जिनं भ्यायस्व सुमनसा ।

तं भ्यायमानं परमपदं छमते एकक्षणेन ॥

सुदुप्या अरु जिणवरइ मेउ म किमपि विमाणि ।

मोखसइ कारण जोईया पिच्छइ एठ विमाणि ॥ २० ॥

शुद्धारमनि च जिनवरे भदे मा किमपि विजानीहि ।

मोखस्य कारणं योगिन् ! निश्चयेन एतत् विजानीहि ॥

ओ जिणु सो अप्या मुषहु इइ सिद्धतइ सार ।

इठ जाणेविण जोयइहु छेडहु मायाचारु ॥ २१ ॥

यो जिनं तं आरमानं मन्यस्व एष सिद्धान्तस्य सार ।

इति ब्रह्मा योगिन् ! त्यत्र मायाचारम् ॥

ओ परमप्या सो जि इठ ओ इठं सो परमप्यु ।

इठ जाणेविणु जोइआ अप्य म करहु वियप्यु ॥ २२ ॥

य परमरमा स एव अहं योऽहं स परमरमा ।

इति ब्रह्मा योगिन् ! अन्यस्मा कर्षी विकल्पम् ॥

सुद्धपएसह पूरियउ लोयायासपमाणु ।

सो अप्पा अणुदिण मुणहु पावहु लहु णिव्वाणु ॥ २३ ॥

शुद्धप्रदेशैः पूरित लोकाकाशप्रमाण ।

त आत्मान अनुदिन मन्यस्व प्राप्नोषि लघु निर्वाण ॥

णिच्छइ लोयपमाण मुणि ववहारइ सुसरीरु ।

एहउ अप्पसहाउ मुणि लहु पावहु भवतीरु ॥ २४ ॥

निश्चयेन लोकप्रमाण मन्यस्व व्यवहारेण स्वशरीरस्य ।

इम आत्मस्वभाव मन्यस्व लघु प्राप्नोषि भवतीरम् ॥

चउरासीलक्खह फिरिउ काल अणाइ अणंतु ।

पर सम्मत्त ण लद्धु जिउ एहउ जाणि णिभंतु ॥ २५ ॥

चतुरशीतिलक्षे भ्रमित कालमनाद्यनन्त ।

पर सम्यक्त्व न लब्ध जीव । एतज्जानीहि निर्भ्रान्तम् ॥

सुद्धु सचेयण बुद्ध जिणु केवलणाणसहाउ ।

सो अप्पा अणुदिण मुणहु जइ चाहउ सिवलाहु ॥ २६ ॥

शुद्धं सचेतन. बुद्धः जिन केवलज्ञानस्वभावं. ॥

तं आत्मान अनुदिनं मन्यस्व यदीच्छसि शिवलाभ ॥

जाम ण भावहु जीव तुहुं णिम्मलअप्पसहाउ ।

ताम ण लब्भइ सिवगमणु जहिँ भावहु तहिँ जाउ ॥ २७ ॥

यावन्न भावयसि जीव ! त्व निर्मलात्मस्वभावम् ।

तावन्न लभसे शिवगमन यत्र भाति तत्र याहि ॥

जो तइलोयह झेउ जिणु सो अप्पा णिरु वुत्तु ।

णिच्छयणइ एमइ भणिउ एहउ जाणि णिभंतु ॥ २८ ॥

यस्त्रिलोकस्य ध्येयो जिन स आत्मा निज उक्त. ।

निश्चयनयेन एव भणितः एतज्जानीहि निर्भ्रान्तम् ॥

वयवसंज्ञमूलगुण मूढह मोक्षश्च त्रिविधु ।

आम ण आप्तह इह पर सुद्वन्द्वभावपवित्रु ॥ २९ ॥

व्रततप संयममूलगुणै मूर्खैर्मोक्षो निरुक्त । १

यावन्न जानाति एक परं शुद्धस्वभावपवित्रं ॥

ओ जिम्मल अप्पा मुणह वयसंज्ञमुसंज्ञुषु ।

तठ लहु पावह सिद्ध सुद्ध इठ जिणप्पाहह धुषु ॥ ३० ॥

यो निर्मलं आत्मानं मनुते व्रतसंयमसंयुक्तम् ।

स ह्यु प्राप्नोति सिद्धसुखं इति विमनापैरुक्तम् ॥

वयवसंज्ञमुसीलु जिय ए सम्ब्वे अक्खण्डु ।

आम ण आप्तह इह पर सुद्वन्द्वभावपवित्रु ॥ ३१ ॥

व्रततप संयमशीलानि जीव । एतानि सर्वाणि ध्यर्षानि ।

यावन्न जानाति एकं परं शुद्धस्वभावपवित्रम् ॥

पुण्णि पावह सम्म जिय पावह वरयणिवत्तु ।

वे छंदिनि अप्पा मुणह तठ लम्मह सिवधात्तु ॥ ३२ ॥

पुण्येन प्राप्नोति स्वर्गं जीव पापेन नरकनिवासम् ।

इयं त्यक्त्वा आत्मानं मनुते तेन कथ्यते शिवभास ॥

वततठसंज्ञमुसीलु जिया इय सम्ब्वह ववहारु ।

मोक्षश्चह कारण एक मुष्पी ओ छल्लोपद्दु सारु ॥ ३३ ॥

व्रततप संयमशीलानि जीव । एतानि सर्वाणि ध्यस्वहारेण ।

मोक्षस्य कारणं एकं मन्यस्व य त्रिधाकस्य सार ॥

अप्पा अप्पह ओ मुणह जो परभाव चप्पह ।

सो पावह सिवपुरगमणु जिणवर णठ भणेह ॥ ३४ ॥

आत्मना आत्मान यो मनुते यः परभाव त्यजति ।

स प्राप्नोति शिवपुरगमन जिनवर एव भणति ॥

छहदच्चह जे जिणकहिआ णव पयत्थ जे तत्त ।

ववहारें जिणउत्तिथा ते जाणियहि पयत्त ॥ ३५ ॥

षट्द्रव्याणि यानि जिनकयितानि नव पदार्थाः ये तत्वानि ।

व्यवहारेण जिनोक्तानि तानि जानीहि प्रयत्नेन ॥

सच्च अचेयण जाणि जिय एक सचेयण सार ।

जो जाणेविण परममुणी लहु पावइ भवपार ॥ ३६ ॥

सर्वान् अचेतनान् जानीहि जीव एक सचेतन सारम् ।

य ज्ञात्वा परममुनि, लघु प्राप्नोति भवपारम् ॥

जो णिम्मल अप्पा मुणहि छंडवि सहुववहारु ।

जिणसामी एहउ भणइ लहु पावहु भवपारु ॥ ३७ ॥

य, निर्मल आत्मान मनुते त्यक्त्वा सर्वव्यवहारम् ।

जिनस्वामी एव भणति लघु प्राप्नोति भवपारम् ॥

सोरठा ।

जीवाजीवह भेउ जो जाणइ ते जाणियउ ।

मोक्खह कारण एउ भणइ जोइ जोइहि भणितुँ ॥ ३८ ॥

जीवाजीवयोर्भेद यो जानाति तेन ज्ञात ।

मोक्षस्य कारण एव भणति योगिन् ! योगिना भणितः ॥ १

चौपाई ।

कासु समाहि करउ को अंचउ ।

छोपुअछोपु करिवि को वंचउ ॥

१ अस्मादग्रे इदमपि दोहरु—

केवलगाणुमहाउ सो अप्पा मुणि जीव तुहु ।

जइ चाहहि सिवलाहु जोइ जोइहि भणित ॥ १ ॥

हल सह कलहि केम सम्माणउ ।
 वहिं जहिं जीवउ तह अष्पाणउ ॥ ३९ ॥
 केवु समधि करोमि कान् अर्चयामि ।
 वैरमेवैरं कृत्वा कान् वचयामि ॥

यत्र यत्र पश्यामि तत्र आत्मा ॥

शेष ।

साम कुतित्यह परिममइ धुत्तिम ताम करेइ ।
 गुरुहु पसाए जाम ण वि देइइ देव सुणेइ ॥ ४० ॥
 ताबल्लुतीर्थेषु परिभ्रमति शूर्तस्व ताबत्करोति ।
 गुरो प्रसाद पावन्न देहमेव देवं मनुते ॥
 तित्पहि देवलि दउ ष वि इम सुइकेवलि धुणु ।
 दहादवलि दउ जिणु एहउ जाणि णिमंतु ॥ ४१ ॥
 तीर्षामि द्वाष्टम देवो नापि ए५ द्युतकेवळिनात्कम् ।
 देहैवाद्ये देवा जिन एवं जानीहि निर्भ्रान्तम् ॥
 देहादवलि दउ जिणु जणु दवलिहि णिणइ ।
 हासउ महु परि होइ इहु सिद्धामिन्नख भमेइ ॥ ४२ ॥
 देहैवाद्ये देवो जिन द्वाष्टय नास्ति । ।
 हास्यं मुत्तस्य परि भवतीह सिद्धभिर्ज्ञां भ्रमति ॥ ।
 मूढा दवलि दउ ष वि ण पि सलि लिप्पइ चित्ति ।
 दहादवलि दउ जिणु सो पुग्गं समचित्ति ॥ ४३ ॥
 मूढ । देवान्प देवा नापि नापि शिष्यायां छेपे चित्रे ।
 देहैवाद्ये देवो जिन तं बुध्यस्व समचेतसि ॥

तित्थहु देउलि देउ जिणु सव्व वि कोई भणेइ ।
देहादेउलि जो मुणइ सो बुह को वि हवेइ ॥ ४४ ॥

तीर्थे देवालये देवो जिन सर्वोऽपि कश्चित् भणति ।

देहदेवालये यो मनुते स बुधः कोऽपि भवेत् ॥

जइ जरमरणकरालियउ तउ जिणधम्म करेहि ।

धम्मरसायण पियहि तुहुं जिम अजरामर होहि ॥ ४५ ॥

यदि जरामरणकरालितः तर्हि जिनधर्मं कुरु ।

धर्मरसायनं पिब त्वं येन अजरामरो भव ॥

धम्मु ण पढिया होइ धम्मु ण पोच्छापिच्छयइ ।

धम्मु ण मढियपयेसि धम्मु ण मुच्छालुच्चियइ ॥ ४६ ॥

धर्मो न पठनेन भवेत् धर्मो न पुस्तकदर्शने ।

धर्मो न मठप्रदेशे धर्मो न कूर्चलंचने ॥ ४६ ॥

रायरोस वे परिहरइ जो अप्पा णिवसेइ ।

सो धम्मु वि जिणुउत्तियउ जो पंचम गइ देइ ॥ ४७ ॥

रागद्वेषौ द्वौ परिहरति य आत्मनि निवसति ।

स धर्मो जिनोक्तं यः पंचमगतिं ददाति ॥

आउ गलइ ण वि मणु गलइ ण वि आसाहु गलेइ ।

मोह फुरइ ण वि अप्पहिउ इम संसार भमेइ ॥ ४८ ॥

आयुर्गलति न मनो गलति नाध्याशा गलति ।

मोहं स्फुरति नापि आत्महितं एव संसारं भ्रमति ॥

जेहउ मणु विसयह रमइ तिम जे अप्प मुणेइ ।

जोइउ भणइ रे जोइहु लहु णिव्वाण लहेइ ॥ ४९ ॥

यथा मनो त्रिषथेषु रमते तथा यदि आत्मानं मनुते ।

योगी भणति रे योगिन् ! लघु निर्वाणं लभते ॥

जेहउ जजर परयबर तेहउ बुद्धिम सरीर ।

अप्या मावहु पिम्मलहु ठहु पावह मवतीर ॥ ५० ॥

यथा अर्जरं नरकगृहं तथा बुध्यस्व शरीरम् ।

आत्मानं माभय निर्मळं छद्यु प्राप्नोषि मवतीरम् ॥

बंधय पढियो सबलजगि ष वि अप्याहु मुणति ।

तिह कारण ए जीव फुहु ण हु पिष्वाण लहेति ॥ ५१ ॥

षाभे पतितं सकळ्वगस् मापि आत्मानं मनुते ।

तेन कारणेनेमे जीवा सुटं न हि निर्वाणं छमते ॥

सस्य पढेसह ते वि जड अप्या जे ष मुणति ।

तिह कारण ए जीव फुहु ण हु पिष्वाण लहेति ॥ ५२ ॥

शास्त्रं पठन्ति तऽपि जडा आत्मानं ये न जानन्ति ।

तेन कारणेनेमे जीवा सुटं न हि निर्वाणं छमन्ते ॥

मणु इदिदि विच्छोइयइ पुह पुच्छियइ म जोइ ।

रायइ पसर पिषारियइ सहव्र उपअइ सोइ ॥ ५३ ॥

मन इन्द्रिये वि -- -- ।

रागप्रसारं निवारय सहजं उत्पद्यते स ॥

पुग्गलु अण्णु जि अण्णु जिउ अण्णु वि सहुविवहार ।

चयहि वि पुग्गलु गहदि जिउ लहु पावहु मवपार ॥ ५४ ॥

पुद्गलोऽप्य अन्यो जीव अन्य सर्वभ्यवहार ।

त्यत्र पुद्गलं प्रहाण जीवं छद्यु प्राप्नोषि मवपारम् ॥

जे ण वि मण्णइ जीव फुहु जे ष वि जीव मुणति ।

ते जिष्णाहइ उचिया णठ संमार मुयंति ॥ ५५ ॥

ये नापि मयन्ते जीवं सुटं ये मापि जीवं मन्यन्ते ।

ते त्रिननाथेन उक्ता न संसारं मुञ्चन्ति ॥

रयण दीउ दिणयर दहिउ दूध घीउ पाहाणु ।
सुण्ण रूउ फलियउ अग्निणि णव दिँदता जाणु ॥ ५६ ॥

रत्न दीपः दिनकरः दधि दुग्धं घृतं पापाण ।

सुवर्णं रौप्यं स्फटिकं अग्निः नव दृष्टान्तान् जानीहि १ ॥

देहादिक जो पर मुणइ जेहउ सुणहुआयासु ।

सो लहु पावहि बंभु परु केवल करइ पयासु ॥ ५७ ॥

देहादिक य पर मनुते यथा शून्याकाश ।

स लघु प्राप्नोति ब्रह्म पर केवल करोति प्रकाशम् ॥

जेहउ सुद्ध आयासु जिय तेहउ अप्पा उत्तु ।

आयासु वि जड जाणि जिय अप्पा चैयणुवंतु ॥ ५८ ॥

यथा शुद्ध आकाशं जीव ! तथा आत्मा उक्तः ।

आकाशमपि जड जानीहि जीव ! आत्मानं चैतन्यवन्त ॥

णासरिं अविंभतरहं जे जोवहि असरीरु ।

वाहुडि जम्म ण संभवहि पिवहि ण जणणीखीरु ॥ ५९ ॥

नासाग्रेण अभ्यन्तरे यः पश्यति अशरीर ।

व्यावृत्त्यं जन्म न सम्भवति पिवति न जननीक्षीरम् ॥

असरीरु वि सुसरीरु मुणी इहु सरीर जड जाणि ।

मिच्छामोह परिचयहि मुत्ति णियं णिणिमाणि ॥ ६० ॥

अशरीरोऽपि सशरीरो मुनिः ईदं शरीरं जडं जानीहि ।

मिथ्यामोहं परित्यज..... ..

१ शरीराङ्घ्रिभ्रमं सिद्धस्वरूप । २ व्याघ्रुद्यं जन्मं घृत्वा जननीक्षीरं न पिवति इत्यर्थं । ३ चैतन्यशरीरवान् । ४ पौल्लिकम् ।

अप्पय अप्पु मुणंतयइ किण्ण्येहा फल्लु होइ ।

केवलणाणु विपरिणवइ सासव मुक्खु लोइ ॥ ६१ ॥

आत्मना आरमानं मन्वानस्य किमेह फलं भवति ।

केवलज्ञानं विपरिणमति शाश्वतं सुखं उच्यते ॥

अे परमाव चएवि मुणी अप्पा अप्पु मुणंति ।

केवलणाणसरुव लिअइ ते संसारु मुचंति ॥ ६२ ॥

ये परमार्थं त्यक्त्वा मुनय आत्ममारमानं मन्वते ।

केवलज्ञानस्वरूपं छप्त्वा ते संसारं मुञ्चन्ति ॥

अण्णा ते मयवंस बुइ अे परमाव चयंति ।

ओयालोयपयासवरु अप्पा विमल मुणंति ॥ ६३ ॥

अध्यास्ते भाग्यवन्त बुधा ये परमार्थं त्यजन्ति ।

अेकाशोकप्रकाशकरं आरमानं विमलं जानन्ति ॥

सागारु वि आगारुहु वि ओ अप्पाणि षसेई ।

सो पावइ लहु सिद्धसुहु जिअवरु एम मणेइ ॥ ६४ ॥

सागारोऽप्यनगारोऽपि य आत्मनि बसति ।

स प्राप्नोति अमु सिद्धसुखं जिनवर एव भवति ॥

विरला जाणहि तणु बुहु विरला भिसुअहि तणु ।

विरला भायहि तणु जिय विरला धारहि तणु ॥ ६५ ॥

विरला जानन्ति तत्त्वं बुधा विरला शृण्वन्ति तत्त्वम् ।

विरला भायन्ति तत्त्वं जीव ! विरला धारयन्ति तत्त्वम् ॥

इहु परियण ण हु महवण्ठ इहु सुहुदुक्खइ हेउ ।

इम चिंतवइ किं फलइ लहु संसारइ छेउ ॥ ६६ ॥

अय परिजनः न महान् पुनः अयं सुखदुःखस्य हेतुः ।

एव चिन्तयन् किं करोति लघु ससारस्य छेदम् ॥

इंदफणिंदणरिंदय वि जीवह सरण ण हुंति ।

असरणु जाणिवि मुणिधवला अप्पा अप्प मुणंति ॥ ६७ ॥

इन्द्रफणीन्द्रनरेन्द्रा अपि जीवस्य शरण न भवन्ति ॥

अशरण ज्ञात्वा मुनिधवला आत्मनात्मान मन्वते ॥

इक्क उपज्जइ मरइकुवि दुहु सुहु भुंजइ इक्कु ।

णरयह जाइवि इक्क जिय तह णिव्वाणह इक्कु ॥ ६८ ॥

एक उत्पद्यते म्रियते एक दुःख सुखं भुक्ते एक ।

नरक याति एक जीव ! तथा निर्वाण एकः ॥

इक्कलउ जइ जाइसहि तो परभाव चएहि ।

अप्पा ज्ञायहि णाणमउ लहु सिवसुख लहेहि ॥ ६९ ॥

एक यदि जायसे तर्हि परभाव त्यज ।

आत्मन ध्यायस्व ज्ञानमय लघु शिवसुख लभस्व ॥

जो पाउ वि सो पाउ मुणि सव्वु वि को वि मुणेइ ।

जो पुण्ण वि पाउ विभणइ सो बुह को वि हवेइ ॥ ७० ॥

यः पापमपि तत्पाप मनुते सर्व कोऽपि मनुते ।

य पुण्यमपि पाप भणति स बुध कोऽपि भवेत् ॥

जह लोयम्मिय णियडहा तह सुणम्मिय जाणि ।

जे सुह असुह परिच्चयहि ते वि हवंति हु णाणि ॥ ७१ ॥

यथा लोहमय निगळ तथा सुवर्णमय जानीहि ।

ये शुभ अशुभ परित्यजन्ति ते भवन्ति हि ज्ञानिन ॥

अस्या मणुणिर्गम्य जिय तस्या तुह जिग्गथु ।
अस्या तुहु जिर्गम्य जिय तो लन्मह सिवपंथु ॥ ७२ ॥

यावत् मनोनिर्मम्य जीव ! तावत्त्वं निर्मम्य ।
यावत्त्वं निर्मम्य जीव ! ततः कर्मसे शिवपर्यं ॥

अं बटमप्यह वीजं फुडु धीयह षड वि हु ज्ञाथु ।
तं दहं देठ वि मुषाहि ओ तहलोय पहाथु ॥ ७३ ॥

यथा बटमप्ये बीजं स्फुटं बीजे बटमपि जानीहि ।
तथा देहे देवं मम्यस्व यः त्रिलोके प्रधान ॥

ओ जिय सो इठ सो जि इठ एहठ माउ जिर्मतु ।
मोक्खह कारण ओइया अण्णु ष तंतु ष मंतु ॥ ७४ ॥

यो भिन सोऽहं सोऽप्यहं एतत् भाषय निर्भन्तिम् ।
मोक्षस्य कारणं योगिन् । अन्यो न तत्र न मेव ॥

वेत्तेषठपंशविणवहंसत्तहछहपंशाह—

षठगुणसहित ओ मुषाहि एहठ लभस्सुष ज्ञाह ॥ ७५ ॥

द्वित्रिचतु पंचद्विनवसप्तपट्पंच—

षट्गुणसहित यः मनुते एतल्लक्षणं यस्मिन् ॥

वे छंदाधि वेगुणसहित ओ अप्पाणि वसेह ।

जिणसामिठ एवं मणह लहु गिन्ध्याप लहह ॥ ७६ ॥

द्वी त्यक्त्वा द्विगुणसहित यः आत्मनि वसति ।

जिनस्वामी एवं भणति छु निर्वाणं क्वमते ॥

तिहरदित तिहगुणसहित ओ अप्पाणि वसेह ।

ओ सासयसुहमायणु वि जिणपर एम मपेह ॥ ७७ ॥

त्रिरहितः त्रिगुणसहितः य आत्मनि वसति ।

स शाश्वतसुखभाजन अपि जिनवरः एवं भणति ॥

चउकसायसण्णारहिउ चउगुणसहिउ वुत्तु ।

सो अप्पा मुणि जीव तुहुं जिम परु होहि पवित्तु ॥ ७८ ॥

चतुःकषायसंज्ञारहितः चतुर्गुणसहितः उक्तः ।

त आत्मान मनुस्व जीव । त्व येन परः भवसि पवित्रः ॥

वेपंचविरहियउ मुणहि वेपंचहसंजुत्त ।

वेपंचह जो गुण सहियो सो अप्पा णिरु उत्त ॥ ७९ ॥

द्विपचरहित जानीहि द्विपचसंयुक्त ।

द्विपंचभिः यो गुणै सहित स आत्मा निज उक्तः ॥

अप्पा दंसणु णाण मुणी अप्पा चरणु वियाणि ।

अप्पा संजम सील तउ अप्पा पच्चक्खाणि ॥ ८० ॥

आत्मान दर्शन ज्ञान मन्यस्व, आत्मानं चरण जानीहि ।

आत्मा संयमः शील तपः आत्मा प्रत्याख्यानम् ॥

जो परियाणइ अप्प परु सो परिचयहि णिभंतु ।

सो सण्णास(ण) मुणेहि तुहुं केवलणाणि वुत्तु ॥ ८१ ॥

यः परिजानाति आत्मान पर स परित्यजति निर्भ्रात ।

तत्सज्ञान मनुस्व त्वं केवलज्ञानिना उक्तम् ॥

दंसण जहिं पिच्छयइ बुह अप्पा विमल मुणंतु ।

पुण पुण अप्पा भावियइ सो चारित्त पवित्तु ॥ ८२ ॥

दर्शन येन पश्यति बोध आत्मान विमल मनुते ।

पुनः पुनः आत्मानं भावयति तत् चारित्र पवित्रम् ॥

आत्मस्वरूपे यो रमते त्यक्त्वा सर्वव्यवहारम् ।

स सम्यग्दृष्टि भवति लघु प्राप्नोति भवपारम् ॥

अजरु अमरु गुणगणणिलउ जहिं अप्पा थिर थाइ ।

सो कम्महि ण वि वंधयउ संचियपुव्व विलाइ ॥ ८९ ॥

अजरोमरो गुणगणनिलयः यत्र आत्मा स्थिरः तिष्ठति ।

स कर्माणि नैव वध्नाति सचितपूर्वाणि विलीयते ॥

जो सम्मत्तपहाणु वुहु सो तयलोय पहाणु ।

केवलणाण वि सह लहई सासयसुक्खणिहाणु ॥ ९० ॥

य सम्यक्त्वप्रधान बुधः स त्रैलोक्ये प्रधानः ।

केवलज्ञानमपि स लभते, शाश्वतसुखनिवान् ॥

जह सलिलेण ण लिप्पियइ कमलणिपत्त कया वि ।

तह कम्मेण ण लिप्पियइ जइ रइ अप्पसहावि ॥ ९१ ॥

यथा सलिलेन न लिप्यते कमलिनीपत्र कदापि ।

तथा कर्मणा न लिप्यते यदि रमते आत्मस्वभावे ॥

जो समसुक्खणिलीण वुहु पुण पुण अप्प मुणेइ ।

कम्मक्खउ करि सो वि फुडु लहु णिव्वाण लहेइ ॥ ९२ ॥

यः समसुखनिशील बुधः पुनः पुन आत्मानं मनुते ।

कर्मक्षयं कृत्वा सोऽपि स्फुटं लघु निर्वाणं लभते ॥

पुरुसायारपमाणु जिय अप्पा एहु पवित्तु ।

जोइज्जइ गुणणिम्मलउ णिम्मलतेय फुरंतु ॥ ९३ ॥

पुरुषाकारप्रमाणं जीवं आत्मानं इमं पवित्रं ।

पश्यति गुणनिर्मलं निर्मलतेजसा स्फुरन्तं ॥

जो अप्या सुदृ बि सुपर्ण अमुदसरीरविभिण्यु ।
सो बाणइ सच्छइ सयलु सासयसुक्खइलीणु ॥ ९४ ॥

य आत्मानं सुदं अपि मनुते अशुचिसरीरविभिन्नं ।
स जानाति शास्त्रं सकलं शास्त्रसमुच्छरीन ॥

जो थ वि जाणइ अप्प परु थ वि परमाव चएवि ।
सो बाणठ सच्छइ सयलु थ हु सिवसुक्ख लहेवि ॥ ९५ ॥

यः नापि जानाति आत्मानं परं नापि परमाणं त्यजति ।
स जानन् शास्त्राणि सकलानि न हि शिवसुखं जमते ॥

वज्जिअ सयलवियप्पमइ परमसमाहि लहंति ।
अं वेददि साणंद कुइ सो सिवसुक्ख भणंति ॥ ९६ ॥

वज्रितं सकलविकल्पै परमसमाधिं जमन्ते ।
यत् विदन्ति सामन्दं स्फुटं तत् शिवसुखं भणन्ति ॥

जो पिण्डत्यु पयत्यु पुइ रुवस्यु वि जिणउणु ।
रुवातीत मुण्येइ लहु विम परु होदि पविणु ॥ ९७ ॥

य पिण्डस्यं पदस्थं शुचं रूपस्थमपि विनोक्तम् ।
रूपातीतं मन्यते ऋषु येन परं भवति पवित्रं ॥

सख्ये जीवा थाणमया जो समभाव मुण्येइ ।
सो सामाइठ आणि कुइ जिणवर एम मणेइ ॥ ९८ ॥

सर्वे जीवा ज्ञानमया य समभावं मनुते ।
तत् सामाधिकं जानीहि सुदं जिनवर एव भणति ॥

रापरोस वे परिहरवि जो समभाव मुण्येइ ।
सो सामाइय आणि कुइ केवलि एम मणेइ ॥ ९९ ॥

रागद्वेषौ द्वौ परिहृत्य यः समभाव मनुते ।

तत्सामायिक जानीहि स्फुट केवली एव भणति ॥

हिंसादिउ परिहार करि जो अप्पाहु ठवेइ ।

सो वीअउ चारित्त मुणि जो पंचमगइ णेइ ॥ १०० ॥

हिंसादीना परिहार कृत्वा य. आत्मान स्थापयति ।

तद्द्वितीय चारित्र मनुस्व यत्पंचमगतिं नयति ॥

मिच्छादिउ जो परिहरणु सम्मदंसणमुद्धि ।

सो परिहारविसुद्ध मुणि लहु पावहि सिवसुद्धि ॥ १०१ ॥

मिथ्यात्वादिक यः परित्यज्य सम्यग्दर्शनशुद्धिम् ।

तत्परिहारविशुद्धं मनुस्व लघु प्राप्नोसि शिवशुद्धिम् ॥

सुहमह लोहह जो विलउ सुहसु हवे परिणामु ।

सो सुहमहचारित्त मुणि सो सासयसुहधामु ॥ १०२ ॥

सूक्ष्मस्य लोभस्य यः विलय सूक्ष्म. भवेत्परिणाम. ।

तत्सूक्ष्मचारित्र मनुस्व तत् शाश्वतसुखधाम ॥

अरिहंतु वि सो सिद्ध फुडु सो आयरिउ वियाणि ।

सो उज्झावो सो जि मुणि णिच्छय अप्पा जाणि ॥ १०३ ॥

अर्हन्तमपि त सिद्ध स्फुट त आचार्यं जानीहि ।

त उपाध्याय तमेव मुनि निश्चयेन आत्मान जानीहि ॥

सो सिव संकर विण्हु सो सो रुद्र वि सो बुद्धु ।

सो जिण ईसर वंभु सो सो अणंत फुडु सिद्धु ॥ १०४ ॥

स शिवः शकर. विष्णु. स स रुद्रः अपि स बुद्ध

स जिन. ईश्वर. ब्रह्मा स अनंत. स्फुट सिद्धः ॥

जो अप्पा सुद्ध वि मुणई असुद्धसरीरविभिण्यु ।
सो ज्ञाणइ सच्छइ सयलु सासयसुक्खइलीणु ॥ ९४ ॥

य आत्मानं शुद्धं अपि मनुते अशुचिशरीरविभिन्नं ।
स जानाति शास्त्रं सकलं शाश्वतमुच्छलीन ॥

जो ण वि ज्ञाणइ अप्प पर ण वि परभाव चएवि ।
सो ज्ञाणठ सच्छइ सयलु ण हु सिवसुक्ख लहेवि ॥ ९५ ॥

य नापि जानाति आत्मानं परं नापि परभावं त्यजति ।
स जानन् शास्त्राणि सकलानि न हि शिवसुखं उच्यते ॥

वज्जिय सयलवियप्पयइ परमसमाहि लहंति ।
वं वेददि सार्जद फुइ सो सिवसुक्ख मणंति ॥ ९६ ॥

वर्जितं सकलविकल्पैः परमसमाधिं उच्यते ।
यत् विदन्ति सानन्दं सुहृत् तत शिवसुखं भणन्ति ॥

जो पिण्डत्थु पयत्थु बुद्ध रूपत्थु वि जिमउत्तु ।
रूपातीत मुण्डेइ लहु जिम पर होहि पविणु ॥ ९७ ॥

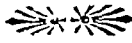
य पिण्डस्थं पृथग् बुद्ध रूपस्थमपि त्रिनोक्तम् ।
रूपातीतं मन्यते अथु येन पर भवति पवित्र ॥

सन्धे जीवा ज्ञाणमया जो समभाव मुण्डेइ ।
सो सामाइट जाणि फुइ जिणवर एम मण्डेइ ॥ ९८ ॥

सर्वे जीवा ज्ञानमया य समभावं मनुते ।
तत् सामायिकं जानीहि सुहृत् जिणवर एव भणति ॥

रायरोस वे परिहरवि जो समभाव मुण्डेइ ।
सो सामाइय जाणि फुइ केवलि एम मण्डेइ ॥ ९९ ॥

कल्याणालोचना ।



परमप्यय बहुमई परमेष्टीणं करोमि णवकारं ।

सगपरसिद्धिणिमित्तं कल्याणालोचना वोच्छे ॥ १ ॥

परमात्मान वद्धितमतिं परमेष्ठिन करोमि नमस्कारम् ।

स्वकपरसिद्धिनिमित्त कल्याणालोचना वक्ष्ये ॥

रे जीवाणंतभवे संसारे संसरंत बहुवार ।

पत्तो ण बोहिलाहो मिच्छत्तवियंभपयडीहिं ॥ २ ॥

रे जीव ! अनन्तभवे ससारे ससरता बहुवारम् ।

प्राप्तो न बोधिलाभो मिथ्यात्वत्रिजृभितप्रकृतिभि ॥

संसारभमणगमणं कुणंत आराहिऊ ण जिणधम्मो ।

तेणेविण वर दुक्खं पत्तोसि अणंतवाराइं ॥ ३ ॥

ससारभ्रमणगमन कुर्वन् आराधितो न जिनवर्म ।

तेन विना वर दुक्ख प्राप्तोऽसि अनन्तवारम् ॥

संसारे णिवसंता अणंतमरणाइं पाविओसि तुमं ।

केवलि विणा ण(य) तेसिं संखापज्जत्ति णो हवइ ॥ ४ ॥

ससारे निवसन् अनन्तमरणानि प्राप्तोऽसि त्व ।

केवलिना विना तेषा सख्यापर्याप्तिर्न भवति ॥

तिणिण सया छत्तीसा छावट्टिसहस्सवारमरणाइं ।

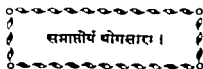
अंतोमुहुत्तमझे पत्तोसि णिगोयमज्झम्मि ॥ ५ ॥

त्रीणि शतानि पट्त्रिंशानि पट्पट्टिसहस्रवारमरणानि ।

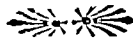
अन्तर्मुहूर्तमध्ये प्राप्तोऽसि निगोटमध्ये ॥

एहिबलकस्रषलनिखयउ वो पर निष्कल देउ ।
 देहह मज्जाह सो वसह तासु ण वीजहमेउ ॥ १५ ॥
 एतल्लक्षणलक्षित य पर निष्कलो देव ।
 देहस्य मध्ये स वसति तस्मिन् नाम्यमेद ॥
 जे सिद्धा जे सिद्धसिद्धि जे सिद्धहि जिष उज्जु ।
 अप्पासण ते वि फुइ एहउ आणि निमंतु ॥ १०६ ॥
 ये सिद्धा ये सेत्स्यन्ति य सिष्यन्ति विनोक्त ।
 आत्मदर्शनेन तेऽपि स्फुटं एतत् जानीहि निर्भ्रान्तम् ॥
 संसारह भयभीयएहं जोगिचंद्रमुणिषणं ।
 अप्पासंवेहण कचहं दोहा एकमप्येण ॥ १०७ ॥
 संसारस्य भयभीतानां योगिचंद्रमुनिना ।
 धारमसंबोधनाय कृतानि दोहकानि एकमनसा ॥

इति श्रीयोगिचंद्रकृतो भोक्सारः संपूर्णोभूत् ।



कल्याणालोयणा ।



परमप्यय वडुमई परमेष्टीणं करोमि णवकारं ।

सगपरसिद्धिणिमित्तं कल्याणालोयणा वोच्छे ॥ १ ॥

परमात्मान वर्द्धितमतिं परमेष्ठिन करोमि नमस्कारम् ।

स्वकपरसिद्धिनिमित्त कल्याणालोचना वक्ष्ये ॥

रे जीवाणंतभवे संसारे संसरंत बहुवारं ।

पत्तो ण बोहिलाहो मिच्छत्तवियंभपयडीहिं ॥ २ ॥

रे जीव ! अनन्तभवे ससारे संसरता बहुवारम् ।

प्राप्तो न बोधिलाभो मिथ्यात्वनिजृभितप्रकृतिभि ॥

संसारभ्रमणगमणं कुणंत आराहिऊ ण जिणधम्मो ।

तेणोविण वर दुक्खं पत्तोसि अणंतवाराइं ॥ ३ ॥

ससारभ्रमणगमन कुर्वन् आराधितो न जिनवर्म ।

तेन विना वर दुक्ख प्राप्तोऽसि अनन्तवारम् ॥

संसारे णिवसंता अणंतमरणाइं पाविओसि तुमं ।

केवलि विणा ण(य) तेसिं संखापज्जत्ति णो हवइ ॥ ४ ॥

ससारे निवसन् अनन्तमरणानि प्राप्तोऽसि त्व ।

केवलिना विना तेपा सख्यापर्याप्तिर्न भवति ॥

त्तिणिण सया छत्तीसा छावट्टिसहस्सवारमरणाइं ।

अंतोमुहुत्तमझे पत्तोसि णिगोयमज्झम्मि ॥ ५ ॥

त्रीणि शतानि पट्त्रिंशानि पट्पष्टिसहस्रवारमरणानि ।

अन्तर्मुहूर्तमध्ये प्राप्तोऽसि निगोटमध्ये ॥

वियलिदिए असीदी सही चालीसमेव जाणेहि ।

पंचेंदिय चउवीस सुदभवतोमुहुत्तस्त ॥ ६ ॥

विकलेन्द्रियेऽशीतिं पष्टि चत्वारिंशदेव जानीहि ।

पंचेन्द्रिये चतुर्विंशतिं क्षुद्रभवान् भस्तमुहूर्ते ॥

अण्णोण खजंता जीवा पावति दाह्यं दुःखं ।

ण हु संसिं पञ्चसी फह पावइ घम्ममइसुण्णो ॥ ७ ॥

अन्योऽन्यं कुम्पन्तो जीवा प्राप्नुवन्ति दाह्यं दुःखम् ।

न सद्य तेषां पर्याप्ती कथं प्राप्नोति धर्ममतिशून्य ॥

माया पियर कुठबो सुयणजणो को वि णावइ सत्ये ।

एगागी भमइ सया ण हि धीओ अस्थि संसारे ॥ ८ ॥

माता पिता कुटुम्ब स्वजनजन कोऽपि नायाति सह ।

एकाकी अमति सदा न हि द्वितीयोऽस्ति संसारे ॥

आठक्खए वि पचे ण समस्यो को धि आउदाप्ये य ।

देवेंदो ण भरेंदो मणिओसहमंतजालाई ॥ ९ ॥

आयु क्षयेऽपि प्राप्ते न समर्थ कोऽपि आयुर्दाने च ।

देवेन्द्रो न मरेन्द्र मण्यौषधर्मत्रबाळानि ॥

संमदि त्रिणवरधम्मो लद्धोसि तुमं विसुद्धजोएण ।

खामसु जीवा सव्वे पचे भमए पयचेण ॥ १ ॥

सम्प्रति त्रिणवरधर्मं लब्धोऽसि त्वं विशुद्धयोगेन ।

क्षमस्व जीवान् सर्षान् प्रत्येकं समये प्रयत्नेन ॥

विष्णि सया तेसही मिच्छसा वंसजस्त पडिबक्खा ।

अण्णाणें सरहिया मिच्छा मे दुक्कई दुक्क ॥ ११ ॥

त्रीणि शतानि त्रिषष्टि मिथ्यात्वानि दर्शनस्य प्रतिपक्षाणि ।
अज्ञानेन श्रद्धितानि मिथ्या मे दुष्कृत भवतु ॥

महुमज्जमंसजूवापभिदी वसणाइं सत्तभेयाइं ।
णियम ण कयं च तेसिं मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥ १२ ॥

मधुमद्यर्मासद्युतप्रभृतीनि व्यसनानि सप्तभेदानि ।
नियमो न कृतः च तेषा मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ॥

अणुवयमहव्वया जे जमणियमाशील साहुगुरुदिण्णा ।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥ १३ ॥

अणुव्रतमहाव्रतानि यानि यमनियमशीलानि सावुगुरुदत्तानि ।
यानि यानि विराधितानि खलु मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ॥

णिच्चिदरधादुसत्तय तरुदह वियलिंदिएसु ल्छेव ।
सुरणरयतिरिय चदुरो चउदस मणुए सदसहस्सा ॥ १४ ॥

नित्येतरधातुसप्त, तरुदश, विकलेन्द्रियेषु षट् चैव ।
सुरनारकतिर्यक्षु चत्वार. चतुर्दश मनुष्ये शतसहस्राणि ॥

एदे सव्वे जीवा चउरासीलक्खजोणिवसि पत्ता ।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥ १५ ॥

एते सर्वे जीवाश्चतुरशीतिलक्षयोनिवशे प्राप्ताः ।
ये ये विराधिताः खलु मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ॥

पुढवीजलग्गिवाओतेओविवणस्सई य वियलतया ।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥ १६ ॥

पृथ्वीजलाग्निवायुतेजोवनस्पतयश्च विकलत्रयाः ।
ये ये विराधिताः खलु मिथ्या मे दुष्कृत भवतु ॥

मलसत्तरा जिणुत्ता वयविसए जा विराहणा विविहा ।
सामइखमइया खलु मिच्छा मे दुक्कं हुज्ज ॥ १७ ॥

मलसत्तरातिदिनोक्ता व्रतविषये या विराहणा विविहा ।
सामायिकक्षमादिक्क मिच्छा मे दुक्कं भवतु ॥

फलफुल्ललह्निवल्ली अणगलण्हाणं च घोवणाईहिं ।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कं हुज्ज ॥ १८ ॥

फलपुष्पत्वग्बल्ली भग्नास्तस्नानं च प्रक्षालनादिभि ।
ये ये विराहिता खलु मिच्छा मे दुक्कं भवतु ॥

णो सीलं षेव खमा विणओ तवी ण संअमोवासा ।
ण कया ण भावियकया मिच्छा मे दुक्कं हुज्ज ॥ १९ ॥

न सीलं नैव क्षमा विनयस्तथा न समयोपवासा ।
न कृता न भावनीकृता मिच्छा मे दुक्कं भवतु ॥

कंदफलमूलवीया सच्चित्तरयणीयमोयणाहारा ।
अण्णाणे जे वि कया मिच्छा मे दुक्कं हुज्ज ॥ २० ॥

कन्दफलमूलवीजानि सच्चित्तरजनीमोजनाहारा ।
अज्ञानेन येऽपि कृता मिच्छा मे दुक्कं भवतु ॥

णो पूया जिणचलणे ण पत्तदारणं ण चेइयागमणं ।
य कया ण भाविय मइ मिच्छा मे दुक्कं हुज्ज ॥ २१ ॥

नो पूजा जिनचरणे न पात्रदानं न चेर्यागमनम् ।
न कृता न भाविता मया मिच्छा मे दुक्कं भवतु ॥

बंमारंमपरिगहसावज्जा बहु पमाददोसेष ।
जीवा विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कं हुज्ज ॥ २२ ॥

ब्रह्मरभपरिग्रहसावधानि बहूनि प्रमाददोषेण ।

जीवा विराधिता खलु मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ॥

सत्तस्सिउखित्तमवाऽतीदाणागयसुवडुमाणजिणा ।

जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥ २३ ॥

सप्ततिशतक्षेत्रभवा २ अतीतानागतवर्तमानजिना ।

ये ये विराधिता, खलु मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ॥

अरुहासिद्धाइरिया उवझाया साहु पंचपरमेठी ।

जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥ २४ ॥

अर्हत्सिद्धाचार्या उपाध्याया साधव पंचपरमेष्ठिनः ।

ये ये विराधिता, खलु मिथ्या मे दुष्कृत भवतु ॥

जिणवयण धम्म चेइय जिणपडिमा किट्टिमा अकिट्टिमया ।

जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥ २५ ॥

जिनवचन धर्म चैत्य जिनप्रतिमा कृत्रिमा अकृत्रिमाः ।

ये ये विराधिता खलु मिथ्या मे दुष्कृत भवतु ॥

दंसणणाणचरित्ते दोसा अट्टट्ठपंचभेयाइं ।

जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥ २६ ॥

दर्शनज्ञानचारित्रे दोषा अष्टाष्टपचभेदा ।

ये ये विराधिता खलु मिथ्या मे दुष्कृत भवतु ॥

मइ सुइ ओही मणपज्जयं तथा केवलं च पंचमयं ।

जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥ २७ ॥

मति श्रुत अवधि मन पर्यय तथा केवल च पंचमकम् ।

ये ये विराधिता खलु मिथ्या मे दुष्कृत भवतु ॥

आयारादी अंगा पुव्वपइष्णा जिघेहि पण्णात्ता ।

जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कहं हुज्ज ॥ २८ ॥

आयारादीन्यङ्गानि पूर्वप्रकौर्णकानि विनै प्रणीतानि ।

ये ये विराधिता खलु मिष्णा मे दुष्कृतं भवतु ॥

पंचमहव्वयशुचा अठारससहस्त्रसीलकमसोहा ।

जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कहं हुज्ज ॥ २९ ॥

पंचमहाप्रतयुक्ता अष्टादशसहस्त्रशौलकृतंशामाः ।

ये ये विराधिता खलु मिष्णा मे दुष्कृतं भवतु ॥

छोए पियरसमाणा रिद्धिपवण्णा महागणवइया ।

जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कहं हुज्ज ॥ ३० ॥

छोके पितृसमाना ऋद्धिप्रपन्ना महागणपतय ।

ये ये विराधिता खलु मिष्णा मे दुष्कृतं भवतु ॥

णिमाथ अज्जियाओ सड्ढा सड्ढी य चउविहो संघो ।

जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कहं हुज्ज ॥ ३१ ॥

निर्मन्था आर्यिका धायका धाविकाः च चतुर्विधो संघः ।

ये य विराधिता खलु मिष्णा मे दुष्कृतं भवतु ॥

देवाञ्जुरा मणुस्सा पेरइया तिरियओणिगयजीवा ।

जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कहं हुज्ज ॥ ३२ ॥

देवा अमुरा मनुष्या मारका तिर्यग्योनिगतजीवा ।

ये ये विराधिता खलु मिष्णा मे दुष्कृतं भवतु ॥

कोहो माओ माया लोहो एत्थम्म रायदोसाह ।

अण्णारो जे वि कया मिच्छा मे दुक्कहं हुज्ज ॥ ३३ ॥

क्रोधो मान माया लोभः एते रागदोषाः ।

अज्ञानेन येऽपि कृता मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ॥

परवत्थं परमहिला प्रमादजोएण अज्जियं पावं ।

अण्णावि अकरणीया मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥ ३४ ॥

परवस्त्र परमहिला प्रमादयोगेनार्जित पापम् ।

अन्येऽपि अकरणीया मिथ्या मे दुष्कृत भवतु ॥

इक्को सहावसिद्धो सोह अप्पा वियप्पपरिमुक्को ।

अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा ॥ ३५ ॥

एकः स्वभावसिद्धः स आत्मा विकल्पपरिमुक्तः ।

अन्यो न मम शरण शरणं स एकः परमात्मा ॥

अरस अरूव अगंधो अवावाहो अणंतणाणमओ ।

अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा ॥ ३६ ॥

अरसः अरूपः अगन्धः अव्याबाधः अनन्तज्ञानमयः ।

अन्यो न मम शरण शरणं स एकः परमात्मा ॥

णोयपमाणं णाणं समए इक्केण हुंति ससहावे ।

अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा ॥ ३७ ॥

ज्ञेयप्रमाण ज्ञान समयेन एकेन भवति स्वस्वभावे ।

अन्यो न मम शरण शरणं स एकः परमात्मा ॥

एयाणेयवियप्पप्पसाहणे सयसहावसुद्धगई ।

अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा ॥ ३८ ॥

एकानेकविकल्पप्रसाधने स्वकस्वभावशुद्धगतिः ।

अन्यो न मम शरण शरणं स एकः परमात्मा ॥

- देहप्रमाणो णिबो लोचप्रमाणो वि चम्मदो होदि ।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक परमप्पा ॥ ३९ ॥
देहप्रमाण नित्य ओकप्रमाण अपि घर्मतो भवति ।
अण्णो न मम शरणं शरणं स एक परमात्मा ॥
- केवलदंसयणार्णं समए इक्केण दुष्णि उवठग्गा ।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक परमप्पा ॥ ४० ॥
केवलदर्शनज्ञाने समयेनैकेन द्वौ उपयोगौ ।
अण्णो न मम शरणं शरणं स एकः परमात्मा ॥
- सगरुवसहबसिद्धो विहावगुणमुक्ककम्मवावारो ।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक परमप्पा ॥ ४१ ॥
स्वरूपसहबसिद्धो विहावगुणमुक्तकर्मव्यापार ।
अण्णो न मम शरणं शरणं स एक परमात्मा ॥
- सुण्णो षेय असुण्णो णोक्कम्मोक्कम्मवज्जिओ षाणं ।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक परमप्पा ॥ ४२ ॥
शून्यो नैवाशून्यो ! नोक्कर्मकर्मवर्जितं ज्ञानम् ।
अण्णो न मम शरणं शरणं स एक परमात्मा ॥
- णाणाउ ओ ण मिण्णो वियप्पमिण्णो सहावसुक्खमओ ।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक परमप्पा ॥ ४३ ॥
ज्ञानतो यो न मित्र विकल्पमित्र स्वभावसुखमयः ।
अण्णो न मम शरणं शरणं स एक परमात्मा ॥
- अच्छिन्नोवच्छिन्नो पमयरुवत्त गुरुल्लहू येव ।
अण्णो ष मज्झ सरणं सरणं सो एक परमप्पा ॥ ४४ ॥

अच्छिन्नोऽवच्छिन्न. प्रमेयरूपत्व अगुरुलघुत्व चैव ।

अन्यो न मम शरण शरण स एकः परमात्मा ॥

सुहअसुहभावविगतो सुद्धसहावेण तम्मयं पत्तो ।

अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक परमप्पा ॥४५॥

शुभाशुभभावविगत. शुद्धस्वभावेन तन्मय प्राप्त ।

अन्यो न मम शरण शरण स एकः परमात्मा ॥

णो इत्थी ण णंउंसो णो पुंसो णेव पुण्णयावमओ ।

अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक परमप्पा ॥४६॥

न स्त्री न नपुसको न पुमान्... . ।

अन्यो न मम शरण शरणं स एक परमात्मा ॥

ते को ण होदि सुयणो तं कस्स ण वंधवो ण सुयणो वा ।

अप्पा हवेह अप्पा एगागी जाणगो सुद्धो ॥४७॥

तव को न भवति स्वजन त्व कस्य न बन्धुः सुजनो वा ।

आत्मा भवेत् आत्मा एकाकी ज्ञायकः शुद्धः ॥

जिणदेवो होउ सया मई सुजिणसासणे सया होउ ।

सण्णासेण य मरणं भवे भवे मज्झ संपदओ ॥४८॥

जिनदेवो भवतु सदा मति. सुजिनशासने सदा भवतु ।

सन्त्यासेन च मरण भवे भवे मम सम्पत् ॥

जिणो देवो जिणो देवो जिणो देवो जिणो जिणो ।

दया धम्मो दया धम्मो दया धम्मो दया सया ॥४९॥

जिनो देवो जिनो देवो जिनो देवो जिनो जिनः ।

दया धर्मो दया धर्मो दया धर्मो दया सदा ॥

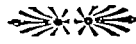
महासाह महासाह महासाह विर्यवरा ।
 एवं सद्य सदा हुज्ज आव णो मुत्तिसंगमो ॥५०॥
 महासाधव महासाधव महासाधवो दिग्म्बरा ।
 एवं तत्त्वं सदा भवतु यावन्न मुक्तिसंगमः ॥
 एषमेव गच्छे कालो अर्पतो दुक्खसंगमे ।
 जिणोवदिद्वसण्णासे ण सत्तारोहणा कया ॥५१॥
 एवमेव गतः काळेऽनन्तो हु ससङ्गमे ।
 जिनोपदिद्वसन्त्यासे न यत्तारोहणा कृता ॥
 संपई एव संपचाराहणा जिणदेसिया ।
 किं किं ण ज्ञायदे मज्झ सिद्धिसंदोहसंपई ॥५२॥
 सम्प्रति एव सम्प्राप्ताराधना जिनदेशिता ।
 क्व का न जायते मम सिद्धिसंदोहसम्पत्ति ॥
 अहो धम्ममहो धम्मं अहो मे लद्धि पिम्मला ।
 संसादा संपया सारा जेण सुक्खमहुप्पय ॥ ५३ ॥
 अहो धर्मं अहो धर्मं अहो मे कम्मिर्मिर्मल्लन
 संनाता सम्पत् सारा येन सुखं अनुपमम् ॥
 एवं आराहंतो आलोयणवंदणापडिक्कमणं ।
 पावइ फलं च तेसिं भिदिद्वं अज्जियवंमेण ॥५४॥
 एवमाराधयन् आलोचनाबलनाप्रतिक्रमणानि ।
 प्राप्नोति फलं च तेषां निर्दिष्टमनितव्रतणा ॥

* इति कम्बान्नालोचना ।

* योगसारः कम्बान्नालोचनेति प्रत्यक्षं केनचिद्व्येन सम्पादितं । इ प्रेष्यु
 स्तत्रै अप्यह्यदे भास्ताम् ।

श्रीयोगीन्द्रदेव-विरचिता ।

अमृताशीतिः ।



विश्वप्रकाशिमहिमानममानमेक-

मोमक्षराद्यखिलवाङ्मयहेतुभूतं ।

यं शंकरं सुगतमाधवमीशमाहु-

रहन्तमूर्जितमहन्तमहं नमामि ॥ १ ॥

अर्थोपार्जनप्रयास ।

भ्रातः ! प्रभातसमये त्वरितः किमर्थ-

मर्थाय चेत्स च सुखाय ततः स सार्थः ।

यद्येवमाशु कुरु पुण्यमतोर्थसिद्धिः

पुण्यैर्विना न हि भवन्ति समीहितार्थाः ॥ २ ॥

धर्मादयो हि हितहेतुतया प्रसिद्धा

धर्माद्धनं धनत ईहितवस्तुसिद्धिः ।

बुद्ध्वेति मुग्ध ! हितकारि विधेहि पुण्यं

पुण्यैर्विना न हि भवन्ति समीहितार्थाः ॥ ३ ॥

वार्त्तादिभिर्यदि धनं नियतं जनानां

निस्वः कथं भवति कोऽपि कृपीवलादिः ।

ज्ञात्वेति रे मम वचश्चतुराः स्वपुण्यैः

पुण्यैर्विना न हि भवन्ति समीहितार्थाः ॥ ४ ॥

प्रारभ्यते भुवि बुधेन धियाधिगम्य

तत्कर्म येन जगतोऽपि सुखोदयः स्यात् ।

कृप्यादिक पुनरिदं विदधासि मस्त्वं
 स्वस्यापि रे विपुलदुःखफलं न किं तत् ॥ ५ ॥
 एषेहि याहि सर निस्सर वारितोऽसि
 मा मन्दिरं नरपतेर्विश्व रे विशङ्कम् ।
 इत्यादिसेवनफल प्रयत्नं लभन्ते
 लब्ध्वापि सा यदि चला सफला कथं श्रीः ॥ ६ ॥
 वार्त्तापि किञ्च तव कर्णसुपागतेयं
 पात्रे रतिं स्थिरतया न गता कदाचित् ।
 चापल्यतोऽपि जितसर्वनितम्बिनीभी-
 स्तस्या कथं व्रत कृती विदधाति सङ्गम् ॥ ७ ॥
 प्रणमत्युन्नतिहेतोर्जीवितहेतोर्विमुञ्चति प्राप्नान् ।
 दुःखी यदि सुखहेतो को मूर्खस्तेवकादपर ॥ ८ ॥
 रत्नार्थिनी यदि कथं जलधिं विमुञ्चेत्
 रूपार्थिनी यदि च पंचशरं कथं वा ।
 दिव्योपमोगनिरता यदि नैष शक
 कृप्याभया गवगता न गुणार्थिनी श्रीः ॥ ९ ॥
 सन्धाधिकोऽपि सुमहानपि शीतलोऽपि
 मुक्तः भिया अपलया अलभिर्देवेह ।
 तस्याः कृते कथममी कृतिनोऽपि लोकाः
 हेतुश्चलञ्चलनमाद्यु विद्वान्ति केचित् ॥ १० ॥
 सत्यं समस्तसुखमल्पमिहेहितायै-
 रीहापि ते न तव तेषु सदेति चेधि ।

तेषां यदर्जनवियोगजदुःखजाल

तस्यावधिं बहुधियापि न हन्त वेद्मि ॥ ११ ॥

निर्वादमादिरहितं विधुताघसंघं

यद्यस्ति नापरमपारममारसौख्यम् ।

एवंविधेऽपि मतिमान्नपि शर्मणीत्थं

बुद्धिङ्करो तु पुरुषो वद कोऽत्र दोषः ॥ १२ ॥

आस्तां समस्तमुनिसंस्तुतमस्तमोहं

सौख्यं सखे ! विगतखेदमसंख्यमेतत् ।

निस्सङ्गिनां प्रशमजं यदिहापि जातं

तस्यांशतोऽपि सदृशं स्मरजं न जातु ॥ १३ ॥

अनन्तसुखविघ्न ।

अज्ञाननामतिमिरप्रसरोयमन्तः

सन्दर्शिताखिलपदार्थविपर्ययात्मा ।

मंत्री स मोहनृपतेः स्फुरतीह याव-

त्तावत्कुतस्तव शिवं तदुपायता वा ॥ १४ ॥

शरीरं ।

किञ्चाशुचौ शुचिसुगन्धिरसादिवस्तु

यस्मिन् गतं नरकतां समुपैति सद्यः ।

रंरम्यते तदपि मोहवशाच्छरीरं

सर्वैरहो विजयते महिमा परोऽस्य ॥ १५ ॥

अज्ञानघोरसरिदम्बुनिपातमूर्त्ति-

दुर्मोचमोहगुरुकदर्मदूरमग्नं ।

जन्मान्तकादिमकरैरुगृह्यमाणं

विश्वं निरीशमवशं सहतेऽतिदुःखम् ॥ १६ ॥

अज्ञानी ।

अज्ञानमोहमदिरां परिपीय सुग्ध !

हे हन्त हन्ति परिवन्गति अस्पतीष्टम् ।

पद्भ्येच्छं अगदिद पतित पुरस्ते

किन्तुर्ध्वसे स्वमपि षालिञ्च ! तादृशोऽपि ॥ १७ ॥

चक्खुं सदसण सय सागे सप्यडि दोसपरिहारीणं ।

चक्खुं होइ णिरन्दो ददणमिलयडीतंस ? ॥ १८ ॥

वैरी ममायमहमस्य कृतोपकार

इत्यादिदुःखघनपावकपच्यमानं ।

छोर्क विलोक्य न मनागपि कम्पसे त्वं

क्रन्द कुरुष्व वद तादृश ! कुर्वसे किम् ॥ १९ ॥

नो जीयते अगति केनचिदेव मोह

इत्याकुलः किमसि सम्प्रति रे वयस्य ! ।

एकोऽपि कोऽपि पुरत स्थितश्चतुसैन्यं

सत्याधिको जयति श्लोचसि किं मुषा स्वम् ॥ २० ॥

मुपत्वालसत्वमविसत्वबलोपपन्नः

भुत्वा पराञ्च समतां कुलदेवतां स्वम् ।

संज्ञानचक्रमिदमङ्ग ! गृहाण तूर्ण-

मज्ञानमन्त्रियुतमोहरिपूपमर्दि ॥ २१ ॥

सत्वं हि केमलमलं फलतीष्टसिद्धिं

मुक्तं तया समतया यदि क परस्ते ।

एकद्वयेन सहितं यदि बोधरत्न-

मेकस्त्वमेव पतिरङ्ग ! चराचराणां ॥ २२ ॥

मल्लो न यस्य भुवनेऽपि समोऽस्ति सोऽयं
 कामः करोति विकृतिं तव तावदेव ।
 यावन्न यासि शरणं चरणं समन्तात्
 सोपानतामुपगतां शिवसौधभूमेः ॥ २३ ॥
 कालत्रयेऽपि भुवनत्रयवर्त्तमान-
 सत्वप्रमाथिमदनादिमहारयोऽमी ।
 पश्याशु नाशमुपयान्ति दृशैव यस्याः
 सा सम्मता ननु सतां समतैव देवी ॥ २४ ॥

चारित्रम् ।

वाञ्छा सुखे यदि सखे ! तदवैमि नाहं
 धर्माद्धृते भवति सोऽपि न यावदेते ।
 रागादयस्तदसनं समता त एव
 तस्माद्विद्येहि हृदि तां सततं सुखाय ॥ २५ ॥

समतामृत ।

ज्वालायमानमदनानलपुञ्जमध्ये
 विश्वं कथं कथति कोऽपि कुतूहलेन ।
 कस्मिन्नपीह समसौख्यमया हिमानी-
 मध्यासते यतिवराः समताप्रसादात् ॥ २६ ॥
 मैत्री कृपा प्रमुदिता सुभगाङ्गनानां
 शुभ्राभ्रसन्निभमनःसदने निवासम् ।
 त्वं देहि ता हि समताभिमताः समीत्वा-
 देवं न कोऽपि भुवनेऽपि तवास्ति शत्रुः ॥ २७ ॥

सत्साम्यभाषगिरिगहरमध्यमेत्य
 पचासनादिकमदोपमिद् च मद्भ्या ।
 आत्मानमात्मनि सखे ! परमात्मरूपं
 त्वं ध्याय वेत्सि ननु येन सुख समाधेः ॥ २८ ॥

आत्माराधना ।

आराध्य धीर ! शरणा सततं गुरुणां
 लब्ध्वा ततो दक्षममार्गधरोपदेश्य ।
 तस्मिन्निषेहि मनसः स्थिरतां प्रयत्नात्
 क्षीरं प्रयाति तव येन भवापगेयम् ॥ २९ ॥

छन्दः ।

नित्यं निरामयमनन्तमनादिमध्य-
 मर्हन्तमूर्जितमज्ज स्मरतो हृदीशम् ।
 नाशं न याति यदि जातिचरादिकं ते
 तर्हि भ्रमः कथमय न मदा मुनीनाम् ॥ ३० ॥
 श्रीराम्बुराशिसदृशांश्च यदीयरूप-
 माराध्यसिद्धिसुपयान्ति तपोधनास्त्वं ।
 इहो स्वहंसहरिविष्टरसन्निविष्ट-
 मर्हन्तमक्षरमिदं स्मर कर्मसुक्यै ॥ ३१ ॥

पद्यम् ।

यं निष्कलं सकलमध्ययकेवलं वा
 सन्तः स्तुवन्ति सततं समभावभाजः ।
 वाच्यस्य तस्य धरवाचकमन्त्रयुक्तो
 हे पान्य ! शायतपुरीं विश्वं निर्विशदः ॥ ३२ ॥

यन्न्यासतः स्फुरति कोऽपि हृदि प्रकाशो

वाग्देवता च वदने पदमादधाति ।

लब्ध्वाः तदक्षरवर गुरुसेवया त्वं

मा मा कृथाः कथमपीह विराममस्मात् ॥ ३३ ॥

यावत् समस्ततिरियं सरतीह तावत्

तावच्च रे चरसि ही रजसि त्वमेव ।

यावत्स्वशर्मनिकरामृतवारिवर्षं

न हर्हिमांशुरुदयं न करोति तेऽन्तः ॥ ३४ ॥

हर्मन्त्रसारमतिभास्वरधामपुंजं

सम्पूज्य पूजिततमं जपसंयमस्थः ।

नित्याभिराममविराममपारसारं

यद्यस्ति ते शिवसुखं प्रति सम्प्रतीच्छा ॥ ३५ ॥

द्वैकाक्षरं निगदितं ननु पिण्डरूपं

तस्यापि मूलमपरं परमं रहस्यम् ।

वक्ष्यामि ते गुरुपरम्परया प्रयातं

यन्नाहतं ध्वनति त[द्व]त्तदनाहताख्यम् ॥ ३६ ॥

अस्मिन्ननाहतविले विलपेन मुक्ते

नित्ये निरामयपदे स्वमनो निधाय ।

त्वं याहि योगशयनीयतलं सुखाय

श्रान्तोऽसि चेद्भवपथभ्रमणेन गाढम् ॥ ३७ ॥

लोकालोकविलोकनैकनयनं यद्वाङ्मयं तस्य या

मूलं बालमृणालनालसदृशीमात्रां सदा तां सतीं ।

स्मारं स्मारममन्दमन्दमनसा स्फारप्रभाभासुरां
 संसारार्णवपारमेहि तरसात् किं त्वं वृथा वाम्यसि ॥३८
 धर्मध्यान ।

अन्धाम्बोधिनियातमीतमनसां शश्वस्सुखं वाञ्छतां
 धर्मध्यानमवादि साध्वरमिदं किञ्चित् कथं चिन्मया ।
 सूक्ष्मं किञ्चिदतस्तदेष विधिना नालम्बनं कथ्यते
 भ्रूमङ्गादिकदेससङ्गतमृते देयैः परैः किञ्चन ॥३९॥
 मयसि मनसि मोह चञ्चलं तावदेवं
 बहुगुणगणगण्यं मन्यसेऽन्यच्च देवं ।
 गुरुवचननियोगाभेक्षसे यावदेवं
 अक्षरकरगौरं बिन्दुदेवं स्फुरन्तम् ॥ ४० ॥

बिन्दुप्रवेशेन धारावनाकम् ।

झटिति करवयोगाद्रीधते स्रुयुगान्ते
 प्रजति यदि मनस्ते बिन्दुदवे स्थिरत्वम् ।
 घुटति निविडधन्वो वश्यतामेति घुक्तिः
 सदलममलशीले योगनिद्रां भवस्व ॥ ४१ ॥

पवन-वचमूलावाहयम् ।

सरलविमलनालीद्वारमूले मनस्त्वं
 कुरु सरति यतोऽथ प्रहर घ्रेणवायुः ।
 परिहृतपरनालीयुग्ममार्गप्रयाणः
 दलितमसदलौघः केवलज्ञानहेतुः ॥ ४२ ॥

मूलावाहयराश्या ।

धिलसदलमतातस्तीव्रकर्मोदयाद्वा
 सरलविमलनालीर धमप्राप्तलोकः ।

अहह कथमसह्यं दुःखजालं विशालं
सहति महति नैवाचार्यमज्ञस्तदर्थम् ॥ ४३ ॥

अनाहताराधना ।

रसरुधिरपलास्थिस्नायुशुक्रप्रमेद-
प्रचुरतरसमीरश्लेष्मपित्तादिपूर्णे ।
तनुनरककुटीरे वासतस्ते घृणां चेद्
हृदयकमलगर्भे चिन्तय स्वं परोऽसि ॥ ४४ ॥

व्यक्तानन ।

अजममरममेयं ज्ञानदृग्वीर्यशर्मा-
स्पदमविपदमिष्टं स्वस्वरूपं यदि त्वं ।
कुरु हृदयनभोन्तर्मानसं निर्विकल्पं
वपुषि विषमरोगे नश्वरे मा रमस्व ॥ ४५ ॥

अपरानाहता ।

अपरमपि विधानं दामकामादिकानां
दुतविदुरविधानं धर्मता लभ्यते यत् ।
तदहमिह समस्तादंहसां भुक्तये ते
हितपथपथिकेदं क्षिप्रमावेदयामि ॥ ४६ ॥

नादानाहताराधनातत्कलम् ।

श्रवणयुगलमूलाकाशमासाद्य सद्यः
स्वपिहि पिहितमुक्तस्वान्तमद्वारसारे ।
विमलसदलयोगानल्पतल्पे ततस्त्वं
स्फुरितसकलतत्त्वं श्रोष्यसि स्वस्य नादम् ॥ ४७ ॥

मादोत्पत्तिकाष्ठनावमेवभिरूपणम् ।

शशधरदुतभोजिद्वादशार्द्धद्विपट्ट

प्रमितविदितमासै स्वस्वरूपप्रदर्शी ।

मदकलपरपुष्टांभोदनधम्युराशि-

ध्वनिसद्वरवत्वाज्जायते सा चतुर्था ॥ ४८ ॥

मादोत्पत्तित्वात् ।

श्रवणयुगलमध्ये मस्तके षष्ठसि स्वे

मवति मघनमेपां मापितानां त्रयाणां ।

विपुलफलमिहैवोत्पद्यते यश्चतेभ्य

स्तदपि शृणु मया त्वं कथ्यमानं हि तथ्यम् ॥४९॥

तत्त्वम् ।

अमरसदृशकेशं मस्तकं दूरदृष्टि

षपुरज्वरमरोगं मूलनादप्रसिद्धेः ।

अणुलघुमहिमायाः सिद्धयः स्युर्वितीयात्

सुरनरस्त्रचरेणां सम्पदश्चान्यभेदात् ॥ ५० ॥

समुद्रधोपोत्पत्तिः ।

करशिरसि नितम्बे नामिषिम्बे च कर्म

प्रभवति घनघोषाम्मोगिनिर्घोषतुर्यः ।

विषटयति क्पात् इन्द्रमद्वन्द्वसिद्धा

स्पदधत्तिमर्षाधध्वंसकोयं चतुर्थ ॥ ५१ ॥

मादाकर्षकं ।

प्रकृतिनिबन्धरूप घोषमाकम्प्य रम्भं

परिहरत नितान्त विस्मयं हो यतीक्षा ! ।

कुरुत कुरुत यूयं योगयुक्तं स्वचित्तं
तृणजललवतुल्यैः किमफलैः क्षौद्रसिद्धयै ॥ ५२ ॥

फलम् ।

सकलदृगयमेकः केवलज्ञानरूपो
विदधति पदमस्मिन्साधवः सिद्धिसिद्धयै ।
तदलममुमनूनं नादमाराध्य सम्यक्
त्वमपि भव शुभात्मा सिद्धिसीमन्तिनीशः ॥ ५३ ॥

ज्योतिरनाहतम् ।

बहिरबहिरुदारज्योतिरुद्भासदीपः
स्फुरति यदि तवायं नाभिपद्मे स्थितस्य ।
अपसरति तदानीं मोहघोरान्धकार-
श्रवणकरणदक्षो मोक्षलक्ष्मीदिदक्षोः ॥ ५४ ॥

धर्मध्यानोपसहार ।

इति निगदितमेतद्देशमाश्रित्य किञ्चित्
गुरुसमयनियोगात्प्रत्ययस्यापि हेतोः ।
परमपरमुदारज्ञानमानन्दतानं
विमलसकलमेकं सम्यगो(गे) कः समस्ति ॥ ५५ ॥

गुरुपरम्परोपदेश ।

प्रथममुदितमुक्तेनादिदेवेन दिव्यं
तदनु गणधराद्यः साधुभिर्यद्भूतं च ।
क्रथितमपि कथञ्चिन्नादिगम्यं समोहै-
रधिगतमपि नश्यत्याशु सिध्या विनेह ॥ ५६ ॥

विष्णोपदेश ।

स्वरनिकरविसर्गव्यञ्जनाद्यक्षरैर्य

द्रुहितमहितहीनं ध्याश्वतं मुक्तसंख्यम् ।

अरसविमिररूपस्पर्शगन्धाम्बुषायु

श्लिष्टिषधनसखाणुस्पृलदिकूचकृषालम् ॥ ५७ ॥

व्यरन्नननमराणां वेदना यत्र नास्ति

परिमवति न मृत्युर्नागतिर्नो गतिर्वा ।

तदतिविशदचिचैर्लभ्यतेऽपि तत्त्वं

गुण्यगुरुगुण्यपादांमोजसेवाप्रसादात् ॥ ५८ ॥

गुरुपदेशः ।

गिरिगहनगुहाधारप्यधून्यप्रदेश

स्वितिकरणनिरोधध्यानतीर्थोपसेवा ।

प्रपठनजपहोमैर्घ्राण्यो नास्ति सिद्धि

मृगय तदपरत्वं मोः प्रकारं गुरुभ्य ॥ ५९ ॥

दृगधगमनलक्ष्मं स्वस्य तत्त्वं समन्ता

द्रुतमपि निजदेहे दहिमिर्नोपलक्ष्यम् ।

तदपि गुरुवचोमिर्धोष्यते तेन देवो

गुह्यरधिगततत्त्वस्तत्त्वतः पूजनीय ॥ ६० ॥

विद्यानन्द अमितफलसिद्धेः

इत्यादि विद्यानन्दस्वामिमिरुष्यम् ।

अमितफलसिद्धेरभ्युपाय सुबोध

प्रभवति स च शम्भास्य चोत्पत्तिराप्तात् ।

इह भवति स पू यस्तत्प्रमादात्प्रभुदे

न हि कृतमुपकारं साधयो विस्मरन्ति ॥ ६१ ॥

स्वस्मिन् सदभिलाषत्वादभीष्टज्ञापकत्वतः
स्वयं हि तत्प्रयोक्तृत्वादात्मैव गुरुरात्मनः ॥ ६२ ॥

मोक्षमार्ग ।

दृगवगमनवृत्तस्वस्वरूपप्रविष्टो
व्रजति जलधिकल्पं ब्रह्मगम्भीरभावं ।
त्वमपि सुनयमत्वान्मद्वचस्सारमस्मिन्
भवसि भव भवान्तस्थायिधामाधिपस्त्वम् ॥ ६३ ॥ ३

यदि चलति कथञ्चिन्मानसं स्वस्वरूपा—
द्भ्रमति बहिरतस्ते सर्वदोषप्रसङ्गः ।

तदनवरत्तमन्तर्मग्नसंविग्रचित्तो
भव भवसि भवान्तस्थायिधामाधिपस्त्वम् ॥ ६४ ॥

उक्तम् ।

अहिंसाभूतानामित्यादिसमन्तभद्रवचनम् ।

शरीरनिर्मोह ।

बहिरबहिरसारे दुःखभारे शरीरे
क्षयिणि व्रत रमन्ते मोहिनोऽस्मिन् वराकाः ।
इति यदि तव बुद्धिर्निर्विकल्पस्वरूपे
भव भवसि भवान्तस्थायिधामाधिपस्त्वम् ॥ ६५ ॥

अजङ्गमजङ्गमयो रागाद्युत्पत्तिहेतु ।

इदमिदमतिरम्यं नेदमित्यादिभेदा—
द्विदधति पदमेते रागरोषादयस्ते ।

सदलममलमेकं निष्कलं निष्क्रियस्तन्
 मज्ज मज्जसि समाधेः सत्फलं येन नित्यम् ॥ ६६ ॥

असासिहतन्याचार्यवृत्तम् ।

तावत्क्रिया प्रवर्तन्ते यावद्द्वैतस्य गोचरं ।
 अद्वये निष्कले प्राप्ते निष्क्रियस्य कुतः क्रिया ॥ ६७ ॥
 बन्धमोक्षौ ।

अहमहमिह भावाद्भावात् यावदन्त
 भवति भवति बन्धस्तावदेवोऽपि नित्य ।
 क्षणिकमिदमक्षेपं विश्वमालोक्य तस्मा-
 द्भ्रज शरणमवन्द्य शान्तये त्वं समाधेः ॥६८॥

अक्षरकवेरवृत्तम् ।

साहंकारे मनसि न सम याति जन्मप्रबन्धो
 नाहंकारमलति हृदयादात्मरूपा (पुत्रा) च सत्या ।
 अन्यं शास्त्रो जगति च यतो नास्ति नैरात्मवादी
 नान्यस्तस्मादुपश्रमविषेस्तन्मत्तादस्ति मार्ग ॥६९॥
 रविरयमयधि(मि)न्दुर्घोषयन्तौ पदार्थान्
 विलमति सति यस्मिन्नासती मीतु ! मात ।
 तदपि भव ! इहात्मा ज्ञानपुञ्जेऽपि तस्मिन्
 प्रवृत्ति महति मोहं हेतुना येन फणित् ॥७०॥

अन्वयप्रमाणप्रसिद्धाव ।

ये लोकं ज्वलत्यनन्यमदिषा मोष्येप तन्नोनिधि-
 प्यस्मिन् मत्यवभाति नामति पुनर्देषोऽशुमाली स्वय ।

तस्मिन् बोधमयप्रकाशविशदे मोहान्धकारापहे
येऽन्तर्यामिनि पूरुषे प्रतिहताः संशेरते ते हताः॥७१॥

आत्मपरिज्ञानम् ।

करणजनितबुद्धिर्नेक्षते मूर्त्तिमुक्तं
श्रुतजनितमतिर्यास्पष्टमेयावभासा ।

उभयमतिनिरोधे स्पष्टमत्यक्षमक्षं
समदिवसनिवासं शाश्वतं लप्स्यसे त्वम् ॥७२॥

प्राणापानप्रयाणः कफपवनभवव्याद(ध)यस्तावदेते-
स्पन्ददृष्टेश्च तावत्तव चपलतया न स्थिराणीन्द्रियाणि ।
भोगा ये (ए) ते च भोक्ता त्वमपि भवसि हे हेलया यावदन्तः
साधो ! साधूपदेशाद्विशसि न परमब्रह्मणो निष्कलस्य॥७३॥

निर्विकल्पसमाधिः ।

ब्रह्मांडं यस्य मध्ये महदपि सदृशं दृश्यते रेणुनेदं
तस्मिन्नाकाशरन्ध्रे निरवधिनि मनो दूरमायोज्य सम्यक् ।
तेजोराशौ परेऽस्मिन्परिहृतसदसद्वृत्तितो लब्धलक्ष्यां
हे दक्षाध्यक्षरूपे भव भवसि भवाम्भोधिपारावलोकी॥७४॥

संसारसारकर्मप्रचुरतरमरुत्प्रेक्षणाद्भ्राम्य भ्रात-
ब्रह्मांडखण्डे नवनवकुवपुर्गृह्यता मुञ्चता च ।
कस्कः कौतस्कुतः क्वचिदपि विषयो न भुक्तो यो न मुक्तो
जातेदानीं विरक्तिस्तव यदि विश रे ब्रह्मगम्भीर-

सिन्धुम् ॥७५॥

बहिरात्मस्वरूपम् ।

पारावारोऽतिपारः सुगिरिरुरुरयं रे वरं तीर्थमेतत्
रेवारङ्गत्तरङ्गसुरसरिदपरा रेवतीशो हरिर्वा ।

इत्युद्धान्तान्तरात्मा अमति बहुतरं तावदात्मात्ममुक्त्यै
 बाधदेहेऽपि देहे हितविहितहितप्रसङ्गद्वयं न पश्येत् ॥७६॥

संसारसुखदेवमनित्यम् ।

विश्वे विश्वम्भरेष्वाः शिरसि मम पठाम्भोमधुम् दधन्ते
 वक्ष्या भावस्य लक्ष्मीर्षपुरपि निरघं विघ्नहेतुः कुतो मे ।
 इत्यादौ शर्महेतौ निपतति निखिले किं ततो मुद्गरोज्ज्वम्
 तस्माच्चक्षुषाय किञ्चित् स्थिरतरमनसा किं ततो यत्र नास्तौ ॥७७॥

दत्तं पदं शिरसि विद्विपतां ततः किं
 धाता श्रियः सकलकामदुषास्ततः किम् ।
 सन्तर्पिता प्रणयिनो विमवैस्ततः किं
 कल्पस्विति तनुमृतां तनुमिस्ततः किम् ॥७८॥

परमोपदेशः ।

तस्मादनन्तमन्नं परमप्रकाशं
 तच्चित्त ! चिन्तय किमेभिरसद्रिकल्पे ।
 यस्मानुपनिष्य इमे शुभनाधिपस्य—
 मोगादयः कृपयञ्जन्तुमता भवन्ति ॥७९॥
 उपशमफलादिधात्रीयात् फलं वरमिच्छतां ।
 भवति विपुलो यद्दध्यायासस्तदत्र किमद्भुतम् ॥८०॥
 न नियतफलाः सर्वे भावा फलान्तरमिष्यते ।
 अनयति खलु धीर्दिर्धीआम आहु यवाङ्गुरम् ॥८१॥

उपसंहार ।

चञ्चन्द्रोरुचिरुचिरतरवचःक्षीरनीरप्रवाहे

मज्जन्तोऽपि प्रमोदं परमपरनरा संगिनोगुर्यदीये

योगज्वालायमानज्वलदनलशिखाक्लेशवल्लीविहोता

योगीन्द्रो वः सचन्द्रप्रभविभुरविभुर्मङ्गलं सर्वकालम् ॥८२॥

इति योगीन्द्रदेवकृतामृताशीतिः समाप्ता ।

भद्रम्भूयात् ।

श्रीशिवकोट्याचार्यविरचिता

रत्नमाला ।



सर्वज्ञं सर्ववागीशं वीरं मारमदापहं ।
प्रणमामि महामोहघ्नान्तये मुक्तताप्तये ॥१॥
सारं यत्सर्वसारेषु बन्ध यद्वन्दितेष्वपि ।
अनेकप्रन्तमय बन्धे तदर्हद्वेषनं सदा ॥२॥
सदाक्दातमहिमा सदा ध्यानपरायण ।
सिद्धसनमुनिर्जीयाद्गणारकपदेश्वरः ॥३॥
स्वामी समन्तभद्रो मेऽहर्निशं मानसेऽनघः ।
विष्टताञ्जिनराबोधच्छासनाभ्युभिचन्द्रमा ॥४॥
वर्द्धमानजिनामावाद्भारत मभ्यवन्तव ।
कृतेन येन राजन्ते तदहं कथयामि व ॥५॥
सम्यक्त्वं सर्वजन्तूनां भ्यः भ्यःपदार्यिनां ।
विना तेन व्रत सर्वोऽप्यकल्प्यो मुक्तिहेतवे ॥६॥
निर्विकल्पनिघदानन्द परमेष्ठी सनातनः ।
दोषार्तीतो जिनो दवस्तदुपमं भुतिः परा ॥७॥
निरम्बरो निरारम्भो नित्यानन्दपदार्यन ।
धर्मदिककर्मभिरु साधुर्गुरुरित्युच्यते मुचे ॥८॥
अमीषां पुण्यइतूनां भद्रान तभिगघते ।
सदव परम तत्त्वं तदव परमं पदम् ॥९॥

विरत्या संयमेनापि हीनः सम्यक्त्ववान्नरः ।
 स देवं याति कर्माणि शीर्णयत्येव सर्वदा ॥१०॥
 अवद्धायुष्कपक्षे तु नोत्पत्तिः सप्तभूमिषु ।
 मिथ्योपपादत्रितये सर्वस्त्रीषु च नान्यथा ॥११॥
 महाव्रताणुव्रतयोरुपलब्धिर्निरीक्षते ।
 स्वर्गेऽन्यत्र न सम्भाव्यो व्रतलेशोऽपि धीधनैः ॥१२॥
 संवेगादिपरः शान्तस्तत्त्वनिश्चयवान्नर ।
 जन्तुर्जन्मजरातीतः पदवीमवगाहते ॥१३॥
 अणुव्रतानि पञ्चैव त्रिप्रकारं गुणव्रतं ।
 शिक्षाव्रतानि चत्वारित्येवं द्वादशधा व्रतम् ॥१४॥
 हिंसातोऽसत्यतश्चौर्यात् परनार्याः परिग्रहात् ।
 विमतेर्विरतिः पञ्चाणुव्रतानि गृहेशिनाम् ॥१५॥
 गुणव्रतानामाद्यं स्याद्दिग्व्रतं तद्द्वितीयकम् ।
 अनर्थदण्डविरतिस्तृतीयं प्रणिगद्यते ॥१६॥
 भोगोपभोगसंख्यानं शिक्षाव्रतमिदं भवेत् ।
 सामायिकं प्रोषधोपवासोऽतिथिषु पूजनम् ॥१७॥
 मारणान्तिकसल्लेख इत्येवं तच्चतुष्टयं ।
 देहिनः स्वर्गमोक्षैकसाधनं निश्चितक्रमम् ॥१८॥
 मद्यमांसमधुत्यागसंयुक्ताणुव्रतानि नुः ।
 अष्टौ मूलगुणाः पञ्चोदुम्बेरैश्चार्भकैष्वपि ॥१९॥
 वस्त्रपूतं जलं पेयमन्यथा पापकारणं ।
 स्नानेऽपि शोधनं वारः करणीयं दयापरैः ॥२०॥

श्रीशिवकोट्याचार्यविरचिता

रत्नमाला ।



सर्वज्ञ सर्ववागीशं वीरं मारमदापहं ।
प्रणमामि महामोहघ्नान्तये मुक्तताप्तये ॥१॥
सारं यत्सर्वसारेषु धन्य यद्वन्दितेष्वपि ।
अनेकान्तमय वन्दे तदर्हवचनं सदा ॥२॥
सदावदातमहिमा सदा ध्यानपरावप्य ।
सिद्धसेनमुनिर्जीयाद्गङ्गाकारकपदेश्वर ॥३॥
स्वामी समन्तभद्रो मेऽहर्निशं मानसेऽनघः ।
तिष्ठताञ्जिनराजोघञ्छासनाम्बुविचन्द्रमाः ॥४॥
वर्द्धमानविनामावाद्भारत भण्यजन्तवः ।
कृतन येन राजन्ते तदहं कथयामि व ॥५॥
सम्यक्स्व सर्वजन्तूनां श्रेयः श्रेयःपदार्यिनां ।
विना तन व्रत सर्वोऽप्यकल्प्यो मुक्तिहेतवे ॥६॥
निर्विकल्पत्रिचदानन्दः परमेष्ठी सनातन ।
दोषातीतो जिनो दधस्तदुपश्रु भुक्तिः परा ॥७॥
निरम्बरो निरारम्भो नित्यानन्दपदार्यनः ।
धर्मदिकर्मधिकु साधुर्गुरुरित्युच्यत बुधैः ? ॥८॥
अमीपां पुण्यइतूनां अद्धान तभिगघते ।
सदव परमं तत्त्वं तदेव परमं पदम् ॥९॥

मनोवचनकायैर्यो न जिघांसति देहिनः ।
 स स्याद्गजादियुद्धेषु जयलक्ष्मीनिकेतनम् ॥३२॥
 सुस्वरस्पष्टवागीष्टमतव्याख्यानदक्षिणः ।
 क्षणार्द्धनिर्जितारातिरसत्यविरतेर्भवेत् ॥३३॥
 चतुःसागरसीमाया भुवः स्यादधिपो नरः ।
 परद्रव्यपरावृत्तः सुवृत्तोपार्जितस्वकः ॥३४॥
 मातृपुत्रीभगिन्यादिसंकल्पं परयोपिति ।
 तन्वानः कामदेवः स्यान्मोक्षस्यापि च भाजनम् ॥३५॥
 जायाः समग्रशोभाद्याः सम्पदो जगतीतले ।
 तास्तत्सर्वा अपि प्रायः परकान्ताविवर्जनात् ॥ ३६ ॥
 अतिकांक्षा हता येन ततस्तेन भवस्थितिः ।
 ष्वस्विता निश्चिता वास्य कैवल्यसुखसङ्गतिः ॥३७॥
 मद्यमांसमधुत्यागफलं केन्नानुवर्ण्यते ।
 काकमांसनिवृत्याभूत्स्वर्गे खदिरसागरः ॥३८॥
 मद्यस्यावद्यमूलस्य सेवनं पापकारणं ।
 परत्रास्तामिहाप्युच्चैर्जननीं वाञ्छयेदरम् ॥३९॥
 गम्भुतोऽशुचिवस्तूनामप्यादाय रसान्तरम् ।
 मधूयन्ति कथं तन्नापविपत्रं पुण्यकर्मसु ॥४०॥
 व्यसनानि प्रवर्ज्यानि नरेण सुधियाञ्चहं ।
 सेवितान्यादृतानि स्युर्नरकायाश्रियेऽपि च ॥४१॥
 छत्रचामरवाजीभरथपादातिसंयुतः ।
 विराजन्ते नरा यत्र ते रात्र्याहारवर्जिनः ॥४२॥

प्रतिमाः पालनीया स्युरेकादश गृहेक्षिणां ।
 अपवर्गाधिरोहाय सोपानन्तीह ताः परा ॥२१॥
 कञ्चौ काले वने वासो वश्यति मुनिसत्तमै ।
 स्वीयते च जिनागारे ग्रामादिषु विश्लेषतः ॥२२॥
 तेषां नैर्ग्रह्यपूतानां भूलोत्तरगुणार्थिनां ।
 नानाभतिनिकायानां छत्रस्थज्ञानराजिनाम् ॥२३॥
 ज्ञानसंपमशौभादिहेतूनां प्राप्तुकार्मनां ।
 पुस्तपिच्छकम्बुस्थानां दानं दातुर्विमुक्तये ॥ २४ ॥
 येनाद्यकाले यतीनां वैय्याहृत्स्वं कृतं मुदा ।
 तेनैव शासनं वन प्रोद्धत धर्मकारणम् ॥२५॥
 उत्तुंगधोरणोपेतं चैत्यागारमषष्ठम ।
 कर्षभ्यं भावकै छत्त्र्यामरादिकमपि स्फुटम् ॥२६॥
 येन श्रीमञ्जिनेश्वस्य चैत्यागारमनिन्दितं ।
 कारितं तेन मध्येन स्थापितं जिनशासनम् ॥२७॥
 गोभूमिस्वर्णकच्छादिदानं वसतयेऽर्हतां ।
 कर्षभ्यं क्षीर्णचैत्यादिसमुद्धरणमप्यद ॥२८॥
 सिद्धान्तान्तरशास्त्रेषु वाच्यमानेषु मक्तिवः ।
 घनभ्ययो भ्ययो नृणां वायतेऽत्र महर्द्धये ॥२९॥
 दयादत्यादिमिर्नूनं धर्मसन्तानमुद्धरेत् ।
 क्षीनानावापि प्राप्तान्विमुखाश्चैव कल्पयेत् ॥३०॥
 प्रवक्षीषानि यान्येव रक्षणीयानि सर्वदा ।
 एकेनैकेन वायन्ते देहिनां दिव्यसिद्धय ॥३१॥

मनोवचनकायैर्यो न जिघांसति देहिनः ।
स स्याद्गजादियुद्धेषु जयलक्ष्मीनिकेतनम् ॥३२॥
सुखरस्पष्टवागीष्टमतव्याख्यानदक्षिणः ।
क्षणाद्धनिर्जितारातिरसत्यविरतेर्भवेत् ॥३३॥
चतुःसागरसीमाया भुव. स्यादधिपो नरः ।
परद्रव्यपरावृत्तः सुवृत्तोपार्जितस्वकः ॥३४॥
मातृपुत्रीभगिन्यादिसंकल्पं परयोपिति ।
तन्वानः कामदेवः स्यान्मोक्षस्यापि च भाजनम् ॥३५॥
जायाः समग्रशोभाद्याः सम्पदो जगतीतले ।
तास्तत्सर्वा अपि प्रायः परकान्ताविवर्जनात् ॥ ३६ ॥
अतिकांक्षा हता येन ततस्तेन भवस्थिति. ।
हस्विता निश्चिता वास्य कैवल्यसुखसङ्गतिः ॥३७॥
मद्यमांसमधुत्यागफलं केन्नानुवर्ष्यते ।
काकमांसनिवृत्त्याभूत्स्वर्गे खदिरसागरः ॥३८॥
मद्यस्यावद्यमूलस्य सेवनं पापकारणं ।
परत्रास्तामिहाप्युच्चैर्जननीं वाञ्छयेदरम् ॥३९॥
गम्भृतोऽशुचिवस्तूनामप्यादाय रसान्तरम् ।
मधूयन्ति कथं तन्नापविपत्रं पुण्यकर्मसु ॥४०॥
व्यसनानि प्रवर्ज्यानि नरेण सुधियाञ्चहं ।
सेवितान्यादृतानि स्युर्नरकायाश्रियेऽपि च ॥४१॥
छत्रचामरवाजीभरथपादातिसंयुतः ।
विराजन्ते नरा यत्र ते रात्र्याहारवर्जिनः ॥४२॥

दशन्ति तं न नागाद्या न ग्रसन्ति च राक्षसा ।
 न रोगाश्चापि जायन्ते य स्मरन्मंत्रमव्ययम् ॥४३॥
 रात्रौ स्मृतनमस्कारं सुप्त स्वमान् शुभाशुमान् ।
 सत्यानेव समाप्नोति पुण्यं च चिनुते परम् ॥४४॥
 नित्यनैमिषिकं कार्या क्रिया श्रेयोधिना मृदा ।
 तामिर्गूढमनस्को यस्पुण्यपण्यसमाभय ॥४५॥
 अष्टम्यां सिद्धमक्षयामा भुतचारित्रशान्तय ।
 भवन्ति भक्तयो नूनं साधूनामपि सम्मति ॥४६॥
 पाश्चिष्य सिद्धचारित्रशान्तय शान्तिकारणं ।
 त्रिकालवन्दनायुक्ता पाश्चिष्यपि सतां मता ॥४७॥
 चतुर्दश्यां शिष्यौ सिद्धचैत्यभुतसमन्विते ।
 गुरुशान्तिनुते नित्यं चैत्यपञ्चगुरू अपि ॥४८॥
 नन्दीश्वरदिने सिद्धनन्दीश्वरगुरुचिता ।
 शान्तिमक्तिः प्रकर्षभ्या बलिपुण्यसमन्विता ॥४९॥
 क्रियास्वन्यासु शास्त्रोक्तमार्गेषु करणं मता ।
 दुर्बन्नेवं क्रियां औनो गृहस्याचार्य उच्यते ॥५०॥
 चिदानन्दं परं ज्योति वेत्तलज्ञानलक्षणं ।
 आत्मानं सर्वदा ध्यायेदेतत्तत्स्वोत्तमं नृणाम् ॥५१॥
 गार्हस्प्यं बाह्यरूपेषु पालयन्तरात्ममुत् ।
 मुच्यते न पुनर्दुःखयोनाभवति निश्चितम् ॥५२॥
 कृतेन येन जीवस्य पुण्यबन्ध प्रजायते ।
 तत्कर्षभ्यं सदान्यत्र न दुर्व्यादतिकल्पितम् ॥५३॥

बौद्धचार्वाकसांख्यादिमिथ्यानयकुवादिनां ।
 पोषणं माननं वापि दातुः पुण्याय नो भवेत् ॥५४॥
 स्वकीया परकीया वा मर्यादालोपिनो नराः ।
 न माननीयाः किं तेषां तपो वा श्रुतमेव च ॥५५॥
 सुव्रतानि सुसंरक्षन्नित्यादिमहमुद्धरन् ।
 सागारः पूज्यते देवैर्मन्यते च महात्मभिः ॥५६॥
 अतीचारे व्रताद्येषु प्रायश्चित्तं गुरूदितं ।
 आचरेज्जातिलोपं च न कुर्यादतियत्नतः ॥५७॥
 श्रावकाध्ययनप्रोक्तकर्मणा गृहमेधिता ।
 सम्मता सर्वजैनानां सा त्वन्या परिपन्थनात् ॥५८॥
 पंचसूनाकृतं पापं यदेकत्र गृहाश्रमे ।
 तत्सर्वमतये (ए?) वासौ दाता दानेन लुम्पति ॥५९॥
 आहारभयभैषज्यशास्त्रदानादिभेदतः ।
 चतुर्धा दानमाश्नातं जिनदेवेन योगिना ॥६०॥
 मुहूर्त्ताद्रालितं तोयं प्रासुकं प्रहरद्वयं ।
 उष्णोदकमहोरात्रं ततः सम्मूर्च्छितो भवेत् ॥६१॥
 तिलतण्डुलतोयं च प्रासुकं भ्रामरीगृहे ।
 न पानाय मतं तस्मान्मुखशुद्धिर्न जायते ॥६२॥
 पाषाणोत्स्फुटितं तोयं घटीयंत्रेण ताडितं ।
 सद्यः सन्तप्तवापीनां प्रासुकं जलमुच्यते ॥ ६३ ॥
 देवर्षीणां प्रशौचाय स्नानाय च गृहार्थिनां ।
 अप्रासुकं परं वारि महातीर्थजमप्यदः ॥ ६४ ॥

सर्वमेव विधिजैर्न प्रमाण लौकिकं सतां ।
 यत्र न घटहानि स्यात्सम्यक्त्वस्य च सुंढनं ॥६५॥
 चर्मपात्रगतं तोयं घृततैलं च वर्जयेत् ।
 नखनीतं प्रघ्नादिश्लाफं नाघात् कदाचन ॥६६॥
 यो नित्यं पठति भीमान् रत्नमालामिमां परां ।
 स शुद्धभावनो नूनं शिवकोटिस्वमाप्नुयात् ॥६७॥

इति भीसमस्तमद्रस्यामिशिष्याशिवकोट्याचार्य्यधिरचिता
 रत्नमासा समाप्ता ।

जम्बूताडिदि रत्नमासा चेति प्रसङ्गं केचिदप्येव सम्पादितं अथवाः त्रेषु
 पुस्तिकेषु एव संप्राप्ता सा च बसरा-मधराख्या अतीव कष्टज्ञा अतोऽत्र विषये
 वा कष्टज्ञः संवाता भवन्ति तासु विषये कष्टम्योऽर्थः ।

श्रीमाधनन्दियोगीन्द्र-विरचितः

शास्त्रसारसमुच्चयः ।



श्रीमन्नम्रामरस्तोमं प्राप्तानन्तचतुष्टयम् ।

नत्वा जिनाधिपं वक्ष्ये शास्त्रसारसमुच्चयम् ॥ १ ॥

अथ त्रिविधः कालो द्विविधः षड्विधो वा ॥ १ ॥

दशविधाः कल्पद्रुमाः ॥ २ ॥ चतुर्दश कुलङ्करा इति ॥ ३ ॥

षोडशभावनाः ॥ ४ ॥ चतुर्विंशतितीर्थकराः ॥ ५ ॥ चतु-

स्त्रिंशदतिशयाः ॥ ६ ॥ पंच महाकल्याणानि ॥ ७ ॥ घाति-

चतुष्टयम् ॥ ८ ॥ अष्टादश दोषाः ॥ ९ ॥ समवशरणैकाद-

शभूमयः ॥ १० ॥ द्वादशगणाः ॥ ११ ॥ अष्टमहाप्रातिहार्याणि

॥ १२ ॥ अनन्तचतुष्टयमिति ॥ १३ ॥ द्वादशचक्रवर्तिनः ॥ १४ ॥

सप्ताङ्गानि ॥ १५ ॥ चतुर्दशरत्नानि ॥ १६ ॥ नवनिधयः ॥ १७ ॥

दशाङ्गभोगा इति ॥ १८ ॥ नवबलदेववासुदेवनारदाश्चेति

॥ १९ ॥ एकादशरुद्राः ॥ २० ॥

इति शास्त्रसारसमुच्चये प्रथमोऽध्याय ॥ १ ॥

अथ त्रिविधो लोकः ॥ १ ॥ सप्तनरकाः ॥ २ ॥ एकान्न-
पंचाशत्पटलानि ॥ ३ ॥ इन्द्रकाणि च ॥ ४ ॥ चतुरुत्तरपटच्छ-
तनवसहस्रं श्रेणिवद्धानि ॥ ५ ॥ सप्तचत्वारिंशदुत्तरत्रिंशताधिक-
नवतिसहस्रालंकृतत्र्यशीतिलक्षं विलानि प्रकीर्णकानि ॥ ६ ॥ एवं
चतुरशीतिलक्षविलानि ॥ ७ ॥ चतुर्विधं दुःखमिति ॥ ८ ॥ जम्बूद्वीप-

लवणसमुद्रादयोऽसंख्यातद्वीपसमुद्राः ॥९॥ तत्रार्धतृतीयद्वीपसमुद्रो
 मनुष्यक्षेत्रम् ॥१०॥ पण्णवतिकुमोगभूमय ॥११॥ पंचमन्दरगिरयः
 ॥१२॥ जम्बूद्वीपा ॥१३॥ आत्मलम्बा ॥१४॥ विश्वतिर्यमकगिरयम्
 ॥१५॥ शतं सरांसि ॥१६॥ सहस्रं कनकाचलाः ॥१७॥ अश्वारि
 श्वदिग्गजनगा ॥ १८ ॥ शतं वक्षारस्माधरा ॥ १९ ॥ पष्टि
 विमगनद्यः ॥ २० ॥ पष्ट्युत्तरशतं विदेहवनपदा ॥ २१ ॥
 पंचदशकर्मभूमयः ॥ २२ ॥ त्रिंशद्भोगभूमय ॥ २३ ॥ षट्
 त्रिंशद्दर्पधरपर्वता ॥ २४ ॥ त्रिंशत्सरोवरा ॥ २५ ॥ सप्तति
 र्महानद्यः ॥ २६ ॥ विश्वतिर्नामिभूधरा ॥ २७ ॥ सप्तत्यधिक-
 शतं विश्वार्धपर्वताः ॥२८॥ वृषभगिरयश्चेति ॥२९॥ देवाश्चतु
 र्णिकायाः ॥३०॥ मयनवासिनो दशविधा ॥३१॥ अष्टविधा
 ध्यन्तरा ॥३२॥ पचविधा ज्योतिष्का ॥ ३३ ॥ द्वादशविधा
 वैमानिका ॥३४॥ पञ्चदशस्वर्गा ॥३५॥ नवग्रहैयकाः ॥३६॥
 नवानुदिशा ॥३७॥ पञ्चानुचरा ॥३८॥ त्रिपष्टिपटलानि ॥३९॥
 इन्द्रकापि ष ॥४०॥ पञ्चशोचराष्टशतान्वितसप्तसहस्रं भेजिष
 दानि ॥४१॥ पद्मचत्वारिंशदुत्तरैकशतानीतनवत्यक्षीतिसहस्रा-
 रुत्तरचतुरशीतिलक्ष प्रकीर्णकानि ॥४२॥ त्रयोविंशत्युत्तरसप्त-
 नशतिसहस्रान्वितचतुरशीतिलक्षमवं विमानानि ॥४३॥ ब्रह्मलो
 कालयाश्चतुर्विंशतिलाकान्तिकाः ॥४४॥ अणिमाद्यष्टगुणाः ॥४५॥

इति शास्त्रसारसमुच्चये द्वितीयेऽध्याये ॥९॥

अथ पंचलम्बय ॥१॥ करणं त्रिविधं ॥२॥ सम्यक्त्वं द्वि
 विधम् ॥३॥ त्रिविधम् ॥४॥ दशविधं वा ॥५॥ तत्र वेदकठ

म्यक्त्वस्य पंचविंशतिर्मलानि ॥६॥ अष्टाङ्गानि ॥७॥ अष्टगुणाः ॥८॥ पंचातिचारा इति ॥९॥ एकादशनिलयाः ॥१०॥ त्रिविधो निर्वेगः ॥११॥ सप्त व्यसनानि ॥ १२ ॥ शल्यत्रयम् ॥ १३ ॥ अष्टौ मूलगुणाः ॥१४॥ पंचाणुव्रतानि ॥१५॥ त्रीणि गुणव्रतानि ॥१६॥ शिक्षाव्रतानि चत्वारि ॥१७॥ व्रतशीलेषु पंच पंचातीचाराः ॥१८॥ मौनसमयाः सप्त ॥१९॥ अन्तरायाणि च ॥२०॥ श्रावकधर्म-
श्चतुर्विधः ॥ २१ ॥ जैनाश्रमश्च ॥ २२ ॥ तत्र ब्रह्मचारिणः पंच-
विधाः ॥ २३ ॥ आर्यकर्माणि षट् ॥ २४ ॥ इज्या दशविधाः ॥२५॥ अर्थोपार्जनकर्माणि षट् ॥२६॥ दत्तिश्चतुर्विधा ॥२७॥ क्षत्रियो द्विविधः ॥२८॥ मिश्रश्चतुर्विधः ॥२९॥ मुनयस्त्रिविधाः ॥३०॥ ऋषयश्चतुर्विधाः ॥ ३१ ॥ राजर्षयो द्विविधाः ॥ ३२ ॥ ब्रह्मर्षयश्च ॥३३॥ मरणं द्वित्रिचतुःपंचविधं वा ॥ ३४ ॥ तस्यै पंचातिचारा इति^१ ॥ ३५ ॥ द्वादशानुप्रेक्ष्यः ॥ ३६ ॥ यतिधर्मो दशविधः ॥३७॥ अष्टाविंशतिर्मूलगुणाः ॥ ३८ ॥ पंचमहाव्रत-
स्थैयार्थं भावनाः पंच पंच ॥ ३९ ॥ तिस्रो गुप्तयः ॥ ४० ॥ अष्टौ प्रवचनमातृकाः ॥४१॥ द्वाविंशतिपरीपहाः ॥४२॥ द्वाद-
शविधं तपः ॥४३॥ दशविधानि प्रायश्चित्तानि ॥ ४४ ॥ आलो-
चनं च ॥ ४५ ॥ चतुर्विधो विनयः ॥ ४६ ॥ दशविधानि वैयावृत्यानि ॥ ४७ ॥ पंचविधः स्वाध्यायः ॥ ४८ ॥ द्विविधो व्युत्सर्गः ॥ ४९ ॥ ध्यानं चतुर्विधम् ॥ ५० ॥ आर्त्त-

१ मौन सप्तस्थानमिति पाठान्तरं क्वचित् । २ अन्तरायाश्चेत्यपि क्वचित्पाठ ।
३-४ सूत्रद्वयं कर्णाटवृत्तावेव । ५-६ इमौ शब्दौ कर्णाटटीकाया न स्त । ७
गुप्तित्रयमिति सूत्रं टीकाया । ८-९ सूत्रद्वयं टीकायामेव ।

॥ २७ ॥ द्विविधमेकेन्द्रियम् ॥ २८ ॥ त्रीणि विकलेन्द्रियाणि
 ॥ २९ ॥ पंचेन्द्रियं द्विविधम् ॥ ३० ॥ गतिश्चतुर्विधा ॥ ३१ ॥
 पंचेन्द्रियाणि ॥ ३२ ॥ पञ्जीवनिकायाः ॥ ३३ ॥ त्रिविधो योगः
 ॥ ३४ ॥ पंचदशविधो वा ॥ ३५ ॥ नवविधो वा ॥ ३६ ॥
 चत्वारः कपायाः ॥ ३७ ॥ अष्टौ ज्ञानानि ॥ ३८ ॥ सप्त संयमाः
 ॥ ३९ ॥ चत्वारि दर्शनानि ॥ ४० ॥ पञ्चेश्याः ॥ ४१ ॥ द्विविधं
 भव्यत्वं ॥ ४२ ॥ पञ्चिधा सम्यक्त्वमार्गणा ॥ ४३ ॥ द्विविधं
 संज्ञित्वम् ॥ ४४ ॥ आहार्युपयोगश्चेति ॥ ४५ ॥ पुद्गलाकाश-
 कालास्रवाश्च प्रत्येकं द्विविधम् ॥ ४६ ॥ बन्धहेतवः पंचविधाः
 ॥ ४७ ॥ बन्धश्चतुर्विधः ॥ ४८ ॥ अष्टौ कर्माणि ॥ ४९ ॥
 ज्ञानावरणीयं पंचविधम् ॥ ५० ॥ * दर्शनावरणीयं नवविधम्
 ॥ ५१ ॥ वेदनीयं द्विविधम् ॥ ५२ ॥ मोहनीयमष्टाविंशतिवि-
 धम् ॥ ५३ ॥ आयुश्चतुर्विधम् ॥ ५४ ॥ द्विचत्वारिंशद्विधं नाम
 ॥ ५५ ॥ द्विविधं गोत्रम् ॥ ५६ ॥ पंचविधमंतरायम् ॥ ५७ ॥ पुण्यं
 द्विविधं ॥ ५८ ॥ * पापं च ॥ ५९ ॥ संवरश्च ॥ ६० ॥ एकादश निर्जराः
 ॥ ६१ ॥ त्रिविधो मोक्षहेतुः ॥ ६२ ॥ द्विविधो मोक्षः ॥ ६३ ॥ द्वादश
 सिद्धस्थानद्वाराणि ॥ ६४ ॥ अष्टौ सिद्धगुणाः ॥ ६५ ॥

इति शास्त्रसारसमुच्चये चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

श्रीमांघनन्दियोगीन्द्रः सिद्धाम्बोधिचन्द्रमाः ।

अचीकरद्विचित्रार्थं शास्त्रसारसमुच्चयम् ॥ १ ॥

इति शास्त्रसारसमुच्चयः ।

*एतच्चिन्हमध्यगत पाठ टीकायामधिकभूतेन मूले एव भवितव्यम् । १ सिद्ध-
 स्थानुयोगद्वाराणीति टीकापाठ । २इय प्रशस्तिका दौर्बलिजनद मशास्त्रिणः पुस्तके ।

श्रीप्रमाचन्द्रविरचितं
अर्हतप्रवचनम् ।



उत्तं अराचरं येन वेधल्लानघधुपा ।
प्रमथन्य महाधीरं वेदफान्त प्रचस्यते ॥ १ ॥

अथाऽतोऽर्हतप्रवचनं सूत्रं व्याख्यात्वामः । तद्यथा,—

तत्रेमे पट्टीवनिकायाः ॥१॥ पंच महाव्रतानि ॥२॥ पचाणु
व्रतानि ॥३॥ त्रीणि गुणव्रतानि ॥४॥ चत्वारि शिक्षाव्रतानि
॥५॥ तिस्रो गुणयः ॥६॥ पच समित्तयः ॥७॥ दश धर्मानुमा
वना ॥८॥ षोडशमावनाः ॥९॥ द्वादशानुप्रेक्षा ॥१०॥ द्वाविं-
शतिपरीपहाः ॥११॥

इत्यर्हतप्रवचने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

तत्र नव पदार्या ॥ १ ॥ सप्त तत्त्वानि ॥ २ ॥ चतुर्विधो
न्यासः ॥ ३ ॥ सप्त नयाः ॥ ४ ॥ चत्वारि प्रमाणानि ॥ ५ ॥
पद् द्रव्याणि ॥६॥ पंचास्तिकाया ॥७॥ द्विविधो गुणः ॥८॥
पंच ज्ञानानि ॥ ९ ॥ त्रीण्यज्ञानानि ॥ १० ॥ चत्वारि दर्श
नानि ॥११॥ द्वादशाङ्गानि ॥१२॥ चतुर्दश पूर्वाणि ॥ १३ ॥
द्विविधं तप ॥१४॥ द्वादश प्रायश्चित्तानि ॥ १५ ॥ चतुर्विधो
विनय ॥१६॥ दश धैयावृत्यानि ॥१७॥ पचविध स्थाध्यायः
॥ १८ ॥ चत्वारि ध्यानानि ॥१९॥ द्विविधो म्युत्सर्ग ॥२०॥

इत्यर्हतप्रवचने द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

त्रिविधः कालः ॥१॥ षड्विधः कालसमयः ॥२॥ त्रिविधो
 लोकः ॥३॥ अर्धतृतीया द्वीपसमुद्राः ॥ ४ ॥ पंचदश क्षेत्राणि
 ॥५॥ चतुस्त्रिंशद्वर्षधरपर्वताः ॥६॥ पंचदश कर्मभूमयः ॥७॥
 त्रिंशद्भोगभूमयः ॥८॥ सप्ताऽधोभूमयः ॥९॥ सप्तेव महानरकाः
 ॥१०॥ चतुर्दश कुलकराः ॥११॥ चतुर्विंशतितीर्थकराः ॥१२॥
 नव बलदेवाः ॥१३॥ नव वासुदेवाः ॥१४॥ नव प्रतिवासुदेवाः
 ॥१५॥ एकादश रुद्राः ॥१६॥ द्वादश चक्रवर्तिनः ॥ १७॥ नव
 निधयः ॥१८॥ चतुर्दश रत्नानि ॥१९॥ द्विविधाः पुद्गलाः ॥२०॥

इत्यर्हत्प्रवचने तृतीयोऽध्याय ॥ ३ ॥

देवाश्चतुर्णिकायाः ॥१॥ भवनवासिनो दशविधाः ॥२॥ व्यन्तरा
 अष्टविधाः ॥३॥ ज्योतिष्काः पंचविधा ॥४॥ द्विविधा वैमा-
 निका. ॥५॥ द्विविधा कल्पस्थिति ॥६॥ अहमिन्द्राश्चेति ॥७॥ पंच
 जीवगतय ॥८॥ षट् पुद्गलगतय ॥९॥ अष्टविध आत्मसद्भावः
 ॥१०॥ पंचविधं शरीरम् ॥१५॥ अष्टगुणा ऋद्धिः ॥१२॥ पंचे-
 न्द्रियाणि ॥ १३ ॥ षड्भुक्त्वा. ॥ १४ ॥ द्विविधं शीलम् ॥ १५ ॥

इत्यर्हत्प्रवचने चतुर्थोऽध्याय ॥ ४ ॥

त्रिविधो योग ॥१॥ चत्वारः कषाया ॥ २ ॥ त्रयो दोषाः
 ॥३॥ पंचास्रवा ॥४॥ त्रिविध संवर ॥५॥ द्विविधा निर्जरा ॥६॥
 पंच लब्धयः ॥७॥ चतुर्विधो बन्ध ॥८॥ पंचविधा बन्धहेतवः

॥९॥ अष्टौ कर्माणि ॥१०॥ द्विविधो मोक्ष ॥११॥ चत्वारो
 मोक्षहेतव ॥१२॥ त्रिविधो मोक्षमार्ग ॥१३॥ पञ्चविधा नि
 र्ग्रन्था ॥१४॥ द्वादश सिद्धस्यानुयोगद्वाराणि ॥ १५ ॥ अष्टौ
 सिद्धगुणा ॥१६॥ द्विविधा सिद्धा ॥ १७ ॥ वैराग्यं चेति
 १८॥

इत्यहंत्प्रवचने पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

आप्तस्वरूपम् ।



आप्तागमः प्रमाणं स्याद्यथावद्वस्तुसूचकः ।
यस्तु दोषैर्विनिर्मुक्तः सोऽयमाप्तो निरञ्जनः ॥१॥
दोषावरणमुक्तात्मा कृत्स्नं वेत्ति यथास्थितम् ।
सोऽर्हस्तत्वागमं वक्तुं यो मुक्तोऽनृतकारणैः ॥२॥
आगमो ह्याप्तवचनमाप्तं दोषक्षयं विदुः ।
त्यक्तदोषोऽनृतं वाक्यं न ब्रूयादित्यसम्भवात् ॥३॥
रागाद्वा द्वेषमोहाद्वा वाक्यमुच्यते ह्यनृतम् ।
यस्य तु नैव च दोषास्तस्यानृतकारणं नास्ति ? ॥४॥
पूर्वापरविरुद्धादेर्व्यपेतो दोषसंहतेः ।
द्योतकः सर्वभावानामाप्तव्याहृतिरागमः ॥५॥
ध्यानानलप्रतापेन दग्धे मोहेन्धने सति ।
शेषदोषास्ततो ध्वस्ता योगी निष्कल्मषायते ॥६॥
मोहकर्मरिपौ नष्टे सर्वे दोषाश्च विद्रुताः ।
छिन्नमूलतरोर्यद्वद् ध्वस्तं सैन्यमराजवत् ॥७॥
नष्टं छद्मस्थविज्ञानं नष्टं केशादिवर्धनम् ।
नष्टं देहमलं कृत्स्नं नष्टे घातिचतुष्टये ॥८॥
नष्टं मर्यादविज्ञानं नष्टं मानसगोचरम् ।
नष्टं कर्ममलं दुष्टं नष्टो वर्णात्मको ध्वनिः ॥९॥

नष्टा क्षुभृद्दमयस्वेदा नष्टं प्रत्येकबोधनम् ।
 नष्टं भूमिगतस्पर्शं नष्टं चेन्द्रियजं सुखम् ॥१०॥
 नष्टा सर्वहृत्वा छाया नष्टा चेन्द्रियज्ञा प्रमा ।
 नष्टा मूर्धप्रमा तत्र सूतज्जन्तचतुष्टये ॥११॥
 तदा स्फटिकसंकाशं तेजोमूर्तिमयं षण् ।
 जायते क्षीणदोषस्य सप्तधातुविवर्जितम् ॥१२॥
 मफलप्राहकं ज्ञानं युगपद्दर्शनं तदा ।
 अव्यावाहसुखं वीर्यं एतदाप्तस्य लक्षण ॥१३॥
 त्रैलोक्यक्षोमका ज्ञेयं जन्ममृत्युजरादयः ।
 ध्वस्ता ध्यानाग्निना येन स आप्तः परिपठ्यते ॥१४॥
 क्षुधा तृषा मय द्रोपो रागो मोहश्च चिन्तनम् ।
 ब्रजा रजा च मृत्युश्च स्वेदः खेदो मदो रतिः ॥१५॥
 विस्मयो अननं निद्रा विषादोऽष्टादश क्षुधा ।
 त्रिजगत्सर्वभूतानां दोषाः साधारणा इमे ॥१६॥

पुण्यम् ।

एतदोपैर्विनिर्मुक्तः सोऽप्यमाप्तो निर्गञ्जनः ।
 विद्यन्ते येषु ते निरयं तेषु संसारिणः स्मृता ॥१७॥
 संसारो मोहनीयस्तु प्रोच्यतेऽत्र मनीषिभिः ।
 संसारिभ्यः परो ज्ञात्मा परमाग्नेति भाषितः ॥१८॥
 सर्वज्ञः सर्वतो भद्रः सर्वदम्बदनो विद्मः ।
 सर्वमापः सदा वन्द्यः सर्वसौख्यात्मको जिनः ॥१९॥
 अहन् त्रैलोक्यसाम्राज्यं अहन् पूजां सुरेक्षिणाम् ।
 इत्यहन् कर्मसम्पूर्तं अहन्नामा ततः स्मृतः ॥ २० ॥

रागद्वेषादयो येन जिताः कर्ममहाभटाः ।
 कालचक्रविनिर्मुक्तः स जिनः परिकीर्तितः ॥ २१ ॥
 स स्वयम्भूः स्वयं भूतं सज्ज्ञानं यस्य केवलं ।
 विश्वस्य ग्राहकं नित्यं युगपद्दर्शनं तदा ॥ २२ ॥
 येनाप्तं परमैश्वर्यं परानन्दसुखास्पदम् ।
 बोधरूपं कृतार्थोऽसावीश्वरः पटुमिः स्मृतः ॥ २३ ॥
 शिवं परमकल्याणं निर्वाणं शान्तमक्षयं ।
 प्राप्तं मुक्तिपदं येन स जिवः परिकीर्तितः ॥ २४ ॥
 जन्ममृत्युजराख्यानि पुराणि ध्यानवन्धिना ।
 दग्धानि येन देवेन तं नौमि त्रिपुरान्तकम् ॥ २५ ॥
 महामोहादयो दोषा ध्वस्ता येन यदृच्छया ।
 महाभवार्षवोत्तीर्णे महादेवः स कीर्तितः ॥ २६ ॥
 महत्वादीश्वरत्वाच्च यो महेश्वरतां गतः ।
 त्रैधातुकविनिर्मुक्तस्तं वन्दे परमेश्वरम् ॥ २७ ॥
 तृतीयज्ञाननेत्रेण त्रैलोक्यं दर्पणायते ।
 यस्यानवद्यचेष्टायां स त्रिलोचन उच्यते ॥ २८ ॥
 येन दुःखार्णवे घोरे मग्नानां प्राणिनां दया- ।
 सौख्यमूलः कृतो धर्मः शकरः परिकीर्तितः ॥ २९ ॥
 रौद्राणि कर्मजालानि शुक्लध्यानोग्रवन्धिना ।
 दग्धानि येन रुद्रेण तं तु रुद्रं नमाम्यहम् ॥ ३० ॥
 विश्वं हि द्रव्यपर्यायं विश्वं त्रैलोक्यगोचरम् ।
 व्याप्तं ज्ञानत्विपा येन स विष्णुर्व्यापको जगत् ॥ ३१ ॥

वासवाद्यै सुरैः सर्वै योज्येत मेरुमस्तके ।
 प्राप्तवान् पंचकल्पार्थं वासुदेवस्ततो हि स ॥३२॥
 अनन्तदर्शनं ज्ञानं कर्मरिष्यकारणम् ।
 यस्यानन्तसुखं वीर्यं सोऽनन्तोऽनन्तसद्गुणः ॥३३॥
 सर्वोत्तमगुणैर्युक्तं प्राप्तं सर्वोत्तमं पदम् ।
 सर्वभूतहितो यस्मात्तेनासौ पुण्योत्तमः ॥३४॥
 प्राग्भिनां हितवेदोक्तं ? नैष्ठिकं सङ्गवर्जितः ।
 सर्वमापन्नतुर्वन्त्रो ब्रह्मासौ कामवर्जितः ॥३५॥
 यस्य वाक्यामृत पीत्वा भव्या मुक्तिमुपागताः ।
 दत्तं येनामयं दानं सत्वानां स पितामहः ॥३६॥
 यस्य पण्यवमास्तानि रत्नवृष्टिं प्रवारिता ।
 शक्रेण भक्तिपुक्तेन रत्नगमस्ततो हि स ॥३७॥
 मतिभ्रुताबधिज्ञानं सद्द्वयं यस्य बोधनम् ।
 मोक्षमार्गं स्वयं बुद्धस्तेनासौ बुद्धसंज्ञितः ॥३८॥
 केवलज्ञानबोधेन बुद्धवान् स भगवत्प्रथमः ।
 अनन्तज्ञानसंकीर्णं सं तु बुद्धं नमाम्यहम् ॥३९॥
 स्वार्थमापया सम्भक्त् सर्वलेशप्रघातिनाम् ।
 सत्वानां बोधको यस्तु बोधिसत्वस्ततो हि स ॥४०॥
 सर्वद्वन्द्वविनिर्द्वक्तं स्वानमात्मस्वमाषजम् ।
 प्राप्तं परमनिवारणं येनासौ सुगतः स्मृतः ॥४१॥
 सुप्रभार्यं सदा यस्य केवलज्ञानरश्मिना ।
 लोकालोकाप्रकण्ठेन सोऽस्तु मन्पदिवाकरः ॥४२॥

जन्ममृत्युजरारोगाः प्रदग्धा ध्यानवन्हिना ।
यस्यात्मज्योतिषां राशेः सोऽस्तु वैश्वानरः स्फुटम् ॥४३॥
एवमन्वर्थनामानि सर्वज्ञं सर्वलोचनम् ।
ईडितेनैव ? नामानि वेधोऽन्यत्र विचक्षणैः ॥४४॥
अर्हन् प्रजापतिर्बुद्धः परमेष्ठी जिनो जितः ।
लक्ष्मीभर्ता चतुर्वक्त्रो केवलज्ञानलोचनः ॥४५॥
अम्भोजनिलयो ब्रह्मा विष्णुरीशो वृषध्वजः ।
आतपत्रत्रयोद्भासी शंकरो नरकान्तकः ॥ ४६ ॥
निर्मलो निष्कलश्चैव विधाता धर्म एव च ।
परमपापनाशश्च परमज्योतिरव्ययम् ॥ ४७ ॥
योगीश्वरो महायोगी लोकनाथो भवान्तकः ।
विश्वचक्षुर्विभुः शम्भुर्जगच्छिखरिशेखरः ॥ ४८ ॥
लोकाग्रशिखरावासी सर्वलोकशरण्यकः ।
सर्वदेवाधिको देवो ह्यष्टमूर्तिर्दयाध्वजः ॥ ४९ ॥
सद्यो जातो महादेवो देवदेवः सनातनः ।
हिरण्यगभः सर्वात्मा पूतः पुण्यः पुनर्भवः ॥ ५० ॥
रत्नसिंहासनाध्यासी नैकचामरवीजितः ।
महामतिर्महातेजोऽकर्मा जन्मदवान्तकः ॥ ५१ ॥
अच्युतः सुगतो ब्रह्मा लोकान्तो लोकभूषणः ।
देवदुन्दुभिनिर्घोषः सर्वज्ञः सर्वलोचनः ॥ ५२ ॥
अच्छेद्योऽनवभेद्यश्च सूक्ष्मो नित्यो निरञ्जनः ।
अजरो ह्यमरश्चैव शुद्धसिद्धो निरामयः ॥ ५३ ॥

अथयो ह्यव्ययः ध्वान्त ध्वान्तिकल्याणकारकः ।
 मयंमूर्विश्वदधा च कुशल पुरुषोत्तम ॥ ५४ ॥
 नामाटकसहस्रेण युक्त मोक्षपुरेश्वरं ।
 ध्यावेत् परमात्मानं मोक्षसौख्यप्रदायकम् ॥ ५५ ॥
 श्रुद्धस्फटिकसंकाश स्फुरन्त ज्ञानतजसा ।
 गणैर्द्वादशभियुक्तं ध्यायदर्हन्तमक्षयम् ॥ ५६ ॥
 सिंहासनसितच्छत्रचामरादिविभूतिभिः ।
 युक्तं मोक्षपुरं देवं ध्यायेन्नित्यमनाकुलम् ॥ ५७ ॥
 कल्याणातिशयैराढ्यो नवकेवललम्बिमान् ।
 समस्थितो निनो देवः प्राप्तिहासपति स्मृत ॥ ५८ ॥
 सर्वज्ञ सर्वदृक् सार्वो निर्मलो निष्कलोऽव्ययः ।
 वीतराग पराध्येयो योगिनां योगगोचर ॥ ५९ ॥
 सर्वलक्षणसम्पूर्णं निर्मले मणिदर्पणे ।
 संक्रान्तविम्बसादृश्यं शान्तं संशेतयेऽद्भुतम् ॥ ६० ॥
 येन जितं भवकारणसर्वं
 मोहमलं कलिकाममलं च ।
 येन हृतं भवमोक्षसुतीर्थं
 सोऽस्तु सुखाकरतीर्थसुकर्ता ॥ ६१ ॥
 क्षीणधिरन्तनकर्मसमूहो
 निष्ठितयोगसमस्तकलाप ।
 कोमलदिव्यशरीरसुमाम
 सिद्धिगुणाकरसौम्यनिधिषु ॥ ६२ ॥

निष्कलबोधविशुद्धसुदृष्टिः

पश्यति लोकविभावस्वभावम् ।

सूक्ष्मनिरञ्जनजीवपुनोऽसौ

तं प्रणमामि सदा परमाप्तम् ॥ ६३ ॥

क्षपितदुरितपक्षक्षीणनिःशेषदोषो

भवमरणविमुक्तः केवलज्ञानभानुः ।

परहृदयमतार्थग्राहकज्ञानकर्ता

ह्यमलवचनवक्ता भव्यग्रन्धुर्जिनाप्तः ॥ ६४ ॥

इतिश्री-आप्तस्वरूप समाप्तम् ।

श्रीपोमरानसुतभीवादिराजप्रणीतं
ज्ञानलोचनस्तोत्रम् ।

ज्ञानस्य विभाम्यति तारतम्य
परप्रकृपादतिशायनाम् ।
यस्मिन्न दोषावरणे तुलावद्
दृष्टेष्टश्लिष्टोक्तनयप्रकाशे ॥ १ ॥
ध्यात्वा च यं ध्यायति नैति नुत्वा
नत्वा नमत्यत्र परं न लोक ।
भुक्त्वाऽऽगमान् यस्य शृणोति नान्पाम्
श्रीपार्श्वनाथं तमहं स्तवीमि ॥ २ ॥
युगम् ।

तृणाय मत्वाखिललोकराज्यं
निर्वेदमाप्तोऽसि विशुद्धमावै ।
ध्यानैकत्वानेन च चेतसाम्
कैवल्यमासाद्य जिनेष्ठ ! मुक्तः ॥ ३ ॥
धरं यथेष्टं हृष्टुतेऽत्र वर्षाऽ
मिश्रं राजन्यकमाशु विश्वम् ।
गुरुं च बुद्धं कपिलं हराक्षीं
स्तया शिवश्री सततं भवेत्तम् ॥ ४ ॥
परै प्रणीतानि कृष्णासनानि
दुरंतसंसारनिबन्धनानि ।
स्वया तु तान्येव कृतानि संति
वीक्षणानि भर्माभि यथा प्रयोगात् ॥५॥

दाता न पाता न च धामधाता
 कर्त्ता न हर्त्ता जगतो न भर्त्ता ।
 दृश्यो न वश्यो न गुणागुणज्ञो
 ध्येयः कथं केन स लक्ष्मणा त्वम् ॥ ६ ॥
 दत्से कथं चेद्दृगिनस्त्वमिष्टं
 चिंतामणिर्वा भविनां सुभावात् ।
 मतं यदीत्थं तव सेवया किं
 स्वभाववादो ह्यवितर्क्य एव ॥ ७ ॥
 संसारकूपं पतितान् सुजंतून्
 यो धर्मरञ्जुर्दुरणेन मुक्तिम् ।
 नयत्यनंतावगमादिरूप-
 स्तस्मै स्वभावाय नमो नमस्तात् ॥ ८ ॥
 रणत्यमोघं सकलो जनस्त्वां
 विव्वोकवृंदैरजितं सदा हि ।
 पद्मालयापूजितपादयुग्मं
 चित्तानवस्थाहरणं परार्थ्यम् ॥ ९ ॥
 णमो सन्वोसहिपत्ताण ।

भणत्यमोघं सकलक्रियोध-
 मबोधतो देहिगणो न सिद्धयै ।
 तथा जिनोक्तेरमला गुणास्ते
 ग्रीणंति भव्यानिह पंचभाद्रैः ॥ १० ॥
 णमो सन्वोसहिजिणाण ।

स्थितोऽयमात्मा षण्णुपि स्थितोऽञ्छः

स्यात्कश्चर कर्मफलकर्मकै ।

हेमाश्मवस्वद्भदितस्तपोमि

निर्णीक्तं तं त्वं जिन ! मुक्तिदोऽयः ॥ ११ ॥

अमित्रमित्रास्त्रविषद्वेमान

द्वेषानुरागा परमात्ममूढा ।

हिंसापकारान्यकलत्रसक्ता

ध्यामोहमार्ष न कथं लभते ॥ १२ ॥

तव स्तुतेरीश ! रसं रमन्ना

जानाति या तच्छ्रवणाञ्जुति सा ।

तदुत्तमांगं पदयोर्न तं यद्

ध्यायेच्च धीस्त्वां मनुषं मनस्तत् ॥ १३ ॥

छन्नोऽजिनेनाप्रसवोऽस्त्यमूजो

मेघैर्गतो बुद्धिमिहाज्ञतायैः ।

आत्मा द्विप्रभेच्छिस्त्ररस्य जल्पे

स्वप्नोत्रमंत्रं न तदाऽस्य भद्रम् ॥ १४ ॥

प्राणी विवर्त्तातुरस सुखीह

किन्मन्यचित्तामिरितीव बुद्ध्या ।

इभ्यं च निःस्वं मरुजं रुज्जोर्न

मन समाश्रयमतस्त्वदुक्त्या ॥ १५ ॥

हित्वांगनापद्वतिमप शास्त्री

स्फुटं सदेशं मन्वतोऽस्त्यद्योक्त ।

निरीक्ष्य निर्विण्णमिनं विरागोऽ-

भवत्स्वयं भृत्यगतिर्हि सैषा ॥ १६ ॥

खोदापतंती सुमनस्ततिः प्रा-

गस्यै जिनं यष्टुमसूययेव ।

त्वया जितेनावपुपेव हीना

निजेषु पंक्तिर्भवतः सभार्याम् ॥ १७ ॥

ध्वनिर्ध्वनत्यक्रमवर्णरूपो

नानास्वभावो भुवि वृष्टिवत्ते ।

त्वत्तो न देवैरयमक्षरात्मा

जयत्ययं मेचकवज्जगत्याम् ॥ १८ ॥

प्रकीर्णकौघा मुनिराजहंसा

जिनं नमंतीव मुहुर्मुहुस्त्वाम् ।

चलक्ष्लेश्यातनया इवामी

बोधाब्धिफेनाः शिवभीरुहासाः ॥ १९ ॥

पीठत्रयं ते व्यवहारनाम

छत्रत्रयं निश्चयनामधेयम् ।

रत्नत्रयं दर्शयतीव मार्गं

मुक्तेस्त्वदंघ्रीक्षणतः क्षणेन ॥ २० ॥

भामंडले मारकतोपलाभे

निमग्नकायाश्च चतुर्णिकायाः ।

स्नांतीव तीर्थे परमागमाख्ये

देदीप्यमाने स्वदयारसेन ॥ २१ ॥

घातीनि कर्माणि जितान्पनेन
 काल समागच्छति नो समीपम् ।
 इत्थं मुहुर्जापयतीव लोफान्
 दध्वन्पते दुन्दुभिरंतरिक्षे ॥ २२ ॥
 सुदादयोऽनंतमुखोदयाचेऽ-
 किंचित्करा घातिविघातनाम् ।
 सत्तोदयाम्यामविघातिनां किं
 तोतुद्यतेऽगं विविपाहिवचे ॥ २३ ॥
 नास्नासि पश्यन् जिन ! नारकादीन्
 इताननंतांश्च हनिष्यमाणान् ।
 चारित्र्यमंगात् स्वगतप्रसंगात्
 कल्पानि चात्रातिशयो हि कश्चित् ॥ २४ ॥
 लौकांतिकानां त्रिदिवातिगानां
 पुंस्त्वोदये सत्यपि नांगनार्ति ।
 तथा ह्यमातोदयतो न पीडा
 सामप्र्यमावाञ्च फलोदयस्ते ॥ २५ ॥
 योज्जीह श्रेत सवृष सदोषो
 मासुसते द्रष्टि विपीदतीश ! ।
 इत्ययमष्टादश संति दोषा
 यस्मिन्मसौ भूरिमवाञ्चिमारः ॥ २६ ॥
 अद्वैतवादापनिषेधकारी
 षकांतविश्रामाविलासहारी ।
 मीमांसकस्त्व तुगतो गुरुश्च
 द्विरभ्यगर्भ कपिलो जिनोऽपि ॥ २७ ॥

हठेन दुष्टेन शठेन वैरा-

दुपद्रुतस्त्वं कमटेन येन ।

नीलाचलो वा चलितो न योगात्

स एव पद्मापतिनात्तर्गवः ॥ २८ ॥

श्रुत्वाऽनुकंपांकनिधिं शरण्यं

विज्ञापयाम्येष भवार्दितस्त्वाम् ।

अशक्यतायास्तव सद्गुणानां

स्तुतिं विधातुं गणनातिगानाम् ॥ २९ ॥

कुदेववेशंतकदाप्तदास-

कुतत्वजाले भ्रमतो निपत्य ।

मिथ्यामिषं ग्लस्तमिदं भवाब्धा-

बुरो धृतं कौलिशगोलकं वा ॥ ३० ॥

अनाद्यविद्यामयमूर्च्छितांगं

कामोदरक्रोधहुताशतप्तम् ।

स्याद्वादपीयूषमहौषधेन त्रायस्व

मां मोहमहाहिदष्टम् ॥ ३१ ॥

हिंसाऽक्षमादिव्यसनप्रमाद-

कषायमिथ्यात्वक्कुबुद्धिपात्रम् ।

व्रतच्युतं मां गुणदर्शनीनं

पातुं क्षमः को भुवने विना त्वाम् ॥ ३२ ॥

पुरांचितं नो तव पादयुग्मं

मया त्रिशुद्ध्याऽखिलसौख्यदायि ।

परालयातिथ्यपरैषितत्व-

पात्रं हि गात्रं वरिषति मेऽथ ॥ ३३ ॥

क्रोधात्म्यहर्म्यसृष्टीतर्कटो

इतोस्मि मानाद्रिविचूर्जितांगः ।

मायाकुजायात्तमुकेऽप्यपाशो

लोमाहर्षकौषनिमप्रमूर्तिः ॥ ३४ ॥

वारुष्यबास्यात्पदशसु किञ्चि

त्कृतं मया नो सुकृतं कदापि ।

जानन्नपीत्यं तु तथैव वर्ये

जस्यच्छयात्तु करवापि किं वा ॥ ३५ ॥

दानं न तीर्थं न तपो अपन्न

नाध्यात्मप्रवृत्ता न च पूज्यपूजा ।

भ्रुतं भ्रुतं न स्वपरोपकारि

हा ! हारितं नाथ ! अनुनिर्घर्षम् ॥ ३६ ॥

भोगाग्ना भ्रातमल यद्दृश्या

धराधिपध्यानधरेण धाम्भ्याम् ।

अपास्य रुक्मं मयकारकूटं

गृहीतमज्ञानवशादधीश्वर ! ॥ ३७ ॥

पंचास्यनागीहयसिंधुदत्त्वा

रम्यश्वराच्यादिभवं मयं द्राक् ।

त्वद्गोत्रमंत्रस्मरणप्रमात्वा

न्मित्रोदयाद्घ्वातमिष प्रणश्येत् ॥ ३८ ॥

यतोऽरुचि संसृतिदेहभोगा

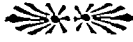
दनारतं मित्रकलत्रवर्गात् ।

आकृष्य चित्तं स्मरणात्त्वदीया-
 न्नयन्ति कर्माणि पदं तदेव ॥ ३९ ॥
 नाट्यं कृतं भूरिभवैरनंतं
 कालं मया नाथ ! विचित्रवेपैः ।
 हृष्टोऽसि दृष्ट्वा यदि देहि देयं
 तदन्यथा चेदिह तद्धि वार्यम् ॥ ४० ॥
 श्रद्धालुता मे यदनंगरंगे
 कृपालुताऽभून्मम पापवर्गे ।
 निद्रालुता शान्तरसप्रसंगे
 तंद्रालुताध्यात्मविचारमार्गे ॥ ४१ ॥
 भ्रांत्वा चिरं दैववशेन विन्ना
 त्वदुक्तिपूः साधुपदार्थगर्भा ।
 परैरगम्या नयरत्नशाला
 तस्यां कुतो दुःखमहो स्थितानाम् ॥ ४२ ॥
 हिताहितेऽर्थेऽथ हेतिहिता च ?
 चिदात्मनो धर्मविचारहीना ।
 अजात्तपीणीय ? मिवोद्वहंती
 मतिर्मदीया जिननाथ ! नष्टा ॥ ४३ ॥
 यद्यस्त्यनंतं त्वयि दर्शनं मे
 तदेव दत्तादणुमात्रमद्यं ।
 ज्ञानं सुखं वीर्यमतोऽधिकं चे-
 दद्यात्तदा को जिन ! दूरवर्त्ती ॥ ४४ ॥

हिरुक् सुषहिरिन्द्रिय न हि भवेभमस्वादिकं
 पृथक् उदय नो हृपो न तमृते सदर्यागमः ।
 इति प्रतिदिनं विभो ! चरणवीक्षणं कामये
 तत कुरु कृपानिषे ! सपदि लोचनानन्दनम् ॥४५॥
 स्तोत्रं कृतं परमदेवगुरुरूपसादा—
 ष्ठीपोमरानतनयेन सुषादिराजा ।
 सञ्ज्ञानलोचनमिदं पठत्वा मुदे स्तात्
 इगदोपहारि जगत परमोपकारि ॥४६॥

इति श्रीपोमराजतनययादिराजयिरचिते क्षानलोचनस्तोत्रम्
 अन्त्यामिमराजत ।

विष्णुसेनविरचितं
समवशरणस्तोत्रम् ।



आर्या ।

वृषभाद्यानभिवंद्यान् वंदित्वा वीरपश्चिमजिनैद्रान् ।
भक्त्या नतोत्तमांगः स्तोष्ये तत्समवशरणानि ॥१॥
भूम्या पंचसहस्रान् दंडानुत्क्रम्य समवशरणानाम् ।
जायंते गगनगताः सद्ब्रह्मैकेन्द्रनीलशिलाः ॥ २ ॥
द्वादशयोजनतस्ताः क्रमेण चार्द्धार्द्धयोजनन्यूनाः ।
तावद्यावन्नेमिश्चतुर्थभागोनिताः परतः ॥३॥
अवसर्पिण्यामेवं क्रमोऽन्यथोत्सर्पिणीक्रमो ज्ञेयः ।
आद्या विदेहजानां मतांतराद्विश्वतीर्थेशाम् ॥४॥
दिक्षु चतसृष्वपि भुजप्रमाणविंशतिसहस्रसोपानाः ।
एकादशभूमीकाः शीलचतुष्काश्च पंचवेदीकाः ॥५॥
प्रासादचैत्यखातीवल्ल्युपवनकेतवश्च कल्पतरुः ।
भवनं गणस्त्रिपीठान्याद्यादीन्यवनिनामानि ॥६॥
एकैकं जिनभवनं प्रासादान् पंच पंच चोच्छ्रिय ।
त्र्यस्राद्याः स्युर्वाप्यो वनखंडान्याद्यभूमितले ॥७॥
स्वच्छजलेनापूर्णं नानाविधजलचरैश्च संकीर्णम् ।
सोपानशोभिततटं प्रोत्फुल्लाब्जावृताखातम् ॥ ८ ॥
पुंनागनागकुब्जकवरशतपत्रातिमुक्तकाकलितो ।
सामरमिथुनलतालययुता तृतीयाऽवनी रम्या ॥९॥

पाषा ।

उषवणवाविश्लोष सिक्ता पिच्छति क्वमपजादि ।
तस्स पिरिक्कजमेत्ते सत्तमभातीवमाधिजादामो ॥ १ ॥ १

भावा ।

वनमूरश्लोकसप्तच्छदचपकचूतसद्वनैर्माति ।
क्रीडात्रिषैस्यतक्युकप्रदक्षिणस्यैभतुर्दिक्षु ॥ १० ॥
सिंहगजवृषभबहिंजमालांबरईसपद्यचक्रांकाः ।
गरुडैध्वेसाथ दशवेत्येकैकेव्यष्टतसंख्या ॥ ११ ॥
एतैभतुर्दिक्षास्यैभतुर्गुणैर्मुस्यकेतुमिर्माति ।
साष्टततेनामिहसैर्मुस्यैः शुद्धध्वजैभान्यै ॥ १२ ॥

षतुर्दिक्षु मुख्यध्वजसंख्या ४३२० । परिवारध्वजसंख्या ४६

४५६० । सर्वध्वजसंख्या ४७०८८० ।

सर्वेषां स्तंभानां कंद्रत्वमष्टीतिरेगुलान्यष्टौ ।

इष्यासनपंचकृतिस्त्वंतरमाघो तु हानिरपरेषु ॥ १३ ॥

मुख्यध्वजस्तंभानां कंद्रत्वमगुलानि ८८ । मुख्यध्वजस्तंभानां धनु २५ ।

हमांदालकश्लेष्मैर्दक्षविधकल्पैश्च सिद्धतकमिभैः ।

सुरभरनिकरसनायैश्चकास्ति कल्पद्रुमा वसुधा ॥ १४ ॥

अथशुभ्रं ।

मृदंगमृगरस्तांगा पानभोजनपुष्पदा ।

अपोतिरालयश्लांगा दीपार्मिर्दक्षिणा द्रुमा ॥ १५ ॥

आवाहयत् ।

सालत्रयमध्यस्थितपीठत्रयवर्तिषैस्यसिद्धतरु ।

जिनसिद्धप्रतिविधैरथ स्थितनिपण्णकर्मातः ॥ १६ ॥

नृत्यद्भिर्गायद्भिर्जिनाभिषकोद्यतैरशेषसुरैः ।

बहुधेद्वप्रासादा भवंति भवनावनौ रम्याः ॥ १७ ॥

स्फाटिकशालस्यांतर्लक्ष्मीवरमंडपे गणक्षमायाम् ।

द्वादश कोष्ठाः स्फाटिकषोडशगुरुमितिभिर्भान्ति ॥ १८ ॥

ऋषिकल्पजवनितार्याज्योतिर्वनभवनयुवतिभावनजाः ।

ज्योतिष्ककल्पदेवा नरतिर्यचो वसन्ति तेष्वनुपूर्वम् ॥ १९ ॥

वैदूर्योत्तमकांचनविलसद्वरसकलरत्नवर्णानि ।

अष्टचतुश्चतुरिष्वासोन्नतिमन्ति त्रिपीठानि ॥ २० ॥

प्रस्फुरितधर्मचक्रैर्यक्षपतिभिरुद्धृतैर्महाभक्त्या ।

चतुराशासु विराजति कृतार्चनं प्रथमपीठतलम् ॥ २१ ॥

अरिगजवृषहरिकमलांबरध्वजखगपतिपुष्पमालारख्यैः ।

विलसत्केतुभिरष्टभिरनुपमपूज्यं द्वितीयपीठतलम् ॥ २२ ॥

षट्शतरुद्रायामा साधिकनवशतधनुःसमुत्तुंगा ।

प्रथमे शेषेषूना गंधकुटी स्यात्तृतीयपीठतले ॥ २३ ॥

रुद्रत्व ६०० । उदयं ९०० ।

तन्मध्येस्थितसिंहासनमध्ये शोणमंबुजं रमणीयम् ।

दशशतदलसंयुक्त तन्मध्ये कनककर्णिकायामुपरि ॥२४॥

चतुरंगुलगगनतले निविष्टवान् विमलकेवलज्ञानी ।

लोकालोकविलोकी धर्माधर्मौ जिनो वक्ति ॥२५॥

प्रहतघनघातिदोषश्चतुरधिकत्रिंशदतिशयैश्वर्ययुतः ।

सोऽनंतचतुष्टयभाक्कोट्यादित्यप्रकाशसंकाशवपुः ॥ २६ ॥

क्षुत्तृड्भात्क्रुभागप्रमोहचिंता जरा रुजा मृत्युः ।

स्वेदः खेदमदोरतिविस्मयनिद्राजनूद्वेगः ॥२७॥

छत्रत्रयसिंहासनसुरदुंदुमिपुप्यदृष्टिमापाश्रीका ।
भावलयधामराप्पीत्यष्टमहाप्रातिहार्यविभवसमेतः ॥२८॥

उक्तं च,—

पुष्पके मज्जके भवरके मज्जिमाय रत्तीप ।
उच्छन्नघडियापिमायदिवग्मुष्णी कदह सुत्तये ॥ १ ॥

सारंभविश्रीवित्तवत् ।

गंभीरं मधुरं मनोहरतरं दौपैरपेतं हितं
कंठौष्ठादिवचोनिमित्तरहितं नो वातरोधोद्गतम् ।
स्पष्टं तप्तदमीएवस्तुकथकं नि श्लेषमापात्मकं
दूरासन्नसमं समं निरुपमं जैनं वचः पातु नः ॥२९॥
यत्सर्वात्महितं न वर्णसहितं न स्पंदितौष्ट्रयं
नो वांछाकलितं न दोषमलिनं न श्वासरुद्धक्रमम् ।
शस्तामर्षविपै समं पशुगणैराकर्णितं कर्मिभि-
स्तमः सर्षविदं प्रपद्यविपदः पायादपूर्वं वचः ॥३०॥

भावा ।

स्वस्वचतुर्विंशत्यो द्वयोश्चतुषु द्विताडितार्द्धं च ।
अर्द्धं त्रिभिर्द्वयष्टमभागाः पंचसु तथा परेर्द्धं च ॥३१॥
सालो वेदी वेदी मालो वेदी च .. सालो ।
वेदीत्यंतर्मवन्ति सर्वे बहिर्भागात् ॥३२॥
इंद्रचतुर्द्धेमे द्वे सुरक्तर्द्धेमे च हैमकार्जुनके ।
हैमी शार्कमयी मालो वेदी यथायोग्यम् ॥३३॥
चतुषु शतानि पंचाद्यो पंचाशदशैव पंचोनाः ।
अष्टसु पंचस्त्रष्टसु कर्म्य नव सप्त पार्श्वसन्मस्योः ॥३४॥

तीर्थकरोत्सेधो यथा ५००, ४५०, ४००, ३५०, ३००, २५०,
२००, १५०, १००, ९०, ८०, ७०, ६०, ५०, ४५, ४०,
३५, ३०, २५, २०, १५, १०, रत्नय ९, ७ ।

चतुराहतजिनदैर्घ्यं वेदीसालेषु मानमान्मातं ।

किञ्चित्साभ्यधिकं तत्तोरणतुंगत्वमुद्गतम् ॥३५॥

चर्याट्टालकभवनै. केतुभिराभांति वेदिकाः सालाः ।

मूला मूलात्क्रमपरिहान्या रहितेतरमूर्त्तयः क्रमशः ॥३६

हन्नो ? रजतस्य महाहरिन्मणिगणस्य गोपुरद्वारम् ।

एकं पट्ट च स्युर्द्वे नानामाणिक्यरचितानि ॥ ३७ ॥

ध्वजमानस्तंभाचलचैत्यग्रांसादगोपुरस्तूपाः ।

द्वादशगुणजिनदैर्घ्या मंडपसिद्धार्थचैत्यसदशोकाः ॥३८

क्रोशव्यासाः प्रथमे न्यूनाश्चावीरतश्चतुर्वीथ्याः ।

वहिरंतः सालांतरदैर्घ्योभयदिक्क ? स्फाटिका साला ॥३९॥

द्वारेषु त्रिषु दंडान् ज्योतिष्कान् विभ्रति द्वयोर्यक्षाः ।

नागास्तद्द्वितयस्था द्वयोश्च कल्पामराः प्रवराः ॥ ४० ॥

मध्ये गोपुरमंतर्वीथ्याः स्तंभो नभो द्विराभाति ।

नर्त्तनसालो शून्यं सालास्तूपा नभश्चरमम् ॥ ४१ ॥

मानस्तंभाश्चोपरि सालत्रयमध्यगत्रिपीठानाम् ।

कुंडाष्टकसंयुक्ताश्चतुर्हृदाः संति चतुराशम् ॥ ४२ ॥

अस्रविमिश्रा मूलादुपरिष्टाद्वर्तुलाश्चतुर्दिक्कम् ।

मूर्ध्निस्थितजिनत्रिंवा हृदाभिधानान्यतो वक्ष्ये ॥ ४३ ॥

नदोत्तरा च नंदा नंदवती नंदघोपनामा च ।

विजया च वैजयंती जयंतसंज्ञाऽपराजिताख्या च ॥४४॥

श्लोका सुप्रतिपुद्गा कुमुदान्या पुंढरीकनामा च ।
 हृदयानदा च महानंदास्या सुप्रपुद्गनामा च ॥ ४५ ॥
 पोडश पूर्णा वापी प्रमंक्नामा तत परमरम्या ।
 आसां संपदमखिलां स्तोतुं शक्नो न शक्नोति ॥ ४६ ॥
 घवलोत्तुंगत्रिभूमिसाले नृत्यस्य रत्नवते द्वे द्वे ।
 षीष्या पाश्वेद्वितये धूपघटौ द्वौ च चतुराश्रौ ॥ ४७ ॥
 द्वार्त्रिंशत्प्रेक्षणिकान्येकैकस्यां भवंति पृथुभूम्याम् ।
 एकैकप्रेक्षणिके द्वार्त्रिंशद्देवकन्या स्युः ॥ ४८ ॥
 अर्हस्यतिमाकीर्णां स्तूपा नव नव भवंति चाभ्यर्च्याः ।
 अंतरिताः शतसंख्यै रत्नानां तोग्भैरमलै ॥ ४९ ॥
 बाष्पाम्बतरदेष्टे पट्त्रिंशद्द्वोपुरात्मनां संति ।
 द्वारोमयमागस्या मंगलनिषय समस्तास्तु ॥ ५० ॥
 संपाठकमृगारच्छप्रान्दभ्यञ्जनशुक्तिचामरकलशा ।
 मंगलमष्टविध स्यादेकैकस्याष्टशतसंगम्या ॥ ५१ ॥
 प्रत्येकं साष्टशते ता कालमहाकालपांडुमाष्यवर्षेष्टा ।
 नैसर्पपद्मपिगलनानागत्नाभ नव निषयः ॥ ५२ ॥
 ऋतुयोग्यवस्तुमाजनधान्यायुषत्पेहम्यंषस्त्राणि ।
 आभरणरत्ननिकरान् क्रमेण निषय प्रयच्छति ॥ ५३ ॥
 शतमकरतोग्भाद्या घृलीसालस्य षाष्टमागा स्यु ।
 अंतर्मागा सर्वे प्रत्येकं रत्नतोरणश्रुतास्तु ॥ ५४ ॥
 प्राच्यां दिशि विजयागम्यं द्वारमपाच्यां च वैजयतास्मया
 प्रयच्छुमि जयंत स्यात्पराश्रितमयोदीप्याम् ॥ ५५ ॥
 यद्यप्यसंख्यगुणितक्षेत्रफलास्तत्र भव्यजीवा स्युः ।
 विनमक्ते स्थितवंतस्तथापि नि क्षेपतः सर्वे ॥ ५६ ॥

संख्यातयोजनेऽपि प्रवेशनिर्गमयुजोऽत्र भव्याः स्युः ।
 अंतर्मुहूर्त्तमात्रा जिनमाहात्म्येन वृद्धाद्याः ॥५७॥
 मिथ्यादृष्टिरभव्योऽसंज्ञी जीवोऽत्र विद्यते नैव ।
 पञ्चानध्यवसायो यः संदिग्धो विपर्यस्तः ॥५८॥
 तत्र न मृत्युर्जन्म च विद्वेषो न च मन्मथोन्मादः ।
 रागांतकबुभुक्षाः पीडा च न विद्यते कापि ॥५९॥

अनुष्टुप्स्तम् ।

अंधाः पश्यन्ति रूपाणि शृण्वन्ति वधिराः श्रुतिम् ।
 मृकाः स्पष्टं विभाषन्ते चक्रम्यन्ते च पंगवः ॥६०॥
 आर्यास्तम् ।

यः स्तुत्तुचैवं ध्यायति समरसभावाज्जिनेश्वरं देवम् ।
 तस्यैष भवति विभवः कतिपयदिवसैर्न संदेहः ॥६१॥
 चत्वारिंशद्भवने द्वात्रिंशद्व्यंतरविमानेषु ।
 चतुरधिकविंशतिश्चंद्रार्कौ सिंहोऽथ चक्रवर्तीन्द्राः ॥६२॥
 कर्तुं प्रशस्ति ।

शक्राज्ञया स्वभक्त्या धनदेवविनिर्मितं समवशरणम् ।
 व्यावर्णितं त्रिविद्याधिगणिना विष्णुसेनेन ॥६३॥

इति श्रीविष्णुसेनविरचितं समवशरणस्तोत्रं
 समाप्तम् ।

जयानं गूरिविरचित
सर्वज्ञस्तवनम् ।

• ५२ •

गरी ६ ।

दया प्रभो ! य विधिनात्मशुद्धयं
भक्त्या सुमेरो शिखरऽभ्यर्षिचन् ।
सन्तुयस त्व स मया समोद-
मुन्मील्यत ज्ञानदृगा यथा म ॥ १ ॥

टीका—यथा इति—गीषाणभाषयार्थोच्चारणमन्ययस्तमन्वयं वापारस्या
भद्रापद्रम्यप्याप्यानामसं कथयति म आत्मा कथ्यते—यथा हे प्रभो !
त्वां वा विधिनात्मशुद्धयं भक्त्या शक्तिरसाशाशान् सुमेरो शिखरे
भ्यर्षिघ्नस्नपयन् जन्मोन्सकमक्ताय स त्वं मया समो सहय यथा स्ना-
त्तथा संस्तुयस यथा मे ज्ञानदृशोन्मील्यत इत्यन्वय । अमिपूर्वपिबन्
कारण “हस्तनी” अन् तुष्टेः “मुखादितृप्सुपेति” नाऽन्त अभ्यर्षिचन्
इय कर्त्तयुक्ति । ममपूर्वपुत्र स्तुतौ “य सो” इति स्तुनिमित्तस्य पत्या
मात्राभिमित्तिकस्य तस्याप्यभाव “निमित्ताभाव नैमित्तिकस्याप्यभाव ”
इति न्यायात् । “तत्साप्यानाप्येति” कर्मणि कर्त्तमानात् कर्मप्रत्ययः ।
“नीर्घश्चडिति नीर्घश्च संस्तुयसे इति कर्मण्युक्ति । उत्पूर्वक-
मील निमेषणे भावे आत्मनेपत् नेपे पूर्ववत् इयं भावे उक्ति ।
अत्र कर्म्ये सप्त विभक्त्यस्त्विह उक्तय संशोधन क्रियाविशेषणं च
कथितानि । मयांश्वरेऽर्थे उक्तयस्ता अपि अधिकरत् कथ्यते । यथा—
एककर्मा द्विकर्मा चाकर्मा कर्त्तरि कर्मणि ।
कर्मकर्त्तरि भावे च उक्तयोऽर्थविधाः स्मृताः ॥ १ ॥

अस्य व्याख्या—यथा श्राद्धा देवान् पूजयति इय एककर्मा १ मित्रोऽजा ग्राम नयति इय द्विकर्मा २ देवदत्तं शेते इयमकर्मा ३ एतत् प्रकारत्रय कर्त्तरि । अथ प्रकारत्रय कर्मणि, यथा श्राद्धैर्देवाः पूज्यते ४ मित्रेण अजा ग्राम नीयते ५ देवदत्तेन शय्यते ६ आरोहते हस्तिन हस्तिपका-स्तानारोहतो हस्ती प्रयुक्ते आरोह(हय)ते हस्तिन हस्तिपकान् ७ वर्षासु मेघो गर्जति मयूरो नृत्यति ८ इत्यष्टप्रकारा उक्तयो ज्ञेयाः ॥१॥

ध्यानानुकंपाधृतयः प्रधानो-

ल्लासिस्थिराः ज्ञानसुखक्षमं च ।

सुनाथ ! संति त्वयि सिद्धिसौधा-

धिरूढ ! कर्मोज्झित ! विश्वरूच्य ! ॥२॥

टीका—हे सुनाथ ! हे सिद्धिसौधाधिरूढ ! हे कर्मोज्झित ! हे विश्व-रूच्य ! त्वयि प्रधानोल्लासिस्थिराः ध्यानानुकंपाधृतयः सति वर्त्तते, च पुनः ज्ञानसुखक्षम अस्ति इत्यन्वय ! ध्यान च अनुकंपा च धृतिश्च ध्यानानुकंपाधृतयः, अत्र केवलविशेष्यैरितरेतरद्वद्वः कथितः । प्रधान च उल्लासिनी च स्थिरा च प्रधानोल्लासिस्थिराः अय केवलविशेषणैः स एव प्रधानादीनि ध्यानादीना विशेषणानि । ज्ञान च सुख च क्षमा च ज्ञानसु-खक्षम अय समाहारद्वद्व, पूर्वार्द्धेन द्वद्व कथितः । शोभनश्चासौ नाथश्च सुनाथ. सबुद्धौ सुनाथ ! अत्र प्रथमातत्पुरुषः कथितः । सौधमधिरूढः सौधाधिरूढ सिद्धिरेव सौधाधिरूढ सिद्धिसौधाधिरूढः, अत्र द्वितीया-तत्पुरुषः । कर्मभिरुज्झितः, अत्र तृतीयातत्पुरुषः । विश्वस्मै रूच्य, अत्र चतुर्थीतत्पुरुषः कथितः । पचमीतत्पुरुषषष्ठीतत्पुरुषसमासौ वक्ष्यमाणश्लो-कपूर्वार्द्धेन ज्ञेयौ ॥ २ ॥

संसारमीतं जगदीश ! दीनं
 मां रक्ष रक्षाक्षम ! रक्षणीयम् ।
 प्रौढप्रसादं कुरु सौम्यदृष्टया
 विलोक्य स्वीयवचस्य देहि ॥ ३ ॥

टीका—संसारानीतः संसारमीत, अत्र पंचमीसमास, जगतामीशो जगदीशः, अत्र पठीतत्पुरुषसमासः । एवं तत्पुरुषसमासः संपूर्ण । प्रौढ-
 आसौ प्रसादश्च प्रौढप्रसादस्तं प्रौढप्रसादं, अत्र पुंसि कर्मधारय, सौ-
 म्या आसौ दृष्टिभेति सौम्यदृष्टिस्तयेति स्त्रियां कर्मधारयः, स्वीयं च
 तत्रवचनेति स्वीयवच, इत्यत्र ङीवे कर्मधारयसमासः, एवं कर्मधारयसमासः
 संपूर्ण । हे जगदीश ! हे रक्षाक्षम ! संसारमीतं दीनं रक्षणीयं मां त्वं रक्ष
 प्रौढप्रसादं त्वं कुरु सौम्यदृष्टया मां विलोक्य, च पुनर्मम स्वीयवचो
 देहि इति ॥ ३ ॥

वक्ष्यमाणश्लोकेन बहुव्रीहिसमासे प्रतिपादयन्नाह,—

नतैर्द्र ! विद्रावितदोष ! दत्त
 दाना दरिद्रा अपि वीतदौःस्व्या ।
 स्वया कृता भूरिघना अनंत-
 ज्ञान ! द्विपान् सक्षम ! मक्षु मासान् ॥ ४ ॥

टीका—हे नतैर्द्र ! हे विद्रावितलोप ! हे अनंतज्ञान ! हे सक्षम !
 स्वया दरिद्रा अपि शोक्य इत्यभ्याहार्यं दत्तदाना वीतदौःस्व्या भूरि-
 घना द्विपान् द्वादश मासान् यावत् इत्यभ्याहार्यं मक्षु शीघ्रं यथा स्यात्तथा

१ रक्षाको क्षमो रक्षाक्षमः तत्सम्बुद्धौ हे रक्षाक्षम ! इति तत्तमी तत्पुरुषोऽ-
 पि श्लोकाः १—संशोचक

कृता इत्यन्वयः । हे नतेंद्र ! नता इद्रा य इति नतेंद्र इति द्वितीयाबहु-
 व्रीहिः १ विद्राविता दोषा येन स विद्रावितदोषस्तत्सबुद्धवित्यत्र तृतीया-
 बहुव्रीहिः २ दत्त दान येभ्यस्ते दत्तदाना इत्यत्र चतुर्थीबहुव्रीहिः ३ वीत
 दौःस्थ्य येभ्यस्ते वीतदौःस्थ्या इत्यत्र पचमीबहुव्रीहिः ४ भूरि धनं
 यषा ते भूरिधना इत्यत्र षष्ठीबहुव्रीहिः ५ अनत ज्ञान यस्मिन्नय अनतज्ञा-
 नस्तत्सबुद्धावत्यत्र सप्तमीबहुव्रीहिः ६ सह क्षमया वर्त्तते यः स सक्षम
 इत्यत्र सह पूर्वेण बहुव्रीहि ७ । द्वि षट् द्विपा “ प्रमाणीसख्याङ् । ”
 इति सूत्रेण डप्रत्यय इति “सुज्वार्थे सख्या सख्यया सख्येये बहुव्रीहिः”
 समासो भवति इति सूत्रेण द्वादशार्थे बहुव्रीहिरष्टमो भेदः ८ इति ॥४॥

वक्ष्यमाणपद्येन अवाशिष्टबहुव्रीहिं द्विगु च प्रतिपादयन्नाह,—

द्वित्रैर्भवैर्मुक्तिमना द्विपाद्या—

स्तव त्रिपूजां विदधत् त्रिसंध्यम् ॥

कल्याणकानां जिन ! पंचपर्वा-

माराध्य भव्यः क्षिपतेऽष्टकर्म ॥ ५ ॥

टीका—द्वौ वा त्रयो वा द्वित्राः, “प्रमाणीसख्याङ्.” इति अय
 नवमो भेदः सुज्वार्थेति सूत्रेण विकल्पार्थः समासः ९ । प्रधानपद-
 योरपि यच्छब्देन बहुव्रीहिः समासो भवति यथा मुक्तौ मनो यस्य स
 मुक्तिमना इति दशमो भेदः बहुव्रीहिः १० । अथ द्विगुसमासः हे
 जिन ! तव द्विपाद्यास्त्रिपूजा विदधत् कल्याणकाना पंचपर्वामारार्य द्वित्रै-
 र्भवैर्मुक्तिमना भव्यो अष्टकर्म क्षिपते इत्यन्वयः । द्वयोः पादयोः समाहारः
 द्विपादी तस्या द्विपाद्याः द्विपादीति “द्विगो”रिस्कारात्त्वान्नित्य ङी स्यात् ।
 त्रिपूजा त्रिसंध्यमित्यादौ पंचपर्वा अष्टकर्म इत्यादौ “द्विगौ अन्नतावताभ्या”
 विकल्पेन ङी. अन्यस्तु सर्वो नपुसक इति वचनाच्छेष सर्वं स्वरात्

व्यञ्जनात् च नपुंसके ज्ञेयं । क्षिपत् इत्यत्र प्रेरणफलवति कर्त्तव्यात्मनेपदं
दुदादेश, अथकर्मक्षयान्मुक्तिप्राप्तिफलं । विदधदित्यत्र विपूर्वधागु
धात्, शतप्रप्यये द्वित्वे नोति च अतो नो छगिति नलोपे विन्धदिति
सिद्धम् ॥ ५ ॥

साम्येन पञ्चस्रिजगद्विवेकी

अयन् प्रभो ! पञ्चममित्युपैति ।

अपास्य सप्तम्यधिसिद्धिमध्ये

सिद्धं जवेनोपमबाहुपेक्षम् ॥ ६ ॥

टीका—हे प्रभो ! साम्येन त्रिजगत् पश्यन्, एवं पञ्चसमिति अयन्
सप्तमि अपास्य विवेकी नर उपमवान् (त्) अधिसिद्धिमध्ये सिद्ध उपेशं
यथा स्यात्तथा जवेन जगेन उपैति गच्छतीत्यर्थ इत्यन्वय । शेषं स्म-
रात् व्यञ्जनात् ज्ञेये ज्ञेयमिति वचनात् श्रयाणां जगतां समाहारत्रिजगत्
पञ्चानां समितीनां समाहार पञ्चसमिति, सप्तानां भीनां समाहार सप्तमि
इत्यादौ सर्वत्र ज्ञेयत्वं तत् ज्ञेये नृत्स । अनतो भुवीति द्वितीया-
म्होप सिद्ध । अधिसिद्धिमध्ये ईशस्य समीपं उपेशं वीतरागसमीपं
इत्यर्थं अत्र 'विभक्तिसमीपसमृद्धि' इत्याहिसूत्रेणाभ्ययीमात्र । सिद्धीनां
मध्ये मध्येसिद्धिरित्यत्र पारे मध्येत पट्टी वेति" पट्टीसमास ।
उदाहरणत्रयेऽपि क्रियाविशेषणात् । अथवा विवक्षात् कारकाणीति
न्यायाहुदाहरणत्रये सप्तमी कर्म वा कर्म्यादिति विभक्त्यानां लोप । आका-
राताम्ययीभावस्याप्रस पञ्चमीवर्जविभक्तिनामम् स्यात् तद्दुदाहरणं उपेशं
इति ज्ञेयं पञ्चमीवर्जनादुपमवानि (दिति) प्रत्युदाहरणं वेति ॥ ६ ॥

मवेच्छुमापोपमवघयेष्टं,

अये सनाथोऽस्मि नमोऽस्तु दोषा ।

दूरे प्रमादश्च गुरुः सुखं मे

विश्वार्थ ! धीभीकृदुपद्विपादे ॥ ७ ॥

टीका—हे विश्वार्च्यधीश्रीकृदुपद्विपादे ! भवतः समीपमुपभवत् शुभाय भवेत् १ उपभवद्यथेष्टं श्रये २ उपभवदह सनाथोऽस्मि भवत्समीपेनाह स्वामिवान्नहमस्मीत्यर्थः ३ उपभवन्नमोस्तु ४ उपभवदोपा दूरे सतु ५ उपभवत्प्रभावो गुरुरस्ति ६ च पुनरुपभवद्भवत्समीपे सुखमस्तीत्यन्वयः ७ अत्र अन्यस्वरातव्यजनातेभ्यः सप्तविभक्तीनामनुक्रमेण लोपस्योदाहरणानि ज्ञातव्यानि । भवतः समीप उपभवत् इत्यव्ययीभावः सर्वविभक्तिषु दर्शितः । एव षट्समासोदाहरणानि । अथ सक्षेपतः षट्समासानाह,—विश्वार्च्यधीश्रीकृदुपद्विपादे इति षटे धीश्च श्रीश्च धीश्रियौ अय द्वंद्वः, विश्वेन अर्च्ये विश्वार्च्ये इति तत्पुरुषः, विश्वार्च्ये च ते धीश्रियौ चाय कर्मधारय, विश्वार्च्यधीश्रियौ करोतीति विश्वार्च्यधीश्रीकृत्, द्वयोः पाठयो समाहारः द्विपादीति द्विगु. द्विपाद्या समीपमुपद्विपादि क्लीबे ऋस्व अय अव्ययीभाव विश्वार्च्यधीश्रीकृदुपद्विपादि यस्य स विश्वार्च्यधीश्रीकृदुपद्विपादि इति बहुव्रीहि । एते सक्षेपत षट्समासाः कथिता ॥ ७ ॥

मुक्त्वा भवं सौख्यमवाप्तुमंगी

धीमॉस्त्यजन् मोहमघस्य हंता ।

यो मुच्यमानस्तमसा शिवीयेत्

त्वत्सेविताकाम्यतु सोऽत्र नेतः ! ॥ ८ ॥

टीका—भव मुक्त्वा सौख्यमवाप्तु मोह त्यजन् अघस्य हता तमसा मुच्यमानः यो धीमान् शिवीयेत् हे नेतः । अत्र भुवि स पुरुषः त्वत्सेविताकाम्यतु इत्यन्वयः । प्राक्काले क्त्वाप्रत्ययः मुक्त्वा । अवाप्तये अवाप्तु “ क्रियाया क्रियार्थाया तुम् ” अगमस्यास्तीत्यगी यथानेकस्व-

रादिन् दीर्घश्च मंगी प्राणी । धीर्भिषते यस्यासौ धीमान् “तदस्यास्प-
स्मिन्” इति मत्तुप्रत्यय “कृदुदितनोते पदस्य” इति तळोपे दीर्घे च धी-
मान् । त्यञ् हानौ त्यञ्तीति त्यञ्न् शतुप्रत्यय अतरोति तळोपे च ।
मोहं मोहनीयं कम् । हनक् हिंसामस्योर्हतीति हत्वा णक्त्वा चोढ (?)
अघम्य पापस्य, “कृत कर्मणीति” पट्टी । मुष्यमान इत्यत्र मुष्वातोम-
नश्च क्य अतोऽम् अतोमोतिमुषमादिन् (?) केन तमसा । शिर्षं शिष्ते
शिर्षीयेत् अमाम्ययात् “क्यङ्वेति” क्यन्प्रत्यय क्यनि दीर्घे च,
त्वां सेवते इत्येवं शौलस्वस्तेवी अजाते शिष्ठे णिन् त्वमौप्रत्ययोत्तरपद
इति मातावयवस्य युष्मदस्त्वादेशे त्वस्तेविनो भावस्त्वस्तेविता “माते
त्वतली” अनन त्वङ्प्रत्यय त्वङ्ताद्राप् त्वस्तेवितामिच्छतु त्वस्ते
विताकर्म्यत् “द्वितीयायां क्त्वाम्य” इति क्त्वाम्य । पंचमीस्त्वात्तुम्
इन्मत्तुभृत्त्वमानश्चक्यन्पिन्तश्चक्याम्यापीनामुटाहरणानि ज्ञेयानि ॥ ८ ॥

क्षेमेषु वृक्षसु घनायमानो

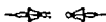
हित पितेषामृतवद्दुराप ।

मम प्रभो ! मम्यतरं स्वमृत्यी

भावं जयानंदमय ! प्रदेया ॥ ९ ॥

टीका—हे प्रभो ! हे जयानंदमय ! वृक्षसु क्षेमेषु मंगलेषु किंचिदि-
ष्टेषु घनायमान पितृव हित अपृतवद्दुराप मम्यतरं स्वमृत्यीभावं मम
प्रदेया इत्यन्वय । वृक्षा इवाभरति वृक्षसि ‘कत्तु किय’ वृक्षतीति क्षीमे
शतुप्रत्यय तसु वृक्षसु । क्षेमेषु किंचिदिष्टेषु घन इवाभरति घनायते
इति घनायमान । आन मति च ! दुःखेनात्मते इति दुरापः “दुःख-
वृष्टापधे सत्र प्रत्यय” । न स्वम्य अस्वभृत्य अस्वभृत्यस्य

श्रीपार्श्वनाथसमस्यास्तोत्रम् ।



श्रीपार्श्वनाथं तमहं स्तुषीमि
त्रैलोक्यलोकं प्रणिधामधाम् ।
सामोदमुञ्जासि यदीशकीर्तिं
रामामुखं शुंषसि कार्तिकेया ॥ १ ॥
सैरभ्यपयोगेन विवेकसेक
मुक्तास्ति या साऽपि जिनावतंस । ।
मिलोकिते कातिकलत्पदास्य
चन्द्रोदये मृत्पति चक्रवाकी ॥ २ ॥
पुरः प्रकीर्णानि कपोलपाली
तले तवाच्छे प्रतिबिम्बितानि ।
निमास्य संदिग्धं पुषो जन किं
चन्द्रस्य मध्यं कदलीफलानि ॥ ३ ॥
यैर्निर्मितैः पञ्चशेरण चक्रे
कठं कुटारं कमठं ठकार ।
अकीर्तिनाट्यस्य च वादितोऽहं
साम्यं न्य तपा सुसदां त्वयास्तु ॥ ४ ॥
अभयदां भव्यतयाङ्गमाजां
येषां स्वदास्ये सुभगऽपि हृष्टे ।
संतापसंपत्तिश्चेति तेषां
मयं शशी पण्डितकृष्णान् प्रसूते ॥ ५ ॥

त्वद्दानलीलादलितप्रतापो

देव ! द्युकुंभस्तव शक्तिमाप्नुम् ।

भृगोः पतन्नादमिमं तनोति

ठंठं ठंठं ठंठं ठंठं ठः ॥ ६ ॥

जनिमहे जिन ! ते सवनोदकैः

प्रसृमरैरमरेश्वरभूधरे ।

विदलितेषु नगेषु किलाभवत्

उपरि मूलमधस्तरुपल्लवाः ॥ ७ ॥

रसना स्तवने नयनं वदने

श्रवणं वचने च करौ महने ।

तव देव ! विशां कृतिनां सततं

रमते रमते रमते रमते ॥ ८ ॥

विश्वैकनायक ! कला न हि या त्वदर्हा

कार्ये न या च कविता भवत स्तवाय ।

लग्नो न यस्त्वयि भवो विभवश्च सा किं

सा किं स किं स किमिति प्रवदन्ति धीराः ॥९॥

अहीशेऽधस्तात्त्वमुपनमति जेतुं दितिसुतं

समादाय क्रोधान्मणिमधुपकांतं किल धनुः ।

अधोऽधो मैनाकं चरति जगतीनाथ ! समभूत्

धनुःकोटौ भृगस्तदुपरि गिरिस्तत्र जलाधिः ॥१०॥

जगच्चक्रं चक्रे चरणपरिचर्यैकरुचिना-

मुना त्वद्दासेन स्वमनसि समंतान्निगमनम् ।

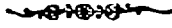
तदान्यो देवस्त्वां तुलयति विभो ! चेद्भुवि भवेत्

धनुःकोटौ भृगस्तदुपरि । गीरिस्तत्र जलाधिः ॥११॥

- प्रीतां रूपवतीं मतीं त्रिनपतर्द्धलक्ष्मिलीलावतीं
 द्वित्वा रूपरसोद्भितां रमयसे यन्मुक्तिसीमंतिनीम् ।
 तन्नूनं भवताऽपि तीर्थपतिना स्वैतत्स्फुटं निर्ममे
 युक्तयुक्तपिचारणा यदि भवत्स्नदाय वत्सं जलम् ॥१२॥
 इत्थं योगीद्रवेत कमलकमलभूर्भुक्तिकामारहंस
 कल्याणाङ्कुरकद मममहिमरमार्मजरीवल्लरीभीः ।
 मंत्रद्रन्मेपपीञ्जं सुवनजनवनोल्लासलीलावतंस
 श्रीपार्श्व स्यात्समस्यास्तवङ्गुसुमकृताभ्यर्चनोऽमी-
 एलङ्घ्ये ॥ १३ ॥

इति पार्श्वबाधतमत्वास्तीत्रम् ।

श्रीगुणभद्रविरचितं
चित्रबंधस्तोत्रम् ।



ये तीर्थरथनेतारः संत्यत्र वृषभादयः ।
चित्रबंधेन तान् स्तौमि हारिणा चित्रकारिणा ॥१॥
वृषभो वः सतां कांतां वृद्धिं देयादनिदिताम् ।
भावयामास यः स्वीयां भासं दमितदुर्नयाम् ॥ २ ॥
छत्रम् ।

न जितस्त्वं जिनाधीश ! कमौघैरजितो वरः ।
रसरक्तैरसारं मां रक्षं रक्षरतेऽरतः ॥ ३ ॥
चमरं ।

संभवो वोऽस्तु सौख्याय शंभवैधानलोऽभयः ।
सद्धर्मं कर्ममोक्षाय समवीवददत्र यः ॥ ४ ॥
बीजपूरः ।

नक्षरश्रीश वादीननदीवाद्धैऽभिनंदन ।
नंदं नंदं धनादाननदानाद्रक्ष रक्ष नः ॥ ५ ॥
चतुरारचक्रं ।

सुमते मतिमन्नाम त्वमकाम यमद्रुम ।
नमस्याम इमं धाम शमस्य महमक्रमं ॥ ६ ॥

बोद्धव्यमर्थम् ।

पद्माभेन पृथो येन समयो नयपावन ।
खलोकेन कृतमान पूयाञ्जिनः स नो मनः ॥ ७ ॥
बोद्धव्यमर्थम् ।

सुपाश्वो मम नि काम सुमर्ति ददतां प्रभु ।
सुखायास्तु शुभ येन सुप्रोक्तममलं जने ॥ ८ ॥
स्वस्तिकम् ।

सतः कुवलयानन्दं दृष्ट्वा विभं विधोरिव ।
वैद्यं चन्द्राम ते प्रापु केऽमृतं न शुभौकसः ॥ ९ ॥
बहु ।

पुण्याश्वीपुष्पदत्तोऽयं मोक्ता मुक्तेरनेकशः ।
संखड्गदेदुमुक्तामो यमध्यानाय नो वपुः ॥ १० ॥
सुखम् ।

भीष्मांकस्तु सश्रीक ईडितो वलिमिर्धनैः ।
छीतल छीततां नेवात्कामवन्दि मम प्रभुः ॥ ११ ॥
भीष्मा ।

योधिनाससामान श्रेयसे सुररंजन ।
तव ज्ञानाघनानस तत्र सिद्धं वरं रसम् ॥ १२ ॥
गच्छिष्यः ।

वासुपूज्यः सुरैः स्नात्वा मेरौ जन्मनि यो नुतः ।
तं जिने न जितं वंदे देवतर्पिततर्पितम् ॥ १३ ॥

त्रिशूल ।

विमल त्वामहं चायेऽनंतसन्मतये जिने ।
नवानंदद विख्यात तथ्यं तव वचोधनं ॥ १४ ॥

श्रीकरी ।

अनंतज्ञानसंयुक्त त्यक्तमंडन पावन ।
नमाम्यनंतनामानं त्वां जिने जन्मभंजनं ॥ १५ ॥

हल ।

धर्मनाथ कुवादीश सर्वपक्षक्षयंकर ।
रसं पीत्वात्र ते वाचः प्राप मोक्षक्षितिं बुधः १६ ॥

वज्र ।

नयशक्त्योद्धृतो येन नरकाज्जनकोऽनयः ।
शमास्पदः स वः शांतिः शांतिं कुर्याद्यमाशयः ॥१७॥

शक्ति ।

कुंथुनाथ कुरूद्भूत कुंथुमुख्यदयास्पद ।
ददस्व धर्मचक्रेशं शं नित्यं मम सद्यशः ॥ १८ ॥

भाल ।

त्वयार रविसंकाशतपसा साधितः स्मरः ।
तथारिचक्रं चक्रेण मां त्रायस्व यतीश्वर ॥ १९ ॥

धरः ।

कंदर्पद्वर्षकालीन मल्लं त्वं मलजिह्वुवि ।
विषेककंदविद्यां न संप्रयच्छ प्रमाधिकाम् ॥ २० ॥

ककषः ।

द्विस्वा मोहं य आत्मन तरमायं वमार तम् ।
जिनं सुव्रतकं नौमि वर्णसाररमार्षवम् ॥ २१ ॥

रषः ।

कमलांक फलानेककलितः कंकरो यक ।
कं नमिकः करोष्येकं कस्यास्माकं कलं सक ॥ २२ ॥

कमकं ।

पापान्मुक्ताव मां देव मादेश्चस्थिर धीवर ।
रषधीरं जिनं मेने नेमे त्वां धंखधकरम् ॥ २३ ॥

धंकाः ।

पादसेवनया तापाभिर्हृतास्तव भूमिपा ।
पार्श्वार्हं न कथं कथाभमस्तुभ्यं तु कः स्तुतः ॥ २४ ॥

कत्रमुक्तिः ।

पाहि मां भवसो धीर रवीतोऽधिकसत्प्रम ।
भणंति सन्मतित्वेन नत्येति ग्राऽथ सच पा ॥ २५ ॥

शान्तां कश्मथ ।

पाहि मां भवतो वीर रवीतोऽधिकसत्प्रभ ।
भणंति सन्मतित्वेन नत्वेति घ्राऽत्र सत्त पाः ॥२६॥
मुरजबधोऽपि ।

छत्रौघाकृतिमिर्मृदंगनिधनैश्चित्रैर्विचित्रार्थिनीं
श्रीमन्मंगलकारिणां सुवृषभादीनां जिनानां स्तुतिं ।
यो नाधीत इमां स्तुतिं विनयतो मेधाविना संस्कृतां
पुनागः कवितां स याति नृपतिः स्वर्गश्रियं चाश्नुते २७
पंचमंगलयुक्तानां पदान् वंदे जिनेशिनाम् ।
भागं देवादिबंधानां भालजित्यवृतेशिनाम् ॥ १ ॥
छत्रबध. ।

सर्वसद्गुणसंवासः सदाचारस्त्वनालसः ।
सद्भर्मो गुणभद्रः स संपायाद्धो महीनसः ॥ २ ॥
चमरं ।

मतिमंतं नमस्यामः मलेनास्पृष्टमुत्तमम् ।
मंगलाप मुनिं चेमं महामित्रद्विषोः समम् ॥ ३ ॥
चमरं ।

तर्काद्यर्थविशेषसार्थगणने दक्षः सतामग्रणीः
नंघाच्छ्रीगुणभद्रकीर्तिरमदो मोहांधकारोप्लुगौः ।
बालत्वेऽप्यजडं कविं यतिगुणश्रीशं जगुर्य बुधाः
शुंभत्कीर्तिममुष्य कामदमिनं ब्रौद्धादिमिथ्याहरं ॥४॥
कलश ।

इति चित्रबधस्तोत्र समाप्तिमगात् ।

महर्षिस्तोत्रम् ।



निर्वेदसांख्यतपश्चपुरात्मभेद

संविद्धिकस्वरमुदोद्धृतदिभ्यश्शक्तीन् ।

पुद्गलापधीमलतपोरसविक्रिबद्धि

क्षेत्रक्रियार्थिफलितान् स्तुमहे महर्षीन् ॥ १ ॥

ये केवलावधिमन पर्यायिणो धीशकोष्ठशुद्धियुज

संमिभभोवृतया मांतत्र पदानुसारितया ॥ २ ॥

दूरस्पर्शनरसनघ्राणभवणालोकनसमर्था ।

सदक्षचतुर्दक्षपूर्वाष्टांगमहानिमित्तज्ञा ॥ ३ ॥

प्रत्येकशुद्धवादिप्रज्ञाभवनात्त बुद्धिशुद्धिपतीन् ।

तीव्रतपोऽस्तविपश्चानष्टादक्षषाऽपि तानीडे ॥ ४ ॥

रोगाः सर्वे विष्मलामल्लक्ष्ण-

ह्वैलैः सर्वेषांपि ध्याम्यन्ति येषां

सिद्धा इष्टयास्यविपत्वेन ये च

श्रावतां नम्येऽष्टधाप्यौपधीशा ॥ ५ ॥

आध्याय क्खिलश्रुतार्थममलं येऽर्थाहूर्ते भ्रमा-

तद्वत्कृत्स्नमधीयते श्रुतमविच्छिन्नं पठतोऽपि च ।

उच्येयान्ति न कंठशानिमखिलं लोकं रमंतऽन्यतोऽ-

प्यगुस्या न्यसितुं बलात् बलिनस्त्रेषाऽपि ते संतु न ॥ ६ ॥

चरन्ति धोरमहदुग्रहीतं तप्त तपो धोरगुणं त्रिगुणाः ।

ब्रह्मापि ये धोरपराक्रमात् ते सप्तधाऽप्युच्यपसस्तर्पतु ॥ ७ ॥

वाग्दृष्टीं कुरुतोऽग्निनां लघुविषावेशेन मृत्युं क्रुधा
 यैर्युक्ते घृतदुग्धमध्वमृतवद्यत्पाणिपात्रार्पितम् ।
 स्याद्भोजनमप्युतस्विदुदिता वाचानुगृह्णति ये

तद्वत्तान् कृपयास्यदृग्विषघृताद्यास्त्राविणः स्तौमि तान् ॥८॥
 वंदेऽणिममहिमलघिमगरिमैश्याप्तिवशिताप्रतीघातैः ।
 प्राकाम्यकामरूपित्वांतर्धाद्यैश्च विक्रियर्द्धिगतान् ॥ ९ ॥

न क्षीयते चक्रिबलेऽपि भोजिते
 यद्वत्तसेखंत ? दहः सुरादयः ।

वसंति यद्भाम्नि चतुःकरेऽपि

ते भांतूभयेऽक्षीणमहानसालयाः ॥ १० ॥

जंघाश्रेण्यग्निशिखाजलदलफलपुष्पबीजतंतुगतैः ।

चरणनाम्नः स्वैरं चरतश्च दिवाऽस्तु विक्रियर्द्धिगतान् ॥११॥

इत्यन्यतद्भवतपोमहिमोदितद्वी-

नाचार्यपाठकयतीन् जगदेकभर्तृन् ।

वंदारुदाश्रयति कामपि भावशुद्धिं

क्षिप्रं यया दुरितपाकमपाकरोति ॥ १२ ॥

इति महर्षिस्तुति संपूर्णा ।

श्रीपार्षनाथस्तोत्रम् ।

ॐ : ॥

लक्ष्मीस्तोत्रापरनाम ।

(सटीकम् ।)

लक्ष्मीर्महस्तुल्यसती सती सती प्रवृद्धकालो विरतो रतो रतो ।
जरास्त्राजन्महता हता हता पार्श्वं कृपे रामगिरौ गिरौ गिरौ ॥

टीका—ए इति निश्चयेन हे साधो ! त्वं पार्श्वं कृपे पार्षनाथसमीपे गच्छ
स्तुतिं कुरु । कत्या । गिरा बाण्या कृत्वा । कृ ' रामगिरौ नामध्येयपर्वते । क्रीड्ये
पार्श्वे । लक्ष्मीर्महस्तुल्यसती कोप सदाकृते वर्तमाने स्त । पुन कथंभूते ?
सती शोममाने । पुन कथंभूते पार्श्वे ? सती शान्ते । अत श्रीपार्षनाथात्
प्रवृद्धकालो विरत कोर्धं प्रचुरकृते गत रतो येन महता पार्श्वेन
जरास्त्रापदता, किञ्चिदिष्टा जरास्त्रापत् ' हता कोर्धं केनापि न हता श्री-
पार्षनाथस्य जिनेत्रस्य तत्प्राप्तिकं गृहीत्वा विना न केनापि जरास्त्रापत्
हता ॥ १ ॥

अर्चयमाथ सुमना मनामना य सपदेशो भुवि नाविना विना ।
समस्तविज्ञानमयो मयोमयो पार्श्वं कृपे रामगिरौ गिरौ गिरौ ॥ २ ॥

टीका—अहं आथ प्रथमं पार्श्वं अर्चयं पूजयामि, कृ ' तथा रामगिरौ
पर्वते पूर्वोक्तप्रकृतेण । कथंभूतोहं ? सुमना कोऽर्थं आर्त्तरीव्रात्रहितमना
तच्छोमनचित्त । पुन कथंभूतोहं ? मनामना कोर्धं मनान् यत् (ये) सर्वज्ञान्
न मन्यन्ते ते मनामना तान् अहं त्यजामि तान् पञ्चविधमिष्यस्वान् त्यजि-
त्वा (त्यक्त्वा) श्रीपार्श्वं जिनें पूजयामि य पार्षनाथ सर्वेषु देशेषु वर्तते इति
सर्वदेश पुन कीदृश श्रीपार्षनाथ ? अविना कोर्धं स्वामिना विना यस्य
पार्षनाथस्य स्वामि (मी) नास्ति, पुन कीदृश पार्श्वं ? भुवि पृथिव्यां विषये

पुरुष प्रधानीकपुरुषः । पुनः कीदृश पार्श्वः ? समस्तविज्ञानमयः
कोऽर्थः विशेषेण समस्तनवपदार्थानां जीवाजीवादिकरूपारूपि-
पस्त्वादिषु केवलज्ञानेन कृत्वा परमानन्दै कृत्वा जानति पश्यति । पुनः
कीदृशः ? मया कोऽर्थः बाह्याभ्यन्तरलक्ष्म्या कृत्वा शोभितः । पुनः
कीदृशः ? उभया कोर्थ अत्यतलावप्यकातिसौभाग्यादिभिः शोभया कृत्वा
उपलक्षितः मण्डितः ॥ २ ॥

विनेष्ट जंतोः शरणं रणं रणं क्षमादितो यः कमठं मठं मठं ।
नरामरारामक्रमं क्रमं क्रमं पार्श्वं फणे रामगिरौ गिरौ गिरौ ॥३॥

टीका—य पार्श्वनाथ कमठ विनेष्ट शिक्षयामास । किंविशिष्ट कमठं ? मठ
कोर्थ मठयति कुतापसाना स्वामीत्यर्थः । पुनः कीदृश कमठ ? मठ कोर्थः
सगदं अष्टमदसहितः । कथंभूत पार्श्व ? क्षमादितो गुणत जतोः शरण
कोर्थः क्षमादिगुणसयुक्तानां प्राणिनां शरणीभूतः । पुनः कीदृश पार्श्व ?
रण कोर्थ तत्वार्थभाषिणः । कीदृशं कमठ ? रण कोर्थ सप्रामकारकः ।
पुनः कीदृश पार्श्व ? नरामरारामक्रम कोर्थ मनुष्यदेवानां क्रीडास्थानी-
यचरणयुगलः । पुनः कीदृश पार्श्वनाथ ? क्रम कोर्थ उग्रवशे उत्पन्न
इक्ष्वाकुवश इत्यर्थः । पुनः कीदृश पार्श्व ? क्रम क्रामत्यागत्या क्रामति
भव्यानां हृदयानि कोर्थः आसन्नभव्यानां हृदयानि उल्लसति ॥ ३ ॥

अज्ञानसत्कामलतालतालता यदीयसद्भावनता नता नता ।
निर्वाणसौरुख्यं सुगता गतागता पार्श्वं फणे रामगिरौ गिरौ गिरौ ॥

टीका—अज्ञाने सति सत विद्यमाना ये मनोरथा कामाः शब्दादयो
देहादिकभोगा पुत्रकलत्रगृहधनादिकाः तेषां भोगानां लता वल्ली स वल्लीमे-
(ए) व आल अनर्थं तस्य अनर्थस्य योऽसौ तालः कोर्थ ताडन स्यात् स
क श्रीपार्श्वनाथ तेन साक्षनेन कृत्वा ता लक्ष्मीर्येषां नराणां प्रवर्तते अज्ञान-

सत्कामलतालतालता कल्पते । यस्य पार्श्वनाथस्य संबन्धिनी भक्तपुर्या
 शुद्धभावेन नता नर्घामृता सन्त तेषां नता कल्पते । कादशा मक्ता
 पुर्या : नता कोर्य सर्वैरपि नमस्कृता सम्बैर्छोकै नमस्कृता । पुन
 कीदृशा मक्ता : सुष्ठु अतिशयेन निर्घ्राणसौरभ्यं गता । पुन कीदृशा
 मक्ता पुर्या : गतागता कोर्य गतं ज्ञानं अगतं अनष्टं येषां ते गतागता
 ज्ञानसहिता इत्यर्थः, अथवा अगता कोर्य : गतं नष्टं अगतं अज्ञानं येषां
 ते अगता ज्ञानसहिता पुर्या इत्यर्थः, वायवा आगता कोर्य गतं नष्टं
 अगतं अज्ञानं येषां ते आगता अज्ञानरहिता पुर्या इत्यर्थः । पार्श्वं फणे
 राम पूर्वोक्त अर्थ इति ॥ ४ ॥

विवादिताश्लेषविधिर्विधिर्बिधिर्बिधुर्बभूव सर्प्यावहरी हरी हरी ।

त्रिज्ञानसज्ञानहरोहरोहरो पार्श्वं फणे रामगिरौ गिरौ गिरौ ॥

टीका—पुन कीदृशा पार्श्वनाथ : विवादिताश्लेषविधि कोर्य विवादिना
 या विधौ लक्ष्मीस्तस्या लक्ष्म्या य श्लेष अस्वीकरणं तत्र अल्प-
 करणे विधि व्यापारो यस्य स व्यापारो भवति कोर्य यस्य पार्श्वनाथस्य
 परब्राह्मिणां विद्यायां विषये सा विद्या तुच्छकरणाय व्यापारो अतिशक्तिरिति ।
 पुन कीदृशा पार्श्वं : विधि कोर्य निज आचारत् एत्पर (निजआ-
 चारत्पर) आचाररूप । पुन कीदृशा पार्श्वं : विधि कोर्य अत्रुर्बिधु-
 संघस्य विमर्षमोहोद्योतकर्त्ता जात । पुन कीदृशा पार्श्वं : सर्प्यावहरी
 कोर्य सर्प्याणां विद्वं श्रीपार्श्वनाथस्य नामस्मरणेन कृतं यातीति सर्प्यावह ।
 पुन कीदृशा पार्श्वं : हरि इन्द्र (ई) लक्ष्मी । पुन हरि सूर्य, ई कामः,
 पुन हरि वायु एते सर्वे ई गतौ पाती प्रयोगात् यान्ति गच्छन्ति
 सेवन्ति (ते) ये पार्श्वनाथं स सर्प्यावहरीहरीहरी । पुन कीदृशा पार्श्वनाथ :
 त्रिज्ञान कोर्य य पार्श्वनाथो गर्भान्तरसमये गर्भमध्ये मतिभ्रुतावधि
 इति त्रिज्ञानलक्षण । पुन कीदृशा पार्श्वनाथ : सज्ञानन विगमित

सज्ञान कोर्थः केवलज्ञानेन कृत्वा भव्याना चित्त हरतीति त्रिज्ञानसज्ञानहरः
पुन कीदृशः पार्श्वनाथ. २ अहं कोर्थं सुष्ठु केवलज्ञानप्रकाशकः ॥५॥

यद्विश्वलोकैकगुरुं गुरुं गुरुं विराजिता येन वरं वरं वरं ।

तमालनीलांगभरं भर भरं पार्श्वं फणे रामगिरौ गिरौ गिरौ ॥

टीका—कथभूत पार्श्वं २ यत् सचरणशीलो विनाशाय ईदृशो विश्वलोकः
समस्तलोक. तस्य लोकस्य एकोऽद्वितीयो ज्ञानप्रकाशक. गुरुः श्रीपार्श्वनाथः
त पार्श्वनाथं । पुनः कीदृशं पार्श्वनाथं २ गुरु गुरुतर गरिष्ठ । पुनः कीदृशं पार्श्व-
नाथं २ गुरु वाचस्पतिं वागीश । पुनः किंविशिष्टं पार्श्वनाथं २ भर कोर्थं पोषक
जगत्पोषकं । पुनः कीदृशं पार्श्वनाथं २ भर कोर्थं भातीति भरः बन्धिरूपः तं
भर कातितेजवान् इत्यर्थं । पुनः किंविशिष्टं २ तमालनीलांगभर तमालनील
अंग तमालवन्नील अंग विभर्ति धारयतीति तमालनीलांगभर त । पुनः
कीदृशं पार्श्वं २ विराजितः (त) । पुनः कीदृशं पार्श्वं २ वरं मुक्तिलक्ष्म्या वरं
शील स्वभावं । पुनः कीदृशं पार्श्वं २ वरं निजोपार्जिततत्त्वज्ञानस्य विभाग
स्वभक्तेषु ददातीति वर, पर तु मूककेवलिना तत्त्वज्ञानं न ददाति, मूककेवली
कोर्थं २ यावत् ध्वनिं न उच्छलति तावन्मूककेवली कथ्यते ॥६॥

संरक्षितो दिग्भुवनं वनं वनं विराजिता येषु दिवै दिवै दिवैः ।

पादद्वये नूतसुरासुराः सुराः पार्श्वं फणे रामगिरौ गिरौ गिरौ ॥७॥

टीका—यस्य पार्श्वनाथस्य दिग्भुवनं दिशा एव भुवनं अस्ति, पुनः वनं ज-
लकाय, पुनः वनं वनस्पतिकाय एषा त्रयाणां श्रीपार्श्वनाथः सरक्षति रक्षा
करोति । पुनः यस्य पार्श्वनाथस्य पादद्वये नूता स्तुतिकर्तारः पुरुषा सुराऽ-
सुरा वर्त्तन्ते, पुनः सुरा सुष्ठु विराजन्ते येषु नूतसुरासुरेषु, विराजिता
क २ श्रीपार्श्वनाथचरणविधिये शोभमाना बभूवुव ये के दिवा स्वर्गे नरातु आग-
च्छत् यस्य पार्श्वनाथस्य पादद्वये ई काम वो वरुण आ विष्णु ई
लक्ष्मीश्च वर्त्तन्ते पुनः रा उत्कृष्टो दिवा प्रकाशं भ्रुवन्ति ॥ ७ ॥

रराज नित्य सकलाकला कला ममारवृष्णो वृजिनो त्रिनो त्रिनो ।
संहारपूज्यं वृषमा समा समा पार्श्वं कषे रामगिरौ गिरौ गिरौ ॥८॥

टीका—यत्र पार्श्वनाथे अं ब्रह्म रराजते शोभते । पुन यत्र पार्श्वनाथे
सकलाकला ज्ञानादिककला रराजते शोभते । पुन कला कीदृशी शोभते ।
ज्ञासप्तशिमनोहकला शोभते, कथंमूत पार्श्वनाथ । अमारवृष्ण कोर्धं नि-
ष्कामं कामरहित । पुन कथंमूत पार्श्व । अशुनिन् नि-पाप । पुन क-
थंमूत पार्श्व त्रिनो कोर्धं कर्मबीजनसमर्थं द्विघातनप्रथे । पुन कीदृश
पार्श्व । त्रिन त्रिनान् गणधरादीन् देवादीन् य पार्श्व स अर्वातीति
[आरावयतीति] स त्रिन । पुन कीदृश पार्श्वनाथ । समा कोर्धं यस्य पार्श्व-
नाथस्य समा पूज्या वमूत के संहारा देवा आमरणे सह मूदिते देवैः
ते देवै पूज्ये यस्य पार्श्वस्य समा, सा समा पुन कीदृशी । समा [वृषमा]
कोर्धः अमरदेवानाममरेन्द्राणां मुकुटरत्नतेजसा कृत्वा च पुना रत्नमयीसम-
वशरणस्य कृत्वा कृत्वा शोभिता समा सा समा ॥ ८ ॥

धातुप्रविधीवितर्कः ।

तर्के व्याकरणे च नाटकचये काम्प्याकुले कौशले
विरम्यातो मुषि पद्यनिदिष्टुनिपस्तस्वस्य कोप निधि ।
गंभीरे यमकाष्टकं पठति य संस्तुयसा लभ्यत
धीपद्यप्रमदेषनिर्मितमिदं स्तोत्रं जगन्मंगलं ॥ ९ ॥

टीका—य पुमान् इ* पार्श्वनाथस्य स्तोत्रं पठति य पुर्य संस्तुयसा
कृत्वा संस्तवेन कृत्वा तत्तस्य कार्यं निधि लभ्यते । कथंमूतं स्तोत्रं
धीपद्यप्रमदेषमुनिना निर्मितं निष्पातितं । पुन कीदृशं स्तोत्रं । जगन्मंगलं
श्रेयस्वमंगलनायकं । पुन कीदृशं स्तोत्रं । यमकाष्टकं गंभीरे कोर्धं
कृत्वादिक्त्वा स्तुत्यापरस्वरूपेण मर्तिता अत्रय मुषि पृथिव्यां त्रि-ये धीप

अनंदिमुनिपो विख्यातो वभुव । क^२ तर्कशास्त्रे न केवल तर्कं चान्यत् व्या-
करणेऽपि विख्यातांऽभूत् । पुनः नाटकचये समूहे नाटकशास्त्रसमूहे, पुनः
काव्याकुले कौशले कोर्य. महतनवरसै सह काव्यैः समूहै. कौशले प्रवीण-
चतुरे अतः कारणात् पद्मनदिमुनिः भुवि पृथिव्या विख्यातोऽभूत् ॥९॥

इति श्रीपद्मनंदिमुनिविरचित श्रीपार्श्वनाथस्तोत्र टीकासहित सपूर्णम् । *

* अस्य स्तोत्रस्य दशरा-मशरारूपा एकैव प्रेस-पुस्तिका संप्राप्ता सा तु
'बाबू जुगलकिशोरजी' इत्येतैः संशोधिताप्यतीवाशुद्धा । टीकापि विलक्षणा,
भाषासाहित्यदृष्ट्याप्यशुद्धा ज्ञायते, शब्दानामर्थमपि पूर्णतया न प्रकाशयति ।
स्तोत्रमिदं पद्मप्रभदेवनिर्मितमवभाति । अस्य सशोधने यो मम प्रमाद स
क्षान्तव्य पाठकै ।—सशोधकः ।

नेमिनाथस्तोत्रम् ।



(ब्रह्मरी नेमिबिनस्तुतिः ।)

मनोनात् नमोनेन नुष्मभ्रामिमाननं ।
नेमनामानमनमं मुनिनामितमानुम ॥ १ ॥
नमामानामनिम्नान मामानानामनामिनां ।
नामिने नामिनामोमे नमिनञ्जे नमे नम' ॥ २ ॥
मने नाझामिन नाम नानानिञ्जममानने ।
ननुमेमिमोनेना मोमानामानमभिमा ॥ ३ ॥
मिञ्जमन्मनमामानिमानिनीमालनोन्मना ।
नानानामीमननेमी मनोमनिममानिनां ॥ ४ ॥
मनोमुभिञ्जनं नूनं मुञ्जमन्माननोननं ।
नुष्ममे तोष्टुनानेमि नञ्जाम्नोननमामनु ॥ ५ ॥
नोनष्टुन्मानमानेन मुनीनेनममाननं ।
मीनानमिनमभेमी मनूनां नामिमीममां ॥ ६ ॥
मुनिनमे नेमि नानां निमाने नेमिमानिनां ।
नेमिनामा नमानाना मनोमान ममं नुम ॥ ७ ॥
नेमीनमननं नेमि नमनं नेमिनाननं ।
नेमि नाम्नो नमाञ्जान मानानूत् नमीमम ॥ ८ ॥

इति स्तुतिषे (?) पुरतः पठते
नेमे निजव्यंजनयुग्मसिद्धि ।
श्रीवर्द्धमानोदयशालिनस्ते
स्युः सिद्धिलब्धापरिभोगयेप्पा ॥ ९ ॥

इति नेमिनाथस्तोत्र सपूर्णम् ।*

श्रीमानुकीर्तिविरचितं
शंखदेवाष्टकम् ।

अतमस्रुतषन्धो मोक्षकान्तामिनन्धो
 दलितमदनघाप प्राप्तकैवल्यरूपः ।
 कुमत्वनकुठार शंखरत्नावतारः
 त्रिभुवननुतदेव पातु मां शंखदेवः ॥ १ ॥
 अमिमत्फलरूपो विश्वलोकप्रदीप
 स्तुद्धिनगगनमूर्तिः स्फारकस्थारकीर्तिः ।
 सुकृतजनसवासो मोक्षलक्ष्मीविलास
 त्रिभुवननुतदेव पातु मां शंखदेवः ॥ २ ॥
 अगणितमहिमेशो ज्ञानबोधोपदेशः
 सहस्रपरमकायः प्राप्तनिर्वाणमेह ।
 अधिगतपरमास्यो ज्ञानमज्ञानतीर्थः
 त्रिभुवननुतदेव पातु मां शंखदेवः ॥ ३ ॥
 गुणमणिगणधारो भय्यमाग्याशतारो
 विषुधवनवसन्तो मोक्षलक्ष्मीसुकान्तः ।
 स्यञ्जतमलकसंको धातसंसारपंक
 त्रिभुवननुतदेव पातु मां शंखदेव ॥ ४ ॥
 दिविजमनुजपूज्यस्त्यक्तमाभ्राग्यराग्यो
 वृद्धिननिहरनाश सर्पतस्यप्रकाशः ।

परिणतसुखरूपो निर्जितः कालकूप-
 स्त्रिभुवननुतदेवः पातु मां शंखदेवः ॥ ५ ॥
 विगतजननदोषः सर्वभापाविभूषः
 समवशरणनाथो जैनमार्गे सुतीर्थः ।
 गणधरनुतराजः कोटिबालार्कतेज-
 स्त्रिभुवन नुतदेवः पातु मां शंखदेवः ॥ ६ ॥
 जितमनसिजरूपः कर्मनिर्मूलकोपः
 विनयवनजभानुः वाञ्छितः कामधेनुः ।
 कुवलयवनमित्रो भारतीलोलनेत्र-
 स्त्रिभुवन नुतदेवः पातु मां शंखदेवः ॥ ७ ॥
 जिनपदकमलालिजैनभूते पिकालि-
 मुनिपतिमुनिचन्द्रो शिष्यराजेन्द्रचन्द्रः ।
 सकलविमलसूक्तिर्भानुकीर्तिप्रयुक्ति-
 स्त्रिभुवननुतदेवः मातु मां शंखदेवः ॥ ८ ॥

इति शंखदेवाष्टकम् ।

श्रीयोगीन्द्रदेवविरचितं

निजात्माटकम् ।



निष्क तेलोक्चक्राद्विवसयषमिया ज जिर्णिदा य सिद्धा
अप्ये गंधत्यसस्था गमगमियमजा उषञ्जायसूरिसाह ।
सम्बे सुद्वण्णियादं अशुसरणगुणा मोक्षसंपत्तितम्मा
सोहं श्लाघेमि निष्कं परमपयगओ पिन्वियप्यो नियप्यो ॥१॥
मिस्तो पिन्वाणमंगो गिरुवि गिरुभमो मिक्कलो मिक्कलंको
अव्वावाहो अणेतो अगुरुगलघुगो णामिमञ्जावसाणो ।
सम्मावत्थो सयंभू गयपयडिमलो सासओ सम्भकारं
सोहं श्लाघेमि निष्कं परमपयगओ पिन्वियप्यो नियप्यो ॥२॥
एक्को सम्भाणपिण्हो विमलणहणिहो उडुगामीसहाओ
निष्को वाएयतथो परसरसपिहो मितदेहप्यमाणो ।
सिद्धो सुद्धं सरुओ विदुपरमगुणो अपसओ वो विरक्को
सोहं श्लाघेमि निष्कं परमपयगओ पिन्वियप्यो नियप्यो ॥३॥
ओईणं ज्ञाणगम्मो परमसुहमहो कम्मणोकम्मसुक्को
कायाकारो अक्को फलिकलसमलालेषचत्तो पवित्तो ।
समचारुगुणाडुो गलियइहपरासाणुवंधो विसुद्धो
सोहं श्लाघेमि निष्कं परमपयगओ पिन्वियप्यो नियप्यो ॥४॥
थोरुत्थियपुण्णपुंसो विरयिसयसुहालोयमाणो समाणो
पिदेसो पिन्विसाओ मणवयणसमारंमसंमंघसुंको ।

लोयालोयप्पयासो अविलयणिलयो णिव्विसेसो णिरीसो
 सोऽहं ज्ञायेमि णिच्चं परमपयगओ णिव्वियप्पो णियप्पो ॥५॥
 नादासंखप्पएसो समयमुवगओ णंतसोक्खावठाणा
 छुत्तिण्हातीदभावो भवभयणभयो वंधमुत्तो अमुत्तो ।
 अन्वत्तो णाणगेज्जो जरमरणत्तुदो जो परं वह्मरूओ
 सोहं ज्ञायेमि णिच्चं परमपयगओ णिव्वियप्पो णियप्पो ॥६॥
 सत्त्वणवण्णगंधाइयरविरहियो णिम्ममो णिव्विआरो
 रूवातीदस्सरूओ सयलविमलसद्दस्सण्णगाणवीओ ।
 इट्ठाणिट्ठप्पयोया सुहअसुहवियप्पा सया भावभूओ
 सोहं ज्ञायेमि णिच्चं परमपयगओ णिव्वियप्पो णियप्पो ॥७॥
 रूवे पिंडे पयत्थे ण कलपरिचये जोयिर्विदेण णादे
 अत्थे गंथे ण सत्थे ण करणकिरिया णावरे मंगचारे ।
 साणंदाणंदरूओ अणुमहसुसुसंवेयणाभावपुव्वो
 सोहं ज्ञायेमि णिच्चं परमपयगओ णिव्वियप्पो णियप्पो ॥८॥

इति योगीन्द्रदेवविरचित निजात्माष्टक समाप्तम् ।

अमितिगत्याधार्यकृत

सामायिकपाठ ।

एकद्वित्रिद्विपीकप्रमृतयो मे पंचभत्वस्थिता

जीवाः संशरता मया दशदिशश्चित्तप्रमादात्मना ॥

ते ध्वस्ता यदि लोटिता विभटिता संघटिता मोटिता

मागालोचनमोक्षिना जिन ! तदा मिथ्याऽस्तु मे दुष्कृतं ॥१॥

अहंशक्तिपरायणस्य विशद जैनं बवोऽम्भस्पतो

निर्विद्वस्य परापवादबदने क्षत्तस्य मत्कीर्षने ।

चारिश्रीघतचेतसं क्षपयत कोपादि विद्वेषिणो ।

देवाऽध्यात्मसमाहितस्य सकला संप्यंतु मे शासरा ॥२॥

मालस्याकुलितेन मूढमनसा सन्मार्गनिर्नाशिना

लोमक्रोधमदप्रमादमदनद्वेषादिदिग्घात्मना ।

यदेषाभरितं विरुद्धमधिया चारित्र्यशुद्धेर्मया

मिथ्यादुष्कृतमस्तु भो जिनपते ! तत्त्वत्प्रसादेन मे ॥३॥

वीषाजीवपदार्यतस्वविदुषो वंघाभवौ रुंभत

शश्वत्संवरनिर्जरे विद्वेषतो मुक्तिभिय कांक्षतं ।

देहादेः परमात्मतत्त्वममलं म पश्यतस्तस्यतो

धर्मध्यानसमाधिशुद्धमनस काल प्रयातु प्रभो ! ॥ ४ ॥

कपायमदनिज्जय सकलसंगनिर्मुक्तता

परिप्रपरमोघमो अननद्यु क्षतो मीरुता ।

मुनीन्द्रपदसेवना जिनवचोरुचिस्त्यागिता

हृषीकहरिनिग्रहो निकटनिर्वृतेर्जायते ॥ ५ ॥

विद्विष्टे वा प्रशमवति वा चांधवे वा रिपौ वा

मूर्खौघे वा बुधसदसि वा पत्तने वा वने वा ।

संपत्तौ वा मम विपदि वा जीविते वा मृतौ वा

कालो देव ! व्रजतु सकलः कुर्वतस्तुल्यवृत्तिं ॥ ६ ॥

सुखे वा दुःखे वा व्यसनजनके वा सुहृदि वा

गृहे वाऽरण्ये वा कनकनिकरे वा दृषदि वाऽऽ

प्रिये वाऽनिष्टे वा मम समधियो यांतु दिवसा

दधानस्य स्वांते तव जिनपते ! वाक्यमनघं ॥ ७ ॥

ये कार्यं रचयन्ति निद्यमधमास्ते यांति निद्यां गतिं

ये बंधं रचयन्ति बंधमतयस्ते यांति बंधां पुनः ।

ऊर्ध्वं यांति सुधागृहं विदधतः कूपं खनंतस्त्वधः

कुर्वन्तीति विबुध्य पापविमुखा धर्मं सदा कोविदाः ॥८॥

चेष्टाश्चित्तशरीरत्राधनकरीः कुर्वति चित्तेऽधमाः

सौख्यं यस्य चिकीर्षवोऽक्षवशगा लोकद्वयध्वंसिनीः ।

कायो यत्र विशीर्यते सशतधा भेषो यथाःशारद-

स्तत्रामी बत ! कुर्वते किमधियः पापोद्यमं सर्व्वदा ॥ ९ ॥

कांतेयं तनुभूरयं सुहृदयं मातेयमेषा स्वसा

जानोऽयं रिपुरेष पत्तनमिदं सङ्घेदमेतद्वनं ।

एषा यावदुदेति बुद्धिरधमा संसारसंवर्द्धिनी

तावद्गच्छति निर्वृतिं बत ! कुतो दुःखद्रुमच्छेदिनीं ॥१०॥

नाहं कस्याचिदस्मि कश्चन न मे भावः परो विद्यते
 मुक्त्वात्मानमपास्तकर्मसमितिं ज्ञानेष्वभार्लंकृतिं ।
 यस्यैषा मतिरस्ति चेतसि सदा ज्ञात्वात्मतत्त्वस्थिते
 र्भयस्तस्य न यंत्रितस्त्रिभुवन सांसारिकैर्भयैः ॥ ११ ॥
 विश्रोपायविबद्धितोऽपि न निजो देहोऽपि यत्रात्मनो
 भावा पुत्रफलप्रमिश्रतनया जामावृतातादयः ।
 तत्र स्वं निजपूर्वकर्मवशगां केषां भवति स्फुट
 विज्ञायेति मनीषिणा निजमति कार्या सदात्मस्थिता ॥ १२ ॥
 दुर्मदोच्छिस्तकर्मशैलदलने यो दुर्निघार पवि
 पोतो दुस्तरजन्मसिंधुतरणे यः सर्वसाधारणः ।
 यो नि श्लेषशरीरिरक्षणविधौ शश्वत्स्पितेषाद्भूतः
 सर्वज्ञेन निषेदितः स भयतो घर्मं सदा पातु न ॥ १३ ॥
 यन्मात्रापदवाक्यवाच्यविकलं किंचन्मया मापिष्ठं
 साज्वालासकपापदर्पविषयव्यामोहसक्तात्मनः ? ।
 वाग्देवी बिनयक्रपद्यनिलया तन्मे धमित्वाखिल
 दत्त्वा ज्ञानविष्टुद्धिर्मुर्जिततमां दयादनिर्घंपदं ॥ १४ ॥
 नि सारा मयदायिनोऽश्रुस्तक्ता भोगाः सदा नभरा
 निर्घस्यानभवाच्चिंभाषन्नका विद्याविदां निर्दिताः ।
 नेस्थं चिंतयतोऽपि मे वत ! मतिष्यावच्छते भोगतः
 कं पृच्छामि कमाभयामि कमह मूढः प्रपद्ये विधिं ॥ १५ ॥
 मोहघ्नात्मनेकदोषजनकं मे मर्त्सितुं दीपका
 धुस्कीर्णाधिव भीलित्वाधिव इदि स्यूताविवेन्द्राधित्वा

आश्लिष्टाविव त्रिविताविव सदा पादौ निखाताविव
 स्थेयास्तां लिखिताविवाधदहनौ वद्राविवार्हस्तव ॥१६॥
 संयोगेन दुरंतकल्मषभुवा दुःखं न किं प्रापितो
 येन त्वं भवकानने मृतिजराव्याघ्रत्रजाध्यासिते ।
 संगस्तेन न जायते तव यथा स्वप्नेपि दुष्टात्मना
 किंचित्कर्म तथा कुरुष्व हृदये कृत्वा मनो निश्चलं ॥१७॥
 दुर्गधेन मलीमसेन वपुषा स्वर्गापवर्गश्रियः
 साध्यंते सुखकारणा यदि तदा संपद्यते का क्षतिः ।
 निर्माल्येन विगर्हितेन सुखदं रत्नं यदि प्राप्यते
 लाभः केन न मन्यते व्रत ! तदा लोकस्थितिं जानता ॥१८॥
 मृत्युत्पत्तिवियोगसंगमभयव्याध्याधिशोकादयः
 सूद्यंते जिनशासनेन सहसा संसारविच्छेदिना ।
 सूर्येणैव समस्तलोचनपथप्रध्वंसवद्बोदया
 हन्यंते तिमिरोत्कराः सुखहरा नक्षत्रविक्षेपिणा ॥ १९ ॥
 चित्रारंभप्रचयनपरा सर्व्वदा लोकायात्रा
 यस्य स्वांते स्फुरति न मुनेर्मुष्णाती मुक्तियात्रां ।
 कृत्वात्मानं स्थिरतरमसावात्मतत्त्वप्रचारे
 क्षिप्त्वाशेष कलिलनिचयं ब्रह्मसन्न प्रयाति ॥ २० ॥
 नो वृद्धा न विचक्षणा न मुनयो न ज्ञानिनो नाऽधमा
 नो सूरा न विभीरवो न पशवो न स्वर्गिणो नांडजाः ।
 त्यज्यंते शमवर्त्तिनेव सकला लोकत्रयव्यापिना
 दुर्वारेण मनोभवेन नयता हत्त्वांगिनो वश्यतां ॥ २१ ॥

अथह सहदुःखदानचतुरो वैरी मनोभूर्यं

ध्यानेनैव नियम्यते न तपसा संगेन न ज्ञानिना ।

देहात्मव्यतिरेकबोधजनित स्वामाधिकं निश्चलं

वैरस्यं परमं विहाय क्षमिना निर्वाणदानधर्म ॥ २२ ॥

कः कालो मम कोऽधुना भवमहं वर्त्ते कथं सांप्रतं

किं कम्मात्रं हितं परत्र मम किं किं मे निजं किं परं ।

इत्थं सर्वविचारणाविरहिता दूरीकृतात्मक्रिया

बन्मांभोषिविवाचिंपातनपराः कुर्वन्ति सर्व्वा क्रियाः ॥२३॥

येषां काननमालयं अशुघरो दीपस्तमश्छेदको

मैद्यं भोक्षनमुत्तमं वसुमती अय्या दिक्षस्त्वांबरं ।

संतोषामृतपानपुष्टवपुषो निर्भूय कर्माणि ते

घन्या वांति निवासमस्तविपदं दीनैर्दुरार्यं परं ॥२४॥

माता मे मम गेहिनी मम गृहं मे मांघषा मैज्जवा-

स्तासो मे मम संपदो मम सुखं मे सज्जना मे जना ।

इत्थं घोरममत्त्वतामसबन्धव्यस्तावबोधस्थिति

अर्म्माद्यानविद्यानत स्वहितं प्राणी सनीभस्यते ॥२५॥

विख्यातौ महत्चारितापरिगतात्माजन्मनो वां स्थिरौ

यत्राज्वार्यरसौ परस्परमिमौ विश्लिष्यतोऽग्निगिनौ ।

खेदस्तत्र मनीषिणां ननु कथं बाधे विमुक्ते सति

शास्त्रेतीह विमुष्यतामनुदिनं विश्लेषशोकव्यथा ॥२६॥

तिर्यक्स्तृणपर्णलम्बपृथग्य सृष्टां स्थलीशायिन

धितानंतरलम्बमोगविभवा देवां समं मोगिमि ।

मर्त्यानां विधिना विरुद्धमनसा वृत्तिः कृता सा पुनः
 कष्टं धर्मयशःसुखानि सहसा या सूदते चिंतिता ॥ २७ ॥
 भजसि दिविजयोषा यासि पातालमंगं
 भूमसि धरणिपृष्ठं लिप्स्यसे स्वांतलक्ष्मीः ।
 अभिलषसि विशुद्धां व्यापिनीं कीर्तिकांतां
 प्रशममुखसुखाब्धिं गाहसे त्वं न जातु ॥ २८ ॥
 भोक्तं भोगिनितंविनी सुखमधश्चितां पनीपत्स्यसे
 प्राप्तुं राज्यमनन्यलभ्यविभवं क्षोणीं चनीकस्यसे ।
 लब्धुं मन्मथमंतराः सुरवधूनीकं चनीस्कद्यसे
 रे भ्रांत्या ह्यमृतोपमं जिनवचस्त्वं नापनीपद्यसे ॥ २९ ॥
 मीमे मन्मथलुब्धके बहुविधव्याध्याधिदीर्घद्रुमे
 रौद्रारंभहृषीकपासिकगणे मृज्जद्धतैणद्विषि ? ।
 मा त्वं चित्तकुरंगजन्मगहने जातु भ्रमी ईश्वर ?
 प्राप्तुं ब्रह्मपदं दुरापमपरैर्यद्यस्ति वांछा तव ॥ ३० ॥
 व्यसननिहतिर्ज्ञानोद्युक्तिर्गुणोज्वलसंगतः
 करणविजितिर्जन्मत्रस्तिः कषायनिराकृतिः ।
 जेनमतरतिः संगत्यक्तिस्तपश्चरणाध्वनि
 तरितुमनसो जन्मांभोधे भवंतु जिनेन्द्र ! मे ॥ ३१ ॥
 वित्रव्याधातवृक्षे त्रिषयसुखतृणास्वादनाशक्तचित्ता
 निस्त्रंशरारसता जनहरिणगणाः सर्वतः संचरद्भिः ।
 खाद्यंते यत्र सद्यो भवमरगजराखापदैर्भीमरूपै-
 स्तत्र तस्मात् कर्मणो भवगहनने नः खदावाधितसे ॥ ३२ ॥

न वैद्या न पुत्रा न विप्रा न शक्रा

न कांवा न माता न मृत्या न भूपाः ।

यमालिगितं रक्षितुं संति शक्ता

विचिन्त्येति कार्यं निष्कं कार्यमार्यै ॥ ३३ ॥

विधिप्रैरुपायैः सदा पान्त्रमान

स्वकीयो न देह समं यत्र याति ।

कर्म बाह्यभूतानि विचानि तत्र

प्रबुद्धयेति कृतो न कुत्रापि मोह ॥ ३४ ॥

क्षिप्रे दुष्टे सदापि विपिने कांचनेऽलोष्ठवर्गे

सौख्ये दुःखे श्रुति नरवर संगमे यो वियोगे ।

अश्रद्धीरो भवति सद्यो द्वेषरागभ्यपोढ

शौढा स्त्रीष पृथितमहसस्तप्तसिद्धि करस्या ॥ ३५ ॥

अभ्यस्ताश्चकयायवैरिविजया विध्यस्तलोकक्रिया

बाह्याभ्यंतरसंगमांश्चविमुखा कृत्वात्मवश्य मनः ।

ये भ्रष्टं मयभोगदेहविषय वैरान्यमध्यासते

ते गच्छन्ति शिवालय विकल्पिता लब्ध्वा समाधिं शुभाः ॥ ३६ ॥

संघस्तस्य न साधन न गुरवो नो लोकपूजापरा

नो योग्यैस्तृणकाष्ठतैलधरणीपृष्ठे कृत संस्तरः ।

कर्तात्मैव विबुद्धपतामयमलस्तस्यात्मतत्त्वस्थिरो

जानानो जलदुग्धयोरिवमिदां देहात्मनो मर्बदा ॥ ३७ ॥

विगलितविषय म्व प्रस्थित बुध्यते यः

पथिकमिव शरीरे नित्यमात्मानमात्मा ।

विषमभवपयोधिं लीलया लंघयित्वा

पशुपदमिव सद्यो यात्यसौ मोक्षलक्ष्मीं ॥ ३८ ॥

बाह्यं सौख्यं विषयजनितं मुच्यते यो दुरंतं

स्थेयं स्वस्थं निरुपममसौ सौख्यमाप्नोति पूतं ।

योऽन्यैर्जन्यश्रुतिविरतये कर्णयुग्मं पिघत्ते

तस्य च्छन्नो भवति नियतः कर्णमध्येपि घोषः ॥३९॥

संयोगेन विचित्रदुःखकरणे दक्षेण संपादिता-

मात्मीयां सकलत्रपुत्रसुहृदं यो मन्यते संपदं ।

नानापायसमृद्धिवर्द्धनपरां मन्ये ऋणोपार्जितां

लक्ष्मीमेष निराकृतामितिगतिर्ज्ञात्वा निजां तुष्यति ॥४०॥

यत्पश्यामि कलेवरं बहुविधव्यापारजल्पोद्यतं

तन्मे किञ्चिदचेतनं न कुरुते मित्रस्य वा विद्विषः ।

आत्मा यः सुखदुःखकर्मजनको नाऽसौ मया दृश्यते

कस्याहं वत ! सर्वसंगविकलस्तुष्यामि रुष्यामि च ॥४१॥

क्रोधाबद्धधिया शरीरकमिदं यन्नाश्यते शत्रुणा

सार्धं तेन विचेतनेन मम नो काप्यस्ति संब्रंघता ।

संब्रंघो मम येन शश्वदचलो नात्मा स विध्वंसते

न कापीति विधीयते मतिमता विद्वेपरागोदयः ॥४२॥

एकत्राऽपि कलेवरे स्थितिधिया कर्माणि संकुर्वता

गुर्वी दुःखपरंपरानुपरता यत्रात्मना लभ्यते ।

तत्र स्थापयता विनष्टममतां विस्तारिणीं संपदं

का शक्रेण नृपेश्वरेण हरिणा न प्राप्यते कथ्यतां ॥ ४३ ॥

ये माया परिषर्षिता विदधते कायोपकारं पुन-
 स्ते संसारपयोधिमज्जनपरा जीवापकारं सदा ।
 जीवानुग्रहकारिणो विदधते कायापकारं पुन
 निश्चित्येति विमुच्यतेऽनघधिया कायोपकारि त्रिधा ॥४४॥

आत्मा ज्ञानी परमममलं ज्ञानभासेव्यमान
 कायोऽज्ञानी वितरति पुनर्धोरमज्ञानमेव ।
 सर्वत्रेदं अगति विदित दीयते विद्यमानं
 कश्चित्पागी न हि स्वकुसुमं कापि कस्यापि दत्ते ॥ ४५ ॥

कांक्षंत सुखमात्मनोऽनर्बसितं हिंसापरैर्कर्मभि
 दुःखोद्रेकमपास्तसंगधिपगा कुर्वति पिक्वाभिन ।
 बाधां किं न विवर्द्धयंति विविधैः कंठ्यनैः कुटिन
 सर्वांगावयवोपमर्दनपरैः खर्भूकपाकांक्षिण ॥ ४६ ॥

भ्यापारं परिमुच्य सर्वमपरं रत्नत्रय निर्मल
 कुर्वाणो मृगमात्मनः सुहृदसावात्मप्रवृत्तोऽन्यथा ।
 वैरी दुःसहस्रन्मंगुप्तिमघने क्षिप्त्वा सदा यातय
 त्यालोप्येति स तत्र वन्मशक्तितैः कार्यः स्थिर कोविदैः ४७

मूढ संपदविष्टितो न त्रिपद संपदिविष्वंनिनी
 दुर्धारां जनमर्दनीमुपयतीमात्मात्मनः पश्यति ।
 वृक्षभ्यान्नतरक्षुपभगमृगन्धाघादिभिः संकलं
 कश्च वृक्षगतां हुताशनश्लिखां प्रलोप्यतीमिव ॥ ४८ ॥

आत्मात्मानमश्नपचाष्टविकलं भ्यालोरुपभात्मना
 दुष्प्रापां परमात्मतामनुपमामापद्यते निश्चितं ।

आत्मानं घनरूढकीचकचयः किं घर्षयन्नात्मना
 बन्धित्वं प्रतिपद्यते न तरसा दुर्वारतेजोमयं ॥ ४९ ॥
 व्यासक्तो निजकायकार्यकरणे यः सर्वदा यायते
 मूढात्मा स कदाचनापि कुरुते नात्मीयकार्योद्यमं ।
 दुर्वारेण नरेश्वरेण महति स्वार्थे हठाद्योजिते
 भीतात्मा न कथंचनाऽपि तनुते कार्यं स्वकीयं जनः ॥५०॥
 लक्ष्मीकीर्तिकलाकलापललनासौभाग्यभोग्योदया-
 स्त्यज्यन्ते स्फुटमात्मनेह सकला एतैः सतामर्जितैः ।
 जन्मांभोधिनिमज्जिकर्मजनकैः किं साध्यते कांक्षितं
 यत्कृत्वा परिमुच्यते न सुधियस्तत्रादरं कुर्वते ॥५१॥
 हेया [पा] देयविचारणाऽस्ति न यतो न श्रेयसामागमो
 वैराग्यं न न कर्मपर्वतभिदा नाप्यात्मतत्त्वस्थितिः ।
 तत्कार्यं न कदाचनापि सुधियः स्वार्थोद्यताः कुर्वते
 शीतं जातु नुनुत्सवो न शिखिनं विध्यापयन्ते बुधाः ॥५२॥
 कामक्रोधविषादमत्सरमदद्वेषप्रमादादिभिः
 शुद्धध्यानविवृद्धिकारिमनसः स्वैर्यं यतः क्षिप्यते ।
 काठिन्यं परितापदानचतुरैर्हेमो हुताशैरिव
 त्याज्या ध्यानविधायिभिस्तत इमे कामादयो दूरतः ॥५३॥
 व्यावृत्त्येन्द्रियगोचरोग्रहने लोलं चरिष्णुं चिरं
 दुर्वारं हृदयोदरे स्थिरतरं कृत्वा मनोमर्कटं
 ध्यानं ध्यायति मुक्तये श्रमते निर्मुक्तभोगस्पृहो
 नोपायेन विना कृता हि विधयः सिद्धिं लभन्ते ध्रुवं ॥५४॥

भेदाकर्षणहतागकाप्रभृतयो यस्य व्यपायेऽखिला
 ज्ञायते भुवनप्रकाशकुशला ध्यातप्रतानोपमा ।
 यदिज्ञानमयप्रकाशविश्वं यदुपायते योगिभि-
 स्तत्तत्त्वं परिषितनीयममल देहस्थित निश्चितं ॥५५॥

मज्यंतेत्यशरीरमंदिरमिदं ? मृष्युद्विपेन्द्र क्षणा-
 दित्युष्वासमिपप मानसप्रहिनिंग्गत्य निर्गत्य किं ।
 पश्यंतं न निरीक्षसेऽतिचकितं तस्यागतिं चेतनां
 धैर्येनामग्धेष्टितानि कुरुपे निर्धर्मकर्मोद्यम ॥५६॥

करिष्यामीदं कृतमिदमिदं कृत्यमधुना
 करोमीति व्यग्रं नयसि सकलं कालमफलं ।
 सदा रागद्वेषप्रख्यनपरं स्वार्थविमुक्तं
 न जैनेऽपिकृत्वे वचसि रमसं निर्वृत्तिकरे ॥ ५७ ॥

शुवाप्योपि निरंतरामनुदिनं पाषां विरुद्धक्रियां
 पमारोपितमानसैर्न रुचिमिर्व्यापघते कथन ।
 भ्रम्मापोद्भवियः परस्परमिमं निघंति निष्कारणं
 यत्तद्धर्ममपास्य नास्ति भुवने रक्षाकरं देहिनां ॥ ५८ ॥

नानात्मपरायणैर्नरघरैरात्वर्य्यं यस्त्यज्यत
 दुःप्राप्योऽपि परिग्रहस्तुणमिव प्राणप्रयाप्ये पुनः ।
 आदावेव विमुञ्च दुःखजनकं तत्त्वं त्रिधा दूरत
 भेतो मस्करिमोदकम्भतिकरं हास्यास्पदं मा व्यधा ॥५९॥

स्वामिप्रायवशाद्विभिन्नगतयो ये भ्रातृपुत्राद्य
 स्तास्त्रं मीलयितुं करोपि सततं चित्तप्रयासं वृथा

गच्छंतः परमाणवो दश दिशः कल्पांतवातेरिताः

शक्यंते न कदाचनापि पुरुषैरेकत्र कर्तुं श्रवं ॥ ६० ॥

भोजभोजमपाकृता हृदय ! ये भोगास्त्वयाऽनेकधा

तांस्त्वं कांक्षामि किं पुनः पुनरहो तत्राऽग्निनिक्षेपिणः ।

वृत्तिस्तेषु कदाचिदस्ति तव नो वृष्णोदयं विभ्रतो

देशे चित्रमरीचिसंचयचिते वल्ली कुतो जायते ॥ ६१ ॥

शूरोऽहं शुभधीरहं पटुरहं सर्वाऽधिकश्रीरहं

मान्योऽहं गुणवानहं विभुरहं पुंसामहमग्रणीः ।

इत्यात्मन्नपहाय दुष्कृतकरीं त्वं सर्वथा कल्पना

शश्वद्ध्याय तदात्मतत्त्वममलं नैःश्रेयसी श्रीर्यतः ॥ ६२ ॥

धृतविविधकपायग्रंथालिगव्यवस्थं

यदि यतिनिकुरंवं जायते कर्मरिक्तं ।

भवति ननु तदानीं सिंहपोताऽविदार्य ?

शशकनलकरंध्रे हस्तियूथं प्रविष्टं ॥ ६३ ॥

कष्टं वंचनकारिणीष्वपि सदा नारीषु तृष्णा पराः

शर्मशां न कदाचनापि कुधियो मर्त्या विपर्याशया ।

मुंचंते मृगतृष्णिकाष्विव मृगाः पानीयकांक्षा यतो

धिवतं मोहमनर्थदानकुशलं पुंसामवार्योदयं ॥ ६४ ॥

पापाऽनोकुहसंकुले भववने दुःखादिभिर्दुर्गमे

यैरज्ञानवशः कषायविषयैस्त्वं पीडितोऽनेकधा ।

रे तान् ज्ञानमुपेत्य पूतमधुना विव्वंसयाऽशेषतो

विद्वांसो न परित्यजंति समये शत्रूनज्हत्वा स्फुटं ॥ ६५ ॥

असिमसिद्धपिविषाशित्पिवाणिज्ययोगै
 स्तनुधनमुतहेतो कर्म यादृक्करोपि ।
 सकृदपि यदि तादृक् सयमार्यं विधत्से
 सुखममलमनंतं किं तदा नाञ्जुयेज्ज ॥ ६६ ॥
 सुखजननपट्टनां पावनानां गुणानां
 भवति मपदि कर्त्ता सर्वलोकोपरिस्थ ।
 भिदस्यशिश्वरिभूधाऽविष्टितस्येह पुंसः
 स्वयमवनिरक्षस्ताज्जायते नाखिला किं ॥ ६७ ॥
 दिनकरकरजाले शैत्यमुष्णस्त्रिमिदो
 सुरशिश्वरिणि आतु प्राप्यते वंगमर्षं ।
 न पुनरिह कदाचिद् घोरसंसारचक्र
 स्फुटमसुखनिधाने आम्यता शर्म पुत्रा ॥ ६८ ॥
 कार्ये कर्मविनिमित्तं बहुविधं स्थूलाणुबीर्यादिभि
 र्नात्मा याति कदाचनापि विकृतिं संख्यमानः स्फुटं ।
 रक्तारक्तमितामितादिवसनैरावष्टमानोऽपि किं
 रक्तारक्तसितामितादिगुणितामापद्यत विग्रह ॥ ६९ ॥
 गारो रूपघणे दृढ परिदृढ स्पृल कृश कर्कशो
 गीघाणो मनुज पशुनरकभू पदः पुमानंगना ।
 मिथ्या चं विदधामि कल्पनमित् मूढोऽविपुष्यात्मनो
 नित्यं श्रानमपम्बभावममलं सर्वव्यपायश्रुत ॥ ७० ॥
 सव्यांरंभकपायसंगरहितं गुदोपयोगोद्यत
 तद्रूपं परमात्मना विकलितं प्रातम्यपेधाऽतिगं ।

तन्निःश्रेयसकारणाय हृदये कार्यं सदा नापरं
 कृत्यं कापि चिकीर्षवो न सुधियः कुर्वति तद्ध्वंसकं ॥७१॥
 यो जागर्ति शरीरकार्यकरणे वृत्ती विधत्ते यतो
 हेयादेयविचारशून्यहृदये नात्मक्रियायामसौ ।
 स्वार्थं लब्धुमना विमुंचतु ततः शश्वच्छरीरादरं
 कार्यस्य प्रतिबंधके न यतते निष्पत्तिकामः सुधीः ॥७२॥
 भीतं मुंचति नांतको गतघृणो भैपीद्वया मा ततः
 सौख्यं जातु न लभ्यतेऽभिलषितं त्वं माभिलापीरिदं ।
 प्रत्यागच्छति शोचितं न विगतं शोकं कृथा मा वृथा
 प्रेक्षापूर्वविधायिनो विदधते कृत्यं निरर्थं कथं ॥७३॥
 स्वस्थे कर्मणि शाश्वते विकलिले विद्वज्जनप्रार्थिते
 संप्राप्ये रहसात्मना स्थिरधिया त्वं विद्यमाने सति ।
 बाह्यं सौख्यमवाप्तुमंतविरसं किं खिद्यसे नश्वरं ।
 रे सिद्धे शिवमंदिरे सति चरौ मा मूढ ! भिक्षां भ्रमः ॥७४॥
 अभिलषति पवित्रं स्थावरं शर्म लब्धु-
 धनपरिजनलक्ष्मीं यः स्थिरीकृत्य मूढः ।
 जिगमिषति पयोधेरेष पारं दुरापं
 प्रलयसमयवीचीं निश्वलीकृत्य शंके ॥ ७५ ॥
 ये दुःखं वितरंति घोरमनिशं लोकद्वये पोषिता
 दुर्वारा विषयारयो विकरुणाः सर्वांगशर्माश्रयाः ।
 प्रोच्यंते शिवकांक्षिभिः कथममी जन्मावलीवर्द्धिनो
 दुःखोद्रेकविवर्धनं न सुधियः कुर्वति शर्मार्थिनः ॥७६॥

हृषीकेशं परिणाममेति विमल स्वर्गापवर्गभिर्यं
 प्राणीकश्मलमुग्रदुःखजनिकां शुभ्रादिरीतिं यत् ।
 गृहणाना ? परिणाममाद्यमपरं भ्रुवंति संतस्तव
 कुर्वन्तीह कुत कदाभिददित्वा हित्वा हितं धीमनाः ॥७७॥
 नरकगमिमशुद्धं सुदरं स्वर्गवासं
 शिवपदमनवद्यं याति शुद्धैरकमा ।
 स्फुटमिह परिणामैवेतन् योप्यमानै-
 रिति शिवपदकामैस्त विधेया विमुखा ॥ ७८ ॥
 श्रमप्राणमविसङ्गमंतरहितं दुःखेभ्यमन्योन्यजं
 दाहच्छेदविमेदनादिजनित दुःख विरथां परं ।
 नृणां रोगवियोगजन्ममरण स्वर्गोक्तां मानसं ।
 विभवं धीस्य सदाति कष्टकलिष कार्यामतिर्मुक्तये ॥ ७९ ॥
 कार्यं रूपमिदं क्षुब्धेन सलिले सांसारिकं सर्वथा
 सर्वं नश्यति यत्नतेऽपि रचितं कृत्वाऽभ्रम दुष्करं ।
 यत्प्रापि विधीयते क्व ! कृतो मूढ ! प्रवृत्तिस्त्वया
 कृत्ये कापि हि केवलमभ्रकरे न व्याप्रियंते शुभा ॥ ८० ॥
 विश्रोपद्रवसंकुलामृरुमलां नि स्वस्थतां संसृतिं
 मुक्तिं निरप्यनिरंतरोभवत्सुखामापत्तिमिर्वर्जितां ।
 प्राची कोपि कृपायमोहितमतिर्नो तत्त्वतो बुध्यते
 मुनस्वा दृष्टिमनुत्तमामपरया किं संसृतौ रम्यते ॥८१॥
 रे दुःखादयकारणं गुरुतरं बध्नेति पापं वनाः
 कर्वाणा भद्रकांक्षया भद्रविधा त्रिसापराः पट्टकियाः ।

नीरोगत्वचिकीर्षया विदधतो नापथ्ययुक्तीरमी
 सर्वाङ्गीणमहो व्यथादयकरं किं यांति रोगोदयं ॥ ८२ ॥
 रौद्रैः कर्म महारित्तिर्त्तव ? वने योगिन् ! विचित्रैश्चिरं
 नायं नायमवापितस्त्वमसुखं यैरुच्चकैर्दुःसहं ।
 तान् रत्नत्रयभावनासिलतया न्यकृत्य निर्मूलतो
 राज्यं सिद्धिमहापुरेऽनघसुखं निष्कंटकं निर्विश ॥ ८३ ॥
 यो ब्राह्मार्थं तपसि यतते ब्राह्ममापद्यतेऽसौ
 यस्त्वात्मार्थं लघु स लभते पूतमात्मानमेव ।
 न प्राप्यन्ते कचन कलमाः कोद्रवै रोप्यमाणै-
 विज्ञायेत्यं कुशलमतयः कुर्वते स्वार्थमेव ॥ ८४ ॥
 कांतासन्नशरीरजप्रभृतयो ये सर्वथाऽप्यात्मनो
 मिन्नाः कर्मभवाः समीरणचला भावाग्रहिर्भाविनः ।
 तैः संपत्तिमिहात्मनो गतधियो जानन्ति ये शर्मदां
 स्वं संकल्पवसेन ते विदधते नाकीशलक्ष्मीः स्फुटं ॥ ८५ ॥
 यद्रक्तानां भवति भुवने कर्मवंधाय पुंसां
 नीरागाणां कलिमलमुखे तद्वि मोक्षाय वस्तु ।
 यन्मृत्यर्थं दधिगुडघृतं संनिपाताकुलानां
 नीरोगाणां वितरति परां तद्वि पुष्टिं प्रकृष्टां ॥ ८६ ॥
 सम्यग्दर्शनबोधसंयमतपःशीलादिभाजोपि नो
 संक्लेशो विनिवर्त्तते भवभृतो लोभानलं विभ्रतः ।
 विभ्राणस्य विचित्ररत्ननिचितं दुष्प्राप पारंपयः
 संतापं किमुदन्वतो न कुरुते मध्यस्थितो वाडवः ॥ ८७ ॥

मोहांधानां स्फुरति हृदये घासमात्मीयपुद्गला
 निर्मोहानां व्यपगतमल घासदात्मव नित्यं ।
 यच्चन्द्रेदं यदि विविदिषा ते स्वकीय स्वकीयै
 र्मोहं चित्त ! धृपयसि तदा किं न दुष्टं धृषेण ॥ ८८ ॥

स्वात्मारोपितशीलसयमभरास्त्यक्तान्यसाहायका
 कायेनापि विलसामाणहृदयाः साहायक कुर्वते ।
 तर्प्यते परदुष्करं गुस्तपस्तथापि ये निस्पृहा
 अन्मारम्भमसीश्य भूरिमयद गच्छंति ते निर्धृति ॥ ८९ ॥

पूर्वं कर्म करोति दुःखमल्लभं सौख्यं श्रुतं निर्मितं
 विज्ञायेत्यश्रुतं निर्हतुमनसो ये पोषयन्ते तप ।
 जायन्ते समसंप्रमैकनिधयस्ते दुर्लभा योगिनो
 ये त्वश्रोमयकर्मनाशनपरास्तेषां किमश्रोच्यते ॥ ९० ॥

विच्छेद्यं यदुदीय्य कर्मरमसा ससारविस्तारकं
 साधूनामुदयागतं स्वयमुदं विच्छेदनं कः भ्रमः ।
 यो गत्वा विजिगीषुणा बलवता वैरी हठाद्यन्यते
 नाहत्वा गृहमागतः स्वयमसौ संत्यज्यते कोविदैः ॥ ९१ ॥

ब्रजति सृष्टमघस्ताद्गुणमाषेर्षवाते
 गतभरमुपरिष्ठात्तत्र संत्यज्यमाने ।
 इतकहृदयतद्वेषेण ? यद्गुलाग्र
 अहि इरितइतुं तेन संगे त्रिधापि ॥ ९२ ॥

सद्यो हंति दुरंतसंस्वृतिकरं यत्पूर्वकं पातकं
 हृदयपर्यं विमल विभाय मलिनं तत्सेवते यस्तपः ।

शुद्धिं याति कदाचनापि गतधीर्नासावद्यावर्जकं ?

एकीकृत्य जलं मलाचिततनुः स्नातः कुतः शुद्धति ॥९३॥

लब्ध्वा दुर्लभभेदयोः सपदि ये देहात्मनोरतरं

दग्ध्वा ध्यानहुताशनेन मुनयः शुद्धेन कर्मधनं ।

लोकालोकविलोकिलोकनयना भूत्वाद्विलोकार्चिताः

पंथानं कथयन्ति सिद्धिवसतेस्ते संतु नः शुद्धये ॥ ९४ ॥

येषां ज्ञानकृशानुरुज्वलतरः सम्यक्त्ववातेरितो

विस्पष्टीकृतसर्वतत्त्वसमितिर्दग्धे विपापैधसि ।

दत्तोत्तप्तिमनस्तमस्ततिहतिर्देदीप्यते सर्वदा

नाश्वर्यं रचयन्ति चित्रचरिताश्चारित्रिणः कस्य ते ॥ ९५ ॥

यावच्चेतसि बाह्यवस्तुविषयः स्नेहः स्थिरो वर्तते

तावन्नश्यति दुःखदानकुशलः कर्मप्रपंचः कथं ।

आर्द्रत्वे वसुधातलस्य सजटाः शुष्यन्ति किं पादपा

भृत्स्वत्तापनिपातरोधनपराः शाखोपशाखान्विताः ॥९६॥

चक्री चक्रमपाकरोति तपसे यत्तन्न चित्रं सतां

सूरीणां यदनश्वरीमनुपमां दत्ते तपः संपदं

तच्चित्रं परमं यदत्र विषयं गृह्णाति हिच्चा तपो

दत्तेऽसौ यदनेकदुःखमवरे भीमे भवांभोनिधौ ॥९७॥

रामाः पापा विरामास्तनयपरिजना निर्मिता बह्वहनर्था

गात्रं व्याध्याधिपात्रं जितपवनजवा मूढलक्ष्मीरशेषा

किं रे दृष्टं त्वयात्मन् ! भवगहनवने आम्यता सौख्यहेतु-

र्येन त्वं स्वार्थनिष्ठो भवसि न सततं बाह्यमत्यस्य सर्व्वं ॥९८॥

सम्यक्त्वज्ञानवृत्तप्रयमनधमृते ज्ञानमात्रेण मृष्टा

लंघिष्वान्मदुर्गे निरुपमितसुखां ये पिशासति सिद्धि ।

ते सिन्धीपति नूनं निव्वपुरमुदधिं बाहुयुग्मेन तीष्वा

कल्यातोद्भूतवात्तसुमितञ्जलचरासारकीणान्तरालं ॥ ९९ ॥

ये ज्ञास्वा मवमुक्तिकारणगणं शुद्ध्या सदा शुद्ध्या

कृत्वा चेतसि मुक्तिकारणगणं त्रेधा विमुष्यापरं ।

बन्मारप्पनिमूदनधममरं जैनं तपः कुर्वते

तेषां जन्म च जीवितं च सकलं पुष्यात्मना योगिना ॥ १०० ॥

यो नि भेषसशर्मदानकुञ्जलं संत्यज्य रत्नत्रयं

मीमं दुर्गमवेदनोत्थकरं भोग मिथः सेवते

मन्वे प्राणविपर्ययादिजनकं हालाहलं धरमते

सद्यो बन्मजरांतकञ्जयकरं पीयूषमत्यस्य सः ॥ १०१ ॥

मवति मविनः सौख्यं दुःखं पुराकृतकर्मणः

स्फुरति हृदये रागो द्वेषः कदाचन मे कथं ।

मनसि समतां विद्वायेत्यं तपोर्विदधाति यः

क्षपयति सुधीः पूर्वं पापं क्षिनोति न नृत्तनं ॥ १०२ ॥

क्षपयितुमना कर्मनिष्ठं तपोभिरनिन्दितं

नयति रममा बुद्धिः नीचः कषायपरायणः ।

पुषजनमतै किं मैपज्यैर्निमूदितुमुषत

प्रययति गर्दं तं नापम्मात् कदर्थितविग्रहं ॥ १०३ ॥

सद्गुरुनययपोपणाय धनुपस्ताभ्यस्य रथा परा

दक्षयेऽनुनमात्रकं गतमलं बन्मोर्धिमिर्दात्मिः ।

लज्जंते परिगृह्य मुक्तिविषये वद्वस्पृहा निस्पृहा-
स्ते गृह्णन्ति परिगृहं दमधराः किं संयमध्वंसकं ॥ १०४ ॥
ये लोकोत्तरते च दर्शनपरां दूतीं विमुक्तिश्रिये
रोचंते जिनभारतीमनुपमां जल्पन्ति शृण्वन्ति च
लोके भूरिकपायदोषमलिने ते सज्जना दुर्लभा
ये कुर्वन्ति तदर्थमुत्तमधियस्तेपां किमत्रोच्यते ॥१०५॥
ये स्तूयां जन्मसिंधोरसुखमितिततेर्लीलया तारयित्वा
नित्यं निर्वाणलक्ष्मीं बुधसमितिमतां निर्मलामर्षयन्ते ।
स्वाधीनास्तेऽपि यत्तदव्यपगतमतिभिर्ज्ञानसम्यक्त्वपूर्वाः
पोष्यन्ते नान्यपेक्षां मम परममुभौ विद्यते नात्र चित्रं ॥१०६॥
ध्रुवापायः कायः परिभवभवाः सर्वविभवाः
सदानार्या भार्याः स्वजनतनयाः कार्यविनयाः
असारे संसारे विगतशरणे दत्तमरणे
दुराराधे गाधे किमपि सुखदं नापदपदं ॥ १०७ ॥
असुरसुरविभूनां हन्ति कालः श्रियं यो
भवति न मनुजानां विघ्नतस्तस्य खेदः
विचलयति गिरीणां चूलिकां यः समीरो
गृहशिखरपताका कंपते किं न तेन ॥ १०८ ॥
सकललोकमनोहरणक्षमाः
करणयौवनजीवितसंपदः
कमलपत्रपयोलवचंचलाः
किमपि न स्थिरमस्ति जगत्त्रये ॥ १०९ ॥
बलवतो महिषाधिपवाहनो
निरुनिलिपपतीनपहन्ति यः

अपरमानववगविमर्दने,

भवति तस्य कदाचन न भ्रमः ॥ ११० ॥

स्वजनसंगतिरेव विद्याविनी

भवति यौबनिष्ठा ब्रह्मा रसा

विपदवैति सखी वच संपद

किमपि शुष्मविधायि न दृश्यते ! ॥ १११ ॥

सचिषमंत्रिपदातिपुरोहिता

भिदशस्त्रेघरदैत्यपुरंदराः ।

यममटेन पुरस्कृतमातुरं

भवमृत प्रमबंधि न रक्षितुं ॥ ११२ ॥

घलकृतोऽश्वनतोपि विपद्यते

यदि जनो न तदापरयः कर्ये ।

यदि निहति शिष्टं जननी हिता

न परमस्ति तदा शरभं ध्रुवं ॥ ११३ ॥

विविधसंग्रहकल्मषमंगिनो

विदघतेगकुटुंबकहतवे ।

अनुभवत्यसुखं पुनरेकका

नरकनासमुपेत्य सुदुस्तदं ॥ ११४ ॥

वसनषाहनमोक्षणमंदिरं

सुखकरैश्चिरयासमुपासितं ।

भवति यत्र सभ न कलेवरं

किमपरं वत ! तत्र गमिष्यति ॥ ११५ ॥

सख्य नागमदो दमयति ये

कथममी विपया न परं नरं ।

समददंतिमदं दलयन्ति ये

न हरिणं हरयो रहयन्ति ते ॥११६॥

मरणमेति विनश्यति जीवितं

द्युतिरटौति जरा परिवर्द्धते

प्रचुरमोहपिशाचवशीकृत-

स्तदपि नात्महिते रमते जनः ॥११७॥

जननमृत्युजरा नलदीपितं

जगदिदं सकलोऽपि विलोकते ।

तदपि धर्ममतिं विदधाति नो

रममना विषयाकुलिनो जनः ॥११८॥

क्वचन भजति धर्मं काप्यधर्मं दुरंतं

क्वचिदुभयमनेकं शुद्धबोधोऽपि गेही

कथमिति गृहवामः शुद्धिकारी मलाना-

मिति विमलमनस्कैस्त्यज्यते स त्रिधापि ॥११९॥

सर्वज्ञः सर्वदर्शी भवमरणजरातकशोकव्यतीतो

लब्धात्मीयस्वभावः क्षतसकलमलः शश्वदात्मानपायः ।

दक्षैः संकोविताक्षैर्भवमृत्तिचकितेलोक्कयात्रानपेक्षै-

र्नष्टान्नाधात्मनीनस्थिरविशदसुखप्राप्तये चिंतनीयः ॥१२०॥

वृत्तविंशशतेनेति कुर्वता तत्त्वभावनां ।

सद्योऽमितगतेरिष्टा निर्वृतिः क्रियते करे ॥ १२१ ॥

इति द्वितीयभावना समाप्ता । *

सिरिपठमपंडिमुष्णिभा रश्म

धम्म—रसायण ।

- -

धम्मिअण्य दवद्वर्षं धरणिण्णरिंदइदपुयचलणं ।

णार्थं जस्स अणंत लोयालोय पयासेइ ॥ १ ॥

नखा तेवदेयं धरणेअनरेन्वेअस्तुतधरणं ।

आनं यस्यानम्तं ओकअओकं प्रकाशयति ॥

बुद्धजममणोहिरामं जाइजरामरणदुक्खुयासयरं ।

इइपरलोयइज (द)स्य तं धम्मरसायणं वोच्छं ॥ २ ॥

बुधजनमनोऽमिरमं जातिअरामरणदु खनाशकरं ।

इइपरओकहितार्थं तं धम्मरसायणं वक्ष्ये ॥

धम्मो तिलोयबंभू धम्मो सरणं इवे तिहुयणस्स ।

धम्मेष पयणीओ होइ णरो सुव्वलोयस्स ॥ ३ ॥

धमं त्रिलोकवन्धु धर्मं शरणं मवेत् त्रिभुवनस्य ।

धर्मेण पूजनीयं भवति नरं सर्वलोकस्य ॥

धम्मेष कूलं विउलं धम्मेष यं दिव्यरूपमारोमं ।

धम्मेष दणं किन्ती धम्मेष होइ मोहमां ॥ ४ ॥

धर्मेण कुलं विपुलं धर्मेण च दीम्यरूपमारोग्यं ।

धर्मेण जगति कीर्तिं धर्मेण भवति सामान्यं ॥

परभवणसाणवाइअसयणासणयाणमीयणार्थं च ।

परजुवइवत्पुभूमणं संपत्ती होइ धम्मेष ॥ ५ ॥

वरभवनयानवाहनशयनासनयानभोजनाना च ।

वरयुवतिवस्त्रभूषणाना सप्राप्ति भवति धर्मेण ॥

तं णत्थि जं ण लब्भइ धम्मणेण कएण तिहुयणे सयले ।

जो पुण धम्मदरिदो सो पावइ सव्वदुक्खाइं ॥ ६ ॥

तन्नास्ति यन्न लभते धर्मेण कृतेन त्रिभुवने सकले ।

यः पुन धर्मदरिद्र स प्राप्नोति सर्वदुःखानि ॥

जो धम्मं ण करंतो इच्छइ सुक्खाइं कोइ णिब्बुद्धी ।

सो पीलउण सिकयं इच्छइ तिहं गरो मूढो ॥ ७ ॥

यो धर्ममकुर्वन् इच्छति सुखानि कश्चित् निर्बुद्धि ।

स पीलयित्वा सिकतामिच्छति तैल नरो मूढ

सव्वो वि जणो धम्मं घोसइं ण य कोइ जाणइ अहम्मं ।

धम्माधम्मविसेसं णाउण णरेण घेतव्वं ॥ ८ ॥

सर्वोऽपि जन धर्मं घोषयति न च कश्चिज्जानाति अधर्मं ।

धर्माधर्मविशेष ज्ञात्वा नरेण गृहीतव्यं ।

खीराइं जहा लोए सरिसाइं हवंति वण्णणामेण ।

रसभेएण य ताइं वि णाणागुणदोसजुत्ताइं ॥ ९ ॥

क्षीराणि यथा लोके सदृशानि भवन्ति वर्णनामभ्या ।

रसभेदेन च तान्यपि नानागुणदोषयुक्तानि ॥

काइं वि खीराइं जए हवंति दुक्खावहाणि जीवाणं ।

काइं वि तुट्ठिं पुट्ठिं करंति वरवण्णमारोगं ॥ १० ॥

कान्यपि क्षीराणि जगति भवन्ति दुःखप्रदानि जीवाना ।

कान्यपि तुष्टिं पुष्टिं कुर्वन्ति वरवर्णमारोग्यम् ॥

धम्मा य तहा लोए अण्येयमेया इवन्ति णायम्वा ।
णामेण समा सग्घे गुणेण पुण उत्तमा केई ॥ ११ ॥

धर्माश्च तथा लोक अनेकभेदा भवन्ति ज्ञातव्या ।

मान्ना समा सर्वे गुणेन पुनरुत्तमा केचित् ॥

पावन्ति केइ दुक्खं पारयतिरियकूमाणुस्सज्जोणीसु ।

पावन्ति पुणो दुक्खं केई पुणु हीणवेवत्तं ॥ १२ ॥

प्राप्नुवन्ति केचिदु मं नारकतिर्यन्नुमानुपयोनिषु ।

प्राप्नुवन्ति पुमर्दु खं कचित् पुन हीन्देवत्तं ॥

पावन्ति केइ धम्मादो माणुमसोकखाइ देवसोकखाइं ।

अव्वाधाहमणोवमअणत्तसोकखं च पावन्ति ॥ १३ ॥

प्राप्नुवन्ति केचिद्दमत्त मानुपसौख्यानि देवसौख्यानि ।

अभ्यावाधमनुपमानत्तसौख्यं च प्राप्नुवन्ति ॥

तम्हा हु सम्बधम्मा पक्खियम्वा णरेण कुसलेण

सो धम्मो गहियम्बो जो दोसेहिं विवञ्जिओ विमलो ॥ १४ ॥

तस्माद्भि सर्षधर्मा परीक्षितव्या नरेण कुशलेन ।

स धर्मो गृहीतव्यो यो दोषैर्विवञ्चितो विमलः ॥

अत्थ व्हो जीवापं भासिज्जाइ अत्थ अल्लियवयं च ।

अत्थ परदम्बहरं सेविज्जाइ अत्थ परयारं ॥ १५ ॥

यत्र वधो जीवानां भाष्यते यत्रालीकवचनं च ।

यत्र परदम्बहरणं सेव्यत यत्र पराङ्गना ॥

बहुआरंमपरिग्गहगहं संतोसवञ्जियं अत्थ ।

पंचुबरमहुमांसं मक्खिज्जाइ अत्थ धम्ममि ॥ १६ ॥

बन्धारंमपरिग्रहग्रहणं सन्तोषवर्जितं यत्र ।

पंचोदुम्बरमधुमांसानि मर्क्यन्ते यत्र धर्मं ॥

डंभिज्जइ जत्थ जणो पिज्जइ मज्ज च जत्थ बहुदोसं ।

इच्छंति सो वि धम्मो केइ य अण्णाणिणो पुरिसा ॥ १७ ॥

दम्भ्यते यत्र जन पीयते मद्य च यत्र बहुदोष ।

इच्छन्ति तमपि वर्मं केदि, च अज्ञानिनः पुरुषाः ॥

जइ एरिसो वि धम्मो तो पुण सो केरिसो ह्वे पावो ।

जइ एरिसेण सग्गो तो णरयं गम्मए केण ॥ १८ ॥

यद्येतादृशोऽपि धर्मस्तर्हि पुनः तत्कीदृश भवेत्पापं ।

यद्येतादृशेन स्वर्गः तर्हि नरके गम्यते केन ॥

जो एरिसियं धम्मं किज्जइ इच्छेइ सोक्ख भुंजेउं ।

चावित्ता णिंयतरुं सो इच्छइ अब्बफल्लाइं ॥ १९ ॥

य एतादृश धर्मं करोति इच्छति सौख्यं भोक्तुं ।

उपवा निम्बतरुं स इच्छति आम्रफलानि ॥

धम्मोत्ति मण्णमाणो करेइ जो एरिसं महापावं ।

सो उप्पज्जइ णरण अणेयदुक्खावहे भीमे ॥ २० ॥

धर्मं इति मन्यमानं करोति य एतादृशं महापापं ।

स उत्पद्यते नरके अनेकदुःखपथे भीमे ॥

तत्थुप्पण्णं संतं सहसा तं पक्खिखऊण णेरइया ।

सरिऊण पुब्बवइरं धावंति समंतदो भीमा ॥ २१ ॥

तत्रोत्पन्नं सन्तं सहसा तं प्रेक्ष्य नारकाः ।

स्मृत्वा पूर्ववैरं वावन्ति समन्ततो भीमा ॥

असिसुफरसमोग्गरसत्तितिसूलेहिं सेल्लकौंतेहिं ।

क्रोहेण पज्जलंता पहरंति सरीरयं तस्स ॥ २२ ॥

असिसुफरगमुद्गरशक्तित्रिशूलैः, श्लेष्मकुन्तैः ।

क्रोधेन प्रज्वलन्तः प्रहरन्ति शरीरकं तस्य ॥

- गदाप्रहारविद्धो मुच्छं गंतुं महियल पट्ट ।
अहंकण्णहिं तस्य विमिज्जइ तिवग्गेहिं सख्वंगं ॥ २३ ॥
गदाप्रहारविद्ध मूच्छीं गत्वा महीतळे पठति ।
अतिकटकं तत्र विमिद्यत तीक्ष्णै सर्वाङ्गं ॥
सुदूषणं येयण्णए पुणरवि चित्तेइ किं इमे सख्वे ।
पहरंति मन्ना देहं अंपंता कइयवयणाइं ॥ २४ ॥
छब्बा वेननां पुनरपि चिन्तयति किं इमे सर्वे ।
प्रहरन्ति मम देहं जल्यन्तं कट्टुक्कवचनानि ॥
देषयपियरणिमित्तं मंतोसहिजागभयणिमित्तेण ।
अं मारिया घराया अप्पेय जीवा मए आसि ॥२५॥
देवतापितृमित्तं मंत्रौपभियागभयनिमित्तेन ।
ये मारिता वराक्का अमेक्कजीवा मया आसन् ॥
अं परिमाणविरहिया परिग्गाहा गिण्हिया मए आसि ।
अं खार्थं मधुमांसं पंचोदुवर जिम्हाल्लुम्भेण ॥ २६ ॥
यत् परिमाणविरहिता परिग्रहा गृहीता मया आसन् ।
यत् खादितं मधुमांसं पंचोदुवराणि जिम्हाल्लुम्भेण ॥
अं भासियं असत्थं सेपिककजं मए कयं आसि ।
अं तिलमेत्तसुइत्थं परदारं सेवियं आसि ॥ २७ ॥
यद्वापितं असत्थं स्तेनकृत्यं मया कृतं आसीत् ।
यत्तिष्णमाप्रसुत्तार्थं परदारं संभिता आसन् ॥
अं पीयं सुरमार्यं अं च जणो अंभियो मए सख्वी ।
तस्स हु पावस्स फळं अं आयं एरिसं दुक्ख ॥ २८ ॥
यत्पीता मुरा यथ जणो दमितो मया सर्व ।
तस्य हि पापस्य फळं यज्जातं एतादृशं तु अम् ॥

गाऊण एव सच्चं पुव्वभवे जं कर्यं महापावं ।

अइतिव्ववेयणाओ असहंतो णासए सिधं ॥ २९ ॥

जात्वैव सर्वं पूर्वभवे यत्कृत महापाप ।

अतितीव्रवेदना असहमान नश्यति शीघ्र

सो एवं णासंतो णरइयभयेण असरणो संतो ।

पइसइ असिपत्तवणे अणेयदुक्खावहे भीमे ॥ ३० ॥

स एव नश्यन् नारकभयेन अशरण सन् ।

प्रविशति असिपत्रवने अनेकदुःखपथे भीमे ॥

तत्थ वि पडंति उवरिं फलाइं जट्टाइं असहणिज्जाइं ।

लग्गंति जत्थ गत्ते सइ चुण्णं तत्थ कुव्वंति ॥ ३१ ॥

तत्रापि पतन्ति उपरि फलानि जटानि असहनीयानि ।

लगाति यत्र गात्रे सकृच्चूर्णं तत्र कुर्वन्ति ॥

पत्ताइं पडंति तहा खंडयधारव्व सुट्टु तिक्खाइं ।

ताइं वि छिंदंति पुणो अंगोवंगाइं सव्वाइं ॥ ३२ ॥

पत्राणि पतन्ति तथा खड्गधारावत् सुष्ठु तीक्ष्णानि ।

तान्यपि छिन्दन्ति पुन अङ्गोपाङ्गानि सर्वाणि ॥

णीसरिउं सो तत्थ वि असहंतो एरिसाइं दुक्खाइं ।

वेएण धावमाणो पव्वयसिहरं समारुहइ ॥ ३३ ॥

नि सृत्य स ततोऽपि असहमान एतादृशानि दुःखानि ।

वेगेन वायन् पर्वतशिखर समारोहति ॥

तत्थ वि पव्वयसिहरे णाणाविहसावया परमभीमा ।

तिक्खणहकुडिलदाटा खादंति मरीरयं तस्स ॥ ३४ ॥

तत्रापि पर्वतशिखरे नानाविधशावका परमभीमा ।

तीक्ष्णनखकुटिलदाटा खादन्ति शरीर तस्य ॥

तेसि मएण पुणो भावतो उच्चरइ भूमीए ।

गच्छइ बेयरणीए तिण्हाए पीढिभो संतो ॥ ३५ ॥

तेयां भयेन पुन धावन् उच्चरति भूमौ ।

गच्छति वैतरण्यां तृष्णाया पीडित सन् ॥

मुक्को विजिज्झकंठो तस्य जलं गेण्हिऊण पिबमाणो ।

उण्हेण तेण उज्झइ हत्थम्मि मुहम्मि ओठम्मि ॥ ३६ ॥

शुष्कं विष्यकण्ठं तत्र जलं गृहीत्वा पिबन् ।

उण्णेन तेन दद्यते हस्तेषु मुक्कं आण्डं ॥

मुक्खाए संतचो अलहंतो किंचि अण्णमाहारं ।

बेयरणीए कूले गिण्हिऊवा मट्टियं म्हाइ ॥ ३७ ॥

भुमुक्कया संतस्तं बलभमानं किंचिद्भ्रमाहारं ।

वैतरण्यां कूलं गृहीत्वा मृत्तिकां खादति ॥

ताए पुणो वि उज्झइ लोहंगारेहिं पज्जलंताए ।

भोराए कहुपाइअपूहयमयसाणगंघाए ॥ ३८ ॥

तया पुनरपि दद्यते लोहाङ्गारैः प्रज्वलन्त्या ।

घोरया कद्रुकप्रतिमयस्वगन्धया ॥

सो एव अण्णंतो गइकूले पिच्छिऊण णारइमा ।

कहुसण्णं अंपमाया पुण्णरधि घावंसि पाविहा ॥ ३९ ॥

तमेव तिष्ठन्तं न्नीकुले दग्धा नामका ।

कद्रुकानि अस्पृशन्त पुनरपि धावन्ति पापिष्ठा ॥

बेएण वइंताए पतत्तल्लण्णं पज्जलंताए ।

बेयरणीए मण्णे चप्यंति अण्णप्यवसिया हु ॥ ४० ॥

बेगेन वहन्त्या प्रकृतैल्लण्णत् प्रज्वलन्त्या ।

वतरण्यां मध्ये प्रविशति अनारमवशिक्य हि ॥

तत्थ वि पावइ दुक्खं डज्झंतो पज्जलंतसलिलेण ।

छोडीजंतसरीरो तिव्खाहिं सिलाहिं घोराहिं ॥४१॥

तत्रापि प्राप्नोति दुःखं दहन् प्रज्वलितसलिलेन ।

स्पृष्टशरीरं तीक्ष्णाभिः शिलाभिः घोराभिः ॥

सो एवं बुद्धंतो कह वि किलेसेहि तत्थ णीसरए ।

णीसरिओ वि हु संतो धरंति बंधंति णेरइया ॥ ४२ ॥

स एवं ब्रुडन् कथमपि क्लेशैः ततो निःसरति ।

निःसृतमपि हि सन्त धरन्ति बध्नन्ति नारका ॥

जस्स रडंतस्स पुणो उण्हाए णिक्खंति सिग्दाए ।

उद्धरिऊण सदेहं णासइ तं दुक्खमसहंतो ॥ ४३ ॥

तं रुदन्तं पुनः उष्णाया निखनन्ति सिकताया ।

उत्थाय स्वदेहं नाशयति तं दुःखमसहमानं ॥

पुणरवि धरंति भीमा णेरइया तस्स पावयम्मस्स ।

मस्सउमळियं ? करति हु छुहंति तह खारयंक्कम्मि ॥ ४४ ॥

पुनरपि धरन्ति भीमा नारकास्त पापकर्माणं ।

. ॥

णीसरिऊण वराओ णासंतो खारयंक्कम्मडुओ ? ।

पुव्वुत्तकमेण पुणो धरति ते तस्स णारइया ॥ ४५ ॥

निःसृत्य वराकं नश्यन् ।

पूर्वोक्तक्रमेण पुनः धरन्ति ते तं नारका ॥

मरणभयभीरूयाणं जीवाणं जो हु जीवियं हरइ ।

णरयम्मि पावयम्मो पावइ तह बहुविहं दुक्खं ॥ ४६ ॥

मरणभयभीरूणा जीवाना यो हि जीवितं हरति ।

नरके पापकर्मा प्राप्नोति तथा बहुविधं दुःखं ॥

पीलंति ब्रह्म इषसु जत सुहृत्तण तस्म अवसस्त ।
 कुम्भवति शुणं (ण) शुण्णं मम्बमरीरं मुसंढीहिं ॥ ४७ ॥
 पेलयन्ति यथा इक्षुन यत्रे निधाय तमपणं ।
 वृबन्ति चूर्णचूर्णं सर्वशरीरं मुशळः ।
 चवकेहिं करकयेहिं य अंगं फाडंति गेवमाणस्म ।
 सिधंति पापयम्मा पुणग्वि खारण सलिलेण ॥ ४८ ॥
 चक्र क्रयचक्र अङ्गं भिन्नायन्ति मदन ।
 मिचन्ति पापकर्माण पुनरपि क्षारेण मल्लिखेन ॥
 चंपंति सम्बदहं तिक्खसलाएहि अग्गिवण्णाहिं ।
 गहसधिपएसेसु य भिठति जलंति मूर्द्धहिं ॥ ४९ ॥
 छिन्ति सर्पेहिं मत्तणशलाकाभि अग्गिवणीभि ।
 नम्बसन्धिप्रदेशेषु च भिन्ति म्बन्नाभि सूचीभि ॥
 पाडिष्ठा भूमीए पाएहि मलंति पावयम्मस्य ।
 सिधाट्ठयाण उवरिं अंगे वेएण लोदंति ॥ ५० ॥
 पातयिष्वा भूमा पाए मल्लिखि पापकर्माण ।
 सिधाट्ठकानामुपरि अंगे वगेन लोदन्ति ॥
 अलियस्म फलेण पुणो गीषाए चंपिद्दुष पाएहिं ।
 तस्स य खर्भति जीहा समूळा दु षारइया ॥ ५१ ॥
 म्बळीकस्य फलेन पुन चंपित्वा पाए ।
 तस्य च म्बनन्ति जिम्हां समूळां हि नारका ॥
 खंभंति दो वि इत्था वेणिक्कफलेण तिक्खवंसीए ।
 सुलम्मि सुहंति पुणो षारइया सुदु तिक्खेहिं ॥ ५२ ॥
 वेडयन्ति दानपि हस्तौ स्तोफण्यळेन तीक्खणंस्या ।
 शूळै स्पर्शयन्ति पुन नारका सुष्ठु वीणै ॥

परदारस्स फलेण य आलिंगावंति लोहपडिमाओ ।
ताओ डहंति अंगं तत्ताओ अग्गिवण्णाओ ॥ ५३ ॥

परदाराणा फलेन च आलिङ्गयन्ति लोहप्रतिमा ॥

ता दहन्ति अग तप्ताः अग्निवर्णा ॥

तत्ताइं भूसणाइं चित्ते परिहावंति अग्गिवण्णाइं ।

ताइ वि डहंति अंगं परमहिला (हि) सेण फलेण ॥ ५४ ॥

तप्तानि भूपणानि चित्ते परिवारयन्ति अग्निवर्णानि ।

तान्यपि दहन्ति अग परमहिलाभिलापेण फलेन ॥

तस्स चडावंति पुणो णारइया कूडमम्मलीयाओ ।

तत्थ वि पावइ दुक्खं फाडिज्जंतम्मि देहम्मि ॥ ५५ ॥

नं आरोहयन्ति पुन नारका कूटशात्मलिषु ।

तत्रापि प्राप्नोति दु ख विदारिते देहे ॥

जे परिमाणविरहिया परिग्गहा गेण्हिया भवे अण्णे ।

तेसिं फलेण गरुयं सिलिं चडावंति खंधम्मि ॥ ५६ ॥

ये परिमाणविरहिता परिग्रहा गृहीता भवे अन्यस्मिन् ।

तेषा फलेन गुरुका शिला वरन्ति स्कन्धे ।

पायंति पज्जलंतं महुमज्जफलेण कलयं ? घोरं ।

पंचुंवरफलभक्खणफलेण खावंति अंगार ॥ ५७ ॥

पाययन्ति प्रज्वलन्तं मधुमद्यफलेन लोहरस घोर ।

पचोदुम्बरफलभक्षणफलेन खादयन्ति अङ्गाराणि ॥

मांसाहारफलेण य सव्वंगं सुट्टउव्व पोलंति ॥

चल्लूरम्मि पित्तया वा ? कप्पंति अणप्पवसियस्स ॥ ५८ ॥

मासाहारफलेन च सर्वाङ्ग

।

कम्पयन्तिअनात्मवशस्य ॥

कुंभीपागेसु पुणो देह पचति पावयम्मस्म ।
 पीसंति पुणो पावा जं खंध को वि भोगच्छी ॥ ५९ ॥
 कुंभीपाकेषु पुन देह पाचयति पापकर्मण ।
 पेययति पुन पापा यत्कर्मन्त्रं कोऽपि भोगच्छी ! ॥
 भूमीसमं देह अल्लय चम्मं च तस्स खिल्लिच्छा ।
 धावन्ति दुद्धद्वियया तिनखतिसूलेहिं पेरइया ॥ ६० ॥

धावन्ति दुद्धद्वियास्तीक्ष्णमिश्रै नारका ॥
 खायन्ति साणसीहावयवग्धा अयमग्निहृदतेहिं ।
 अहावया सियाला मज्जारा फिण्डसप्पा य ॥ ६१ ॥
 खादन्ति स्वसिद्धकम्पाद्या त्स्सै ।
 अथापदा शृगाला मार्जारा कृष्णसर्पाश्च ॥
 वायस्सगिद्धकंका पिपीलिया त्था हंसा ।
 मसगा य महुमरीओ जलुमाओ तिनखतुंढाओ ॥ ६२ ॥
 वायसगृध्रकंका पिपीळिका मत्तुणास्वया दंशा ।
 मशकाश्च मधुकर्म्यं अशुकास्तीक्ष्णतुण्डा ॥
 दंढन्ति एकपव्वं बहुदंढया हि नारइया ? ।
 पुव्वकयपावयम्ममा मासंठा कइयवयण्णाओ ॥ ६३ ॥
 दंढयन्ति एकपव बहुदंढका हि नारका ।
 पूव्वकतपापकर्माणो भावमाणा कटुकवचनानि ॥
 धारइयाणं वेरं छेत्तसहावेण होइ पावाणं ।
 मज्जारमूसयाणं जइ वेरं उल्लसप्पाभं ॥ ६४ ॥
 मारकाणां वेरं क्षेत्रस्वभावेन भवति पापानां ।
 मार्जारमूषकामां यथा वेरं नकुल्लसपीणा ॥

सव्वे वि य णेरइया णपुंसया होंति हुंडसंठाणा ।

सव्वे वि भीमरूवा दुल्लेसा दव्वभावेण ॥ ६५ ॥

सर्वेऽपि च नारका नपुंसका भवन्ति हुडकसस्थाना ।

सर्वेऽपि भीमरूपा दुर्लेश्या द्रव्यभावेन ॥

णिरए सहाव दुक्खं होइ सहावेण सीयउण्हं च ।

तह हुंति दुस्सहाओ घोराओ भुक्खतण्हाओ ॥ ६६ ॥

नरके स्वभावेन दुःख भवति स्वभावेन जीतोष्णे च ।

तथा भवत दुःसहे घारे क्षुत्तृष्णे ॥

जइ वि खिविज्जे कोई णरए गिरिरायमेत्तलोहुंडं ।

धरणियलमपावेंतो उण्हेण विलिज्जए सव्वो ॥ ६७ ॥

यद्यपि क्षिपेत् कश्चित् नरके गिरिराजमात्रलोहखड ।

धरणीतलमप्राप्नुवन् उष्णेन विलीयते सर्व ॥

तित्थियमेत्तो लोहो पज्जलिओ सीयणरयमज्झम्मि ।

जइ पिक्खिविजे कोई सडिज्ज भूमिमपावंतो ॥ ६८ ॥

तावन्मात्र लोह प्रज्वलित गीतनरकमन्ये ।

यदि प्रक्षिपेत् कश्चित् घनीभवति भूमिमप्राप्नुवन् ॥

णेरयाणं तण्हा तारसिया होइ पावयम्माणं ।

जा सव्वसमुद्देहि य पीएहिं ण उवसमं जाइ ॥ ६९ ॥

नारकाणां तृष्णा तादृशी भवति पापकर्मणा ।

या सर्वसमुद्रेषु च पीतेषु न उपशम याति ॥

तारिसिया होइ छुहा णरयम्मि अणोवमा परमघोरा ।

जा तिहुयणे वि सयले खद्धम्मि ण उवसमं जाइ ॥ ७० ॥

तादृशी भवति क्षुत् नरके अनुपमा परमघोरा ।

या त्रिभुवनेऽपि सकले खादिते न उपशम याति ॥

चुष्णीकरो वि दहो त्वस्त्रणमेतेण होइ संपुष्णो ।

तेमि अठष्णयालं मिच्च ण होइ पाषाण ॥ ७१ ॥

पूर्णाकृताऽपि दहस्तस्त्रणमात्रेण भवति सम्पूर्ण ।

तथामूर्णकाल मृशुन भवति पापानां ॥

उष्णममयपद्दुदी आमरणत महति दुषस्त्राइ ।

अच्छिणिमीलयमेतं मोक्ष ण लहति णेरइया ॥ ७२ ॥

उष्णममयप्रमथामरणस्त महते दुष्मानि ।

अक्षिणिमीलयमात्रं साम्यं न भवति मारका ॥

एवं णरयगईण बहुष्णयागई होति दुषस्त्राइ ।

बहुकालेण वि तार्हं ण य सक्किज्जंति घणोउ ॥ ७३ ॥

एवं नरकगता बहुप्रकारणि भवन्ति दुष्खानि ।

बहुकालेनापि तानि न च शक्नुवन्ति वर्णयितुं ॥

इदी णरयगइ सम्मत्ता—इति नरकगतिः समाप्ता ।

उष्वरिऊण य जीवा णरयगईदो फलण पावस्त ।

पुमरवि तिरियगईण पावेइ अप्पेयदुक्खाई ॥ ७४ ॥

उष्वर्यं च जीवो नरकगतिं फलं पापस्य ।

पुनरपि तिर्यग्मास्यां प्राप्नोति भवेत्तु खानि ॥

व (वा) हिज्जइ गुरुमारं जेच्छंतो पिड्डिऊण लोएहिं ।

पुष्पकयम्मो पाप्पयछोडिच्छंतीए पुट्टीए ॥ ७५ ॥

वाच्यते गुरुमारं नेच्छन् ताडयित्वा लोकैः ।

पूर्वकृतकर्मा पृथुषा ।

ताडयतासमदुक्खं बघण तह पाप्मविघ्नं दमणं ।

कण्ठेइणदुक्खं लक्षण पिड्डिऊणं येय ॥ ७६ ॥

ताडनत्रासनदु ख व्रन्धन तथा नासावेधनं दमन ।

कर्णच्छेदनदु,ख लाच्छन निलाछन चैव ॥

सीउण्हं जलवरिसं चउमहिमारुवं लुहा तण्हा ।

णाणाविहवाहीओ सहइ तहा दंसमसया य ॥ ७७ ॥

गीतोष्णे जलवर्षा . . क्षुधा तृष्णा ।

नानाविधव्याधीश्च सहते तथा दशमशकाश्च ॥

एइंदिएसु पंचसु अपेयजोणीसु वीरियविहूणो ।

भुंजंतो पावफलं चिरकालं हिंडए जीवो ॥ ७८ ॥

एकेन्द्रियेषु पचसु अनेकयोनिषु वीर्यविहीन ।

भुजान पापफल चिरकाल हिण्डते जीव ॥

खणणुत्तावणवालणवीहणविच्छेयणाइं दुक्खाइं ।

पुव्वकयपावयम्मो सहइ वराओ अणप्पवसो ॥ ७९ ॥

खननोत्तापनज्वालनव्यजनविच्छेदनादिदु खानि ।

पूर्वकृतपापकर्मा सहते वराक अनात्मवग ॥

एवं तिरियगइ सम्मत्ता-एव तिर्यग्गति समाप्ता ।

बहुवेयणाउलाए तिरियगईए भमित्तु चिरकालं ।

माणुसहवे वि पावइ पावस्स फलाइं दुक्खाइं ॥ ८० ॥

बहुवेदनाकुलाया तिर्यग्गतौ भ्रमित्वा चिरकालं ।

मानुषभवेऽपि प्राप्नोति पापस्य फलानि दु खानि ॥

पारसियमिल्लवव्वरचंडालकुलेसु पावयम्मेसु ।

उप्पज्जिऊण जीवो भुंजइ णिरओवमं दुक्खं ॥ ८१ ॥

पारसीकभिल्लवव्वरचंडालकुलेषु पापकर्मसु ।

उत्पद्य जीवो भुक्ते नरकोपम दु ख ॥

अह पावह उच्यते चिरकालं पाविष्णुर्णायसं ।

ठष्ठिविगन्मयहृदिय ? पावेह अणोय हुन्स्वाह ॥ ८२ ॥

यत् प्राप्नोति उच्यते चिरकालं प्राप्य नीचत्वं ।

सप्रापि गभमवानि प्राप्नोति अनक्तदुःखानि ॥

अम्मंघमूयवहिरो उच्यते सौ फलेण पावस्य ।

उच्यते दिवसपहुर्हं पीडित्तुहं घोरवाहीहिं ॥ ८३ ॥

अमाभमूकप्रधिर उच्यते स फलन पापस्य ।

उच्यते विषसप्रभृतिषु पाच्यते धारम्यात्रिमि ॥

अयजोवर्णं पि पत्तो इच्छियसुनस्य ण पावणं किंपि ।

गच्छेह बोधणकालो सव्यो वि णिरच्छभो तस्म ॥ ८४ ॥

नक्षपावनमपि प्राप्त इच्छित्तुम् न प्राप्नोति किमपि ।

गच्छति पावनकालं सर्वोऽपि निरधकस्तस्य ॥

अणुपधपिष्पहीणो भिक्त्वं ममिउण भुञ्जणं णिषं ।

पुण्यकयपावयम्मो सुयणो वि ण यच्छणं मोक्षं ॥ ८५ ॥

अनवाधवनिप्रहीना भिक्षां भ्रमिषा भुञ्जति निष्यं ।

पुण्यकयपावयम्मो, सुयणोऽपि न यच्छति सोप्यं ॥

पमुमणुविगर्हणं णय हिमालिय गोरियाद्दोसंदि ।

अहृदुपगाहिं वरात्रो चिरकालं पावणं जीत्रो ॥ ८६ ॥

पमुमणुप्यगता णय हिमालीकभायादिनापै ।

अहृदु गानि वरात्रा विरक्तं प्राप्नोति त्रीष ॥

एवं बुद्धानुसर्गां अम्मन्ना-एवं बुद्धानुसर्गाः अम्मन्ना ।

सव्व (ण्हु) वयणवज्जिय बालतवं कुणइ णरो मूढो ।

सो पावेइ वर उपरलोण्हीदेवत्तं ॥ ८७ ॥

सर्वज्ञवचन वर्जयित्वा बालतपः करोति नरो मूढः ।

स प्राप्नोति ॥

दहण अण्णदेवे महिड्ढिए दिव्ववण्णमारोगं ।

होऊण माणभंगो चित्ते उप्पज्जए दुक्खं ॥ ८८ ॥

दृष्ट्वा अन्यदेवेषु महर्विकेषु दिव्यवर्ण आरोग्य ।

भूत्वा मानभग चित्ते उत्पद्यते दुःख ॥

तिलोयसव्वसरणं धम्मो सव्वण्हु भाविओ विमलो ।

तइयामएण गहिओ तेण महंतारिओ एहिं ॥ ८९ ॥

त्रिलोकसर्वशरण धर्मः सर्वज्ञभावितो विमलः ।

तस्यागमेन गृहीतस्तेन महत्तारक . ॥

छम्मासाउगसेसे विलाइ माला विणस्मए छाए ।

कंपंति कप्परुक्खा होइ विरागो य भोयाणं ॥ ९० ॥

पण्मासायुष्कशेषे विलीयते माला विनश्यति छाया ।

कम्पन्ते कल्पवृक्षा भवति विरागश्च भोगेभ्यः ॥

बहुणइगीयसाला णाणाविहकप्पतरुवराइण्णे ।

भो सुरलोयपहाणा णक्खयपडंतयं विसमं ॥ ९१ ॥

बहुनृत्यगीतसाला नानाविधकल्पतरुवराकीर्णा ।

भो सुरलोकप्रधानाः . विषम ॥

वसियव्वं कुच्छीए कुणिमाए किमिकुलेहिं भरियाए ।

यीयव्वं कुणिमपयं जणणीए मे अहम्मेण ॥ ९२ ॥

वस्तव्य कुत्साया कुणपाया ऋमिकुलै भृताया ।

पातव्य कुणपपय जनन्या मया अधर्मेण ॥

सो एवं बिलवंतो पुण्यावसानमि असरणो संतो ।
 मूलच्छिन्नो वि द्रुमो शिवद्वइ इहामुहो रीणो ॥ ९३ ॥
 स एवं शिवपन् पुण्यावसानऽऽरण सन् ।
 मूलच्छिन्नोऽपि द्रुम निपतति शबोमुखो दीन ॥
 एवं देवगर्ह सम्मत्ता—एवं देवगतिः समाप्ता ।

एवं अप्पाइकाले जीवो संसारसागर धोरे ।
 परिहिंसइ अलहंतो धम्मं सब्बण्डुपण्यत्तं ॥ ९४ ॥
 एवमनात्तिकाले जीवः संसारसागर धोरे ।
 परिहिंसत अलभमानो धर्मं सर्वज्ञप्रणीतं ॥
 परिच्छेत्तव्यं कुबम्मं तम्हा सब्बण्डुमासिओ धम्मो ।
 संसाररुद्धरणटं गहियम्मो बुद्धिमंतेहिं ॥ ९५ ॥
 परित्यज्य कुधर्मं तस्मात् सर्वज्ञमाधितो धर्म
 संसारतरणार्थं गृहीतव्यो बुद्धिमतिः ॥
 सब्बण्डु वि च षोया लोए षड्भाणहरिहराईया ।
 तम्हा परिस्सियव्वा मब्बेण णरण कुसलेण ॥ ९६ ॥
 सर्वज्ञा अपि च षोया लोके षडहरिहरात्किञ्च
 तस्मात् परीक्षितव्या सर्वे नरे कुशलैः ॥
 खट्टगकपालहरो उमरुय वज्जंत मीमणायारो ।
 णसइ पिसायसहिओ रयणीए पिटवणं मीमे ॥ ९७ ॥
 खट्वाङ्गकपालहर उमरुकं वादयन् भीषणाकार ।
 सृजति पिशाचसहितं रज्ज्यां पितृवने मीमे ॥
 जो तिवस्वदाट्ठीसणपिगलणयप्पेहि दाहिणमुद्देण ।
 मक्खेइ मब्बजीवे सो प

यः तीक्ष्णदाढाभीषणपिगलनयनैः ...मुखेन ।

भक्षयति सर्वजीवान् स परमात्मा कथं भवति ॥

अहवा सो परमप्पो जइ होइ जयम्मि दोसजुत्तो वि ।

ता भीषणरूओ (पुण) णिसायरो केरिसो होइ ॥ ९९ ॥

अथवा स, परमात्मा यदि भवति जगति दोषयुक्तोऽपि ।

तर्हि भीषणरूपं पुनः निशाचर कीदृशो भवति ॥

जो वहइ सिरे गंगा गिरिवधू वहइ अद्धदेहेण ।

णिच्चं भारक्कंतो कावडिवाहो जहा पुरिसो ॥ १०० ॥

यो वहति शिरसि गंगा गिरिवधू वहति अर्धदेहेन ।

नित्य-भाराक्रान्तः कावटिकावाहो यथा पुरुषः ॥

जइ एरिसो वि लोए कामुम्मत्तो वि होइ परमप्पो ।-

तो कामुम्मत्तमणा घरे घरे किं ण परमप्पा ॥ १०१ ॥

यदि एतादृशोऽपि लोके कामोन्मत्तोऽपि भवति परमात्मा ।

तर्हि कामोन्मत्तमनसं गृहे गृहे किं न परमात्मानं ॥

जो दहइ एयगामं बुच्चइ लोयम्मि सो वि पाविट्ठो ।

दड्डुं पि जेण तिउरं परमप्पत्तं कहं तस्स ॥ १०२ ॥

यो दहति एकग्रामं उच्यते लोके सोऽपि पापिष्ठः ।

दग्धमपि येन त्रिपुर परमात्मत्वं कथं तस्य ॥

रण्णे तवं करंतो दट्टुण तिलोत्तमाए लावण्णं ।

बम्मह सरेहिं विद्धो तवभट्टो चउमुहो जाओ ॥ १०३ ॥

अरण्ये तपः कुर्वन् दृष्ट्वा तिलोत्तमाया लावण्यं ।

ब्रह्मा शरैः विद्धं तपोभ्रष्टं चतुर्मुखो जातः ॥

कामगिगतत्तचित्तो इच्छयमाणो तिलोवणारूवं ।

जो रिच्छी भत्तारो जादो सो किं होइ परमप्पो ॥ १०४ ॥

कामाश्रितसच्चिद इच्छन् तिलात्मारूपे ।

य ऋद्धिमर्ता जात स किं भवति परमात्मा ॥

जह एरिसो वि मूढो परमप्या बुधए एवं ।

तो खरघोडाईया सन्धे वि य होंति परमप्या ॥ १०५ ॥

यदि एतादृशोऽपि मूढ परमात्मा उच्यते एवं ।

ताई खराश्रादिकर सर्वेऽपि च भवन्ति परमात्मान ॥

जलयलआयासयले सन्धेसु वि पण्यएसु रुखेसु ।

तिष्यलमकटपाइथ परिवसइ महुमहणो ॥१०६॥

जलस्वखाकाशतले सर्वेषु अपि पर्यतेषु वृक्षेषु ।

तृणम्बलनकाष्ठपापाण परिवसति मधुमद ॥

होऽप्य परमदेवो कण्हो परिवसइ अए सन्धे ।

तो छेमणाइओ सो पावइ सर्वं किरियाओ ॥१०७॥

मूला परमेश कृष्ण परिवसति जगति सर्वस्मिन् ।

ताई स प्राप्नोति सर्वं क्रियात् ॥

संसारम्मि वसंतो परमप्यो अइ अए इवे कण्हो ।

संसाररथा जीवा सन्धे ते किण्य परमप्या ॥ १०८ ॥

संसारे वसन् परमात्मा यदि जगति भवेत् कृष्ण ।

संसारस्था जीवा सर्वे ते किं न परमात्मान ॥

हरिहरब्रह्मणो वि य महाबला सन्धलोपत्रिकस्तादा ।

तिष्यि वि एकसरारा तिष्यि वि छोए वि परमप्या ॥१०९॥

हरिहरब्रह्माणोऽपि च महाबला सर्वलोकविद्यमाता ।

त्रयोऽपि एकसरारा त्रयापि लोकऽपि परमात्मान ॥

जह होइ एयमुत्ती बम्हाथ तिलोपजाथ महुमहणो ।

तो बम्हाथस्त सिरं हरेण किं कारणं छिण्णं ॥११०॥

यदि भवति एकमूर्तिः ब्रह्मा त्रिलोकनाथः मधुमदः ।

तर्हि ब्रह्मणः शिरो हरेण किं कारणेन छिन्न ॥

णेच्छइ थावरजीवं जंगमजीवेसु संसओ जस्स ।

मंसं जस्स अदोसं कह बुद्धो होइ परमप्पा ॥१११॥

नेच्छति स्थावरजीव जगमजीवेषु सशयो यस्य ।

मास यस्यादोष कथ बुद्धो भवति परमात्मा ॥

णियजणणीएँ पेट्टं जो फाडिऊण णिग्गओ बहिरं ।

अण्णेसिं जीवाणं कह होइ दयावरो बुद्धो ॥११२॥

निजजनन्या उदर यो विदार्य निर्गतो बहिः ।

अन्येषा जीवाना कथ भवति दयापरो बुद्धः ॥

जो अप्पणो सरीरे ण समत्थो वाहिवेयणा छेउं ।

अण्णेसिं जीवाणं कह वाहिं णासएँ सुँरो ॥ ११३ ॥

य आत्मनः शरीरे न समर्थो व्याधिवेदना छेतु ।

अन्येषा जीवाना कथ व्याधिं नाशयति सूरः ॥

ण समत्थो रक्खेउं सयमवि खे राहुणा गसिज्जंतो ।

कह सो होइ समत्थो रक्खेउं अण्णजीवाणं ॥११४॥

न समर्थो रक्षितु स्वयमपि खे राहुना प्रसमान ।

कथ स भवति समर्थो रक्षितु अन्यजीवान् ॥

जइ ते हवंति देवा एए सव्वे वि हरिहराईया ।

तो तिक्खपहरणाइं गिण्हंति करेण णिकज्जं ॥११५॥

यदि ते भवन्ति देवा एते सर्वेऽपि हरिहरादिका ।

तर्हि तीक्ष्णप्रहरणानि गृह्णन्ति करेण किमर्थं ॥

अस्स त्थि मय वि(चि)घ सो गिण्हइ आउहुं करग्गेण ।
जस्स पुणो णत्थि मयं तस्साठइकारणं णत्थि ॥११६॥

यस्यास्ति मयं चित्ते स गृह्णाति आयुधं क्त्वाग्नेण ।

यस्य पुनर्नास्ति मयं तस्यायुधकारणं नास्ति ॥

छुहत्तण्हवाड्ढिवेयमचित्तामयसोयपीडिमसरीरा ।

संसारे हिंडंता ते सण्णण्ह कइं होत्ति ॥ ११७ ॥

क्षुधातृष्णाभ्याभिषेदनाभिन्यामयशोकपीडितशरीर ।

संसारे हिंडमाना ते सर्वथा कथं भवन्ति ॥

छुह तण्हा भय दोसो राओ मोहो य चित्तण वाही ।

अर मरण जम्म णिहा खेदो सेदो विसादो य ॥११८॥

क्षुभा तृष्णा भयं दोषो रागो मोहश्च चिन्ता म्याभिः ।

अरा मरणं जन्म निद्रा खेद स्वैदो विपादश्च ॥

रइ जिमओ य दप्पो एए दोसा तिलोयसत्तायं ।

सण्णेसिं सामण्णा संसारे परिममंताणं ॥ ११९ ॥

रतिर्निर्मा च दर्प एते दोषा त्रिलोकसत्त्वानां ।

सर्वेषां सामान्या संसारे परिभ्रमणं ॥

एए सण्णे दोसा अस्स न विज्जंति छुहत्तिसाईया ।

सो होइ परमदेओ णिस्संदिहेण घत्तण्णो ॥ १२ ॥

एते सर्वे दोषा यस्मिन् न विद्यन्ते क्षुधातृष्यादिकश्च ।

स भवति परमेशो निःसन्देहेन गृहीतव्यः ॥

सिंहासणछत्तयदिब्बोधुण्णिपुण्णविट्ठिमराई ।

भाम्मंडलकुंदुदुहियो वरत्तद परमेठिचिण्हूत्स्यं ॥ १२१॥

सिंहासनच्छत्रप्रमत्तिभ्यश्चनिपुण्यवृश्चिचामराणि ।

भाम्मंडलकुंदुभी वरत्तद परमेष्ठिचिह्नोत्पानि ॥

संपुण्णचंदवयणो जडमउडविवज्जिओ णिराहरणो ।

पहरणजुवइविमुक्को संतियरो होइ परमप्पा ॥ १२२ ॥

सम्पूर्णचन्द्रवदन. जटामुकुटविवर्जितो निराभरण. ।

प्रहरणयुवतिविमुक्त. शान्तिकरो भवति परमात्मा ॥

णिब्भूसणो वि सोहइ कोहोराप्रभओमणो णत्थि ।

जह्वा विधाररहिओ णिरंबरो मणोहरो तह्वा ॥ १२३ ॥

निर्भूषणोऽपि शोभते ।

यस्माद्विकाररहितो निरम्बरो मनोहरस्तस्मात् ॥

जह्वा सो परमसुही परमसिवो बुच्चए जिणो तह्वा ।

देविंदाण वि देओ तह्वा णामं महादेओ ॥ १२४ ॥

यस्मात् स परमसुखी परमशिव उच्यते जिनस्तस्मात् ।

देवेन्द्राणामपि देवस्तस्मान्नाम्ना महादेव ॥

अव्वावाहमणंतं जह्वा सोक्खं करेइ जीवाणं ।

तह्वा संकरणामो होइ जिणो णत्थि संदेहो ॥ १२५ ॥

अव्याबाधमनन्त यस्मात् सुख करोति जीवाना ।

तस्माच्छकरनामा भवति जिनो नास्ति सन्देह ॥

लोयालोयविदण्हू तह्वा णामं जिणस्स विण्हूत्ति ।

जह्वा सीयलवयणो तह्वा सो बुच्चए चंदो ॥ १२६ ॥

लोकालोकवित् तस्मात् नाम जिनस्य विष्णुरिति ।

यस्माच्छीतलवचनस्तस्मात् स उच्यते चन्द्र ॥

अण्णाणण विणासो विमलाण बोहयरो ।

कम्मासुर . णिड्डहणो तेण जिणो बुच्चए सूरु ॥ १२७ ॥

अज्ञानाना विनाशक विमलाना बोधकर ।

कर्मा . निर्दहन तेन जिन उच्यते सूरः ॥

अण्णाणमोहिण्हिं य पबेदियलोलुण्हिं पुरिसेहिं ।
 जिण्णामाहं परेसिं कयाहं गुणवज्जमाणं पि ॥ १२८ ॥
 भञ्जानमाहितैश्च पचेन्द्रियलाक्ष्यै पुल्लै ।
 जिननाम्मानि परेषां कृतानि गुणवर्जितानामपि ॥
 जइ ईसरणाम परो भिक्खं भमिउण भुंजए को वि ।
 ईसरस्स गुणविहूणो किं सव्वं ईसरो होइ ॥ १२९ ॥
 यदि ईश्वरनामा नर भिक्षो भ्रमिन्वा मुक्ते कोऽपि ।
 ईश्वरस्य गुणविहीन किं सत्य ईश्वरो भवति ॥
 सव्वण्हूपाम हरी तह लोए हरिहराइया सव्वे ।
 सव्वण्हुगुणविरहिया किं सव्वे होति सव्वण्ह ॥ १३० ॥
 सर्वज्ञनामा हरि तथा लोके हरिहरादिका सर्वे ।
 सर्वज्ञगुणविरहिता किं सर्वे भवन्ति सर्वज्ञा ॥
 जइ इच्छय परमपय अप्पावाहं अप्पोवमं सीक्खं ।
 तिहुवणपंदियचळणं भमइ जिणंदं पयत्तण ॥ १३१ ॥
 यदि इच्छति परमपदं भय्यात्वाचं अनुपमं सीक्ष्यं ।
 त्रिभुवनवर्दितचरणं नमत जिनेन्द्रं प्रयत्नेन ॥
 जम्हा अरिहंत हयइ गिराठहो गिम्मयो ह्पे तम्हा
 जम्हा इ अणंतमुहो इच्छीविरहिओ हवे तम्हा ॥ १३२ ॥
 यस्मात् अहं भवति निरामुष निर्भया भवेत् तस्मात् ।
 यस्मादि अनन्तमुषं जीविरहितो भवेत् तस्मात् ॥
 जम्हा इहत्तण्हाओ तस्स प्प पीडंति परमघोराओ ।
 तम्हा असणं पाणं तिल्लोयणाहो ण सेवेइ ॥ १३३ ॥
 यस्मात् भ्रुचूय्ये तं न पीडयत परमचारे ।
 तस्मात्सतं पामं त्रिषीकनाथा न सेवते ॥

पूजारिहो दु जह्वा धरणिंदणरिंदसुरवरिंदाणं ।

अरिरयरहस्समहणो अरहंतो बुच्चए तह्वा ॥ १३४ ॥

पूजार्हस्तु यस्मात् धरणेन्द्रनरेन्द्रसुरवरेन्द्राणा ।

अरिरजरहस्यमथन अर्हन् उच्यते तस्मात् ॥

जियकोहो जियमाणो जियमायालोहमोह जियमयओ ।

जियमच्छरो य जह्वा तम्हा णामं जिणो उत्तो ॥ १३५ ॥

जितक्रोधो जितमानो जितमायालोभमोहः जितमदः ।

जितमत्सरश्च यस्मात्तस्मान्नाम जिनः उक्तः ॥

जम्मजरमरणतिदयं जम्हा दडुं जिणेण णिस्सेसं ।

तम्हा तिउरविणासो होइ जिणे णत्थि संदेहो ॥ १३६ ॥

जन्मजरामरणत्रितय यस्माद्गध जिनेन निःशेष ।

तस्मात्त्रिपुरविनाशो भवति जिने नास्ति सन्देहः ॥

अरहंतपरमदेवं जो वंदइ परमभत्तिसंजुत्तो ।

तेलोयवंदणीओ अहरेण य सो णरो होइ ॥ १३७ ॥

अर्हत्परमदेव यो वन्दते परमभक्तिसयुक्तः ।

त्रिलोकवन्दनीयोऽचिरेण च स नरो भवति ॥

जो जिणवरिंदपूअं कुणइ ससत्तीइ सो महापुरिसो ।

तेलोयपूअणीओ अहरेण य सो णरो होइ ॥ १३८ ॥

यो जिनवरेन्द्रपूजा करोति स्वशक्त्या स महापुरुषः ।

त्रिलोकपूजितोऽचिरेण च स नरो भवति ॥

सन्वण्हूपरिक्खा सम्मत्ता-सर्वज्ञपरीक्षा समाप्ता ।

धम्मो जिणेहिं भणित्तो सायारो वड्ढ इषे अणायारो ।
 एएसिं दोण्हं पि हु सारं खलु होइ सम्मत्तं ॥ १३९ ॥
 धर्मो जिनै भणित सागरस्तथा भवेन्नगर ।
 एतयोर्द्वयोरपि हि सारं खलु भवति सम्पत्त्वं ॥
 सम्मत्तसलिलपवहो गिच्छं द्विययम्मि पवहए अस्स ।
 कम्मं बालुयवरणं तस्सु बंधो चिय ण एइ ॥ १४ ॥
 सम्पत्त्वसच्छिप्रवाहो नित्यं हृदये प्रवर्तते यस्य ।
 कर्म बालुकावरणं तस्य बन्धमेव मेति ॥
 सम्मत्तरयणलज्जे परयतिरिक्खेसु भत्थि उववाओ ।
 जइ ण मुअइ सम्मत्तं अइव ण बंधाउसो पुच्चं ॥ १४१ ॥
 सम्यक्त्वरत्नलज्जे नरकतिर्यङ्गु नास्ति उपपाद ।
 यदि न मुञ्चति सम्यक्त्वं अथवा न बंधं आयुषं पूर्वं ॥
 पंचयज्जपुच्चभाइं गुणच्चयाइं ह्वंसि तिप्पेव ।
 चत्वारि य सिक्खत्तययाइं सायारो एरिसो धम्मो ॥ १४२ ॥
 पंचाणुत्तानि गुणत्तानि भवन्ति श्रीप्पेव ।
 चत्वारि च सिक्खात्तानि सागर एतादृशो धर्म ॥
 देवयपियरभिमित्तं मंतोसहस्रंतमयभिमित्तेण ।
 जीवा ष मारियन्वा पढमं तु अणुच्चय होइ ॥ १४३ ॥
 देवतापितृनिमित्तं मंत्रौषधयंत्रभयनिमित्तेन ।
 जीवा न मारयित्तव्या प्रथमं तु अणुत्तं भवति ॥
 वागादीहि असत्तं परपीडयं तु सच्चययणं पि ।
 यज्जंतस्स जरस्स हु विदियं तु अणुच्चयं होइ ॥ १४४ ॥

वागादिभिरसत्य परपीडाकरं तु सत्यवचनमपि ।
 वर्जतो नरस्य हि द्वितीय तु अणुव्रत भवति ॥
 गामे णयरे रण्णे वट्टे पडियं च अहव विस्सरियं ।
 णादाणं परद्व्वं तिदियं तु अणुव्वयं होइ ॥ १४५ ॥
 ग्रामे नगरे अरण्ये वृत्ते पतित चाथवा विस्मृत ।
 नादान परद्रव्य तृतीय तु अणुव्रतं भवति ॥
 मायावहिणिसमाओ दट्टव्वाओ परस्स महिलाओ ।
 सयदारे संतोसो अणुव्वयं तं चउत्थं तु ॥ १४६ ॥
 मातृस्वसृसमाना दृष्टव्या परस्य महिला ।
 स्वदारे सन्तोषोऽणुव्रत तच्चतुर्थं तु ॥
 धणधण्णदुपयचउप्पयखेत्तण्णछादियाण दव्वाणं ।
 जं किज्जइ परिमाणं पंचमयं अणुव्वयं होइ ॥ १४७ ॥
 वनधान्यद्विपदचतुष्पदक्षेत्रान्याच्छादनाना द्रव्याणा ।
 यत्क्रियते परिमाण पचमक अणुव्रतं भवति ॥
 जं तु दिसावेरमणं गमणस्स दु जं च परिमाणं ।
 तं च गुणव्वय पढमं भणियं जिघरायदोसेहिं ॥ १४८ ॥
 यत्तु दिग्विरमण गमनस्य तु यच्च परिमाण ।
 तच्च गुणव्रत प्रथम भणित जित्तरागदोषैः ॥
 मज्जारसाणरज्जु वंड लोहो य अग्गिविससत्थं ।
 सपरस्स घादहेदुं अण्णोसिं णेव दादव्वं ॥ १४९ ॥
 मार्जारश्वरज्जु लोहश्च अग्निविप्रशस्त्राणि ।
 स्वपरस्य घातहेतूनि अन्येषा नैव दातव्यानि ॥
 बह्वंधपासछेदो तह गुरुभाराधिरोहणं चैव ।
 ण वि कुण्णइ जो परोसिं विदियं तु गुणव्वयं होइ ॥ १५० ॥

बधन्वपाशच्छेदानि तथा गुरुभाराभिरोहणं चैव ।
 नापि करोति य परेषां द्वितीयं गुणव्रतं भवति ॥
 वच्छच्छभूषणाण तंबोलाहरणगंधपुष्पाणं ।
 जं किञ्चाह परिमाण तिदियं तु गुणव्ययं होह ॥ १५१ ॥
 बख्त्रभूषणानां ताम्बूलाभरणगंधपुष्पाणां ।
 यच्छ्रियते परिमाणं तृतीयं तु गुणव्रतं भवति ॥
 पंचममोक्तकारपर्यं मंगल लोचुचमं तद्वा सरणं ।
 गिषं क्षाण्यन्वं उमए सञ्ज्ञार्हिं हिययम्मि ॥ १५२ ॥
 पंचनमस्कारपदं मंगलं लोकात्तमं तथा शरणं ।
 नित्यं ध्यातव्यं उभयो सन्ध्ययो हृदये ॥
 रुद्रदृषिवज्जण पि समदा सम्भेसु येव भूदेसु ।
 संजमसुहमावणा पि सिक्खा सा बुधए पढमा ॥ १५३ ॥
 रुद्रार्थिबिबर्जनमपि समता सर्वेषु चैव भूतेषु ।
 संयमद्रुमभावना अपि शिक्षा सा उच्यते प्रथमा ॥
 उषवासो कामन्वो मासे मासे चउस्सु पम्भेसु ।
 हषदि य विदिया सिक्खा सा कहिया विजपरिदेहिं ॥ १५४ ॥
 उषवास कर्तव्यो मासे मासे चतुर्षु पर्वसु ।
 भवति च द्वितीया शिक्षा सा कथिता त्रिनेत्रै ॥
 असणाहउवियप्पो आहारो संमयाण दादन्वो ।
 परमाए भक्तीए तिदिया सा बुधए सिक्खा ॥ १५५ ॥
 अशान्तिचतुर्बिषय्य आहार संयतानां दातव्य ।
 परमया भक्त्या तृतीया सा उच्यते शिक्षा ॥
 चड्डण सम्भसंगे गहिऊणं तद्द महम्मए पंच ।
 परिमते मण्णासं जं चिप्पइ सा चउन्धिया सिक्खा ॥ १५६ ॥

त्यक्त्वा सर्वसङ्गान् गृहीत्वा तथा महाव्रतानि पच ।
 चरमान्ते सन्यास यत् गृह्णति सा चतुर्थी शिक्षा ॥
 एयाइं वयाइं णरो जो पालइ जइ सुद्धसम्मत्तो ।
 उप्पज्जिऊण सग्गे सो भुंजइ इच्छियं सोक्खं ॥ १५७ ॥
 एतानि व्रतानि नरो यः पालयति यदि शुद्धसम्यक्त्वः ।
 उत्पद्य स्वर्गं स भुक्ते इच्छित्त सौख्य ॥
 दिव्वाणि विमाणाणि य सुरलोए होंति पंचवण्णाइं ।
 दित्तीए आयव्वं जिणंति चंदस्स कंतीए ॥ १५८ ॥
 दिव्यानि विमानानि च सुरलोके भवन्ति पंचवर्णानि ।
 दीप्त्या आदित्य जीयन्ते चन्द्र कान्त्या ॥
 सोहंति ताइं णिच्चं पलंवरहेमदामघंटाहिं ।
 बहुविहकूडेहि तहा णाणाविहधयवएहिं ॥ १५९ ॥
 शोभन्ते तानि नित्य प्रलंवरहेमदामघटाभिः ।
 बहुविधकूटैः तथा नानाविधध्वजापताकाभिः ॥
 तेसिं होंति समीवे बहुभेयजलासया परमरम्मा ।
 सोहंति सब्बकालं फलपुष्पवालपत्तेहिं ॥ १६० ॥
 तेषा होंति समीपे बहुभेदजलाशया परमरम्याः ।
 शोभन्ते सर्वकाल फलपुष्पप्रवालपत्रै ॥
 दहूण य उप्पत्तिं केई विज्जंति सेयचमरेहिं ।
 केई जयजयसद्दे कुव्वंति सुरा सउच्छाहा ॥ १६१ ॥
 दृष्ट्वा चात्पत्तिं केचित् वीजयन्ति श्वेतचमरैः ।
 केचित् जयजयशब्दान् कुर्वन्ति सुराः सोत्साहाः ॥
 वरमुरवदुंदुहिरओ भेरीओ संखवेणुवीणाओ ।
 पटुपडहझल्लरिओ वायंति सुरा सलीलाए ॥ १६२ ॥

वरसुरजद्वन्द्वमिरवानी भेर्यं शंसवेणुनीणा ।

पदुपट्टहस्तल्ये मादपन्ति सुरा सखीभ्या ॥

गायति अञ्जराओ काओ वि मनोहराओ गीयाओ ।

काओवि वरंगीओ णवेति विलासवेसाओ ॥ १६३ ॥

गायन्ति अप्सरस का अपि मनोहराणि गीतानि ।

का अपि वराङ्ग वृत्यन्ति विलासवेसा ॥

को मञ्जु इमो धम्मो रमणीओ आसमो इमो को वा ।

कस्स इमो परिवारो एवं चित्तेइ सो देवो ॥ १६४ ॥

किं मम इदं जम रमणीयं आसीदप्यं को वा ।

कस्याय परिवार एवं चिन्तयति स देवः ॥

आऊअ देवलोयं पुणरपि उत्पत्तिकारणं देओ ।

सर्व्वगभायमासो विमसिअवयधो य चित्तेइ ॥ १६५ ॥

ज्ञात्वा देवलोके पुनरपि उत्पत्तिकरणं देव ।

सर्वाङ्गभातमास विकसितवदनश्च चिन्तयति ॥

किं दत्तं वरदार्यं को व मए सोइणो तपो चिण्णो ।

जेण अहं सुरलोए उववण्णो सुद्धरसणीए ॥ १६६ ॥

किं दत्तं वरदार्यं किं वा मया शोभने तप चित्तं ।

येनाहं सुरलोके उपपन्नो सुद्धरसणीए ॥

णाऊअ थिरवसेसं पुब्बमवे य जिणपुञ्जआ रइया ।

तो कुणइ णमोकारं मणीए जिणवरिदार्यं ॥ १६७ ॥

ज्ञात्वा निरवशेषं पूर्णमवे च भिनपूजा रक्षिता ।

तत्तं करोति नमस्कारं भक्त्या भिनवरेन्द्राणां ॥

पुणरपि पणमियमत्थो मणइ सुरो अजलिं सिरे किआ ।

धम्मपरियस्म णमो जेणाहं गाहिओ धम्मो ॥ १६८ ॥

पुनरपि प्रणतमस्तकः भणति सुरः अजलिं शिरसि कृत्वा ।

वर्माचार्याय नमः येनाहं ग्राहितः धर्मः ॥

सो मज्झ वंदणीओ अहिगमणीओ य पूअणीओ य ।

जस्स पसाएणाहं उत्पण्णो देवलोयम्मि ॥ १६९ ॥

स मम वन्दनीयः अभिगमनीयश्च पूजनीयश्च ।

यस्य प्रसादेनाह उत्पन्नो देवलोके ॥

अहिसेहगिहं देवा णाऊण करंति तस्स अहिसेहं ।

पुणरवि अरुहं गेहं आणंति मणोहरं रम्मं ॥ १७० ॥

अभिषेकगृह देवा नीत्वा कुर्वन्ति तस्याभिषेक ।

पुनरपि अर्हद्गृह आनयन्ति मनोहरं रम्य ॥

बहुभूसणेहि देहं भूसंता तस्स दि (व्व) मंतेहिं ।

अहिसिंचिऊण पुणरवि देवा वंधंति वरपट्टं ॥ १७१ ॥

बहुभूषणैः देहं भूषयन् तस्य दिव्यमत्रैः ।

अभिषिच्य पुनरपि देवा बध्नन्ति वरपट्टम् ॥

सिंहासणाट्टियस्स ह्हु सुहगेहेसु सुट्टु रमणीए ।

उवगम केइ देवा जोगाइं कहंति कम्माइं ॥ १७२ ॥

सिंहासनस्थितस्य हि शुभगृहेषु सुष्ठु रमणीयेषु ।

उपगम्य केचिद्देवा योग्यानि कथयन्ति कर्माणि ॥ २

पढमं जिणंदपूयं अवि चलवरलोयणं पुणो पेच्छा ।

वरणाडयस्स पिच्छा तह माणिय दिव्ववहुआउ ॥ १७३ ॥

प्रथमं जिनेन्द्रपूजा अपि चलवरलोचनं पुनः पश्चात् ।

वरनाटकं पश्चात् तथा ॥

पडिबोहिओ ह्हु संतो अण्णेहि सुरेहिं सुरवरो एवं ।

तो क्कणड महापूअं भत्तीए जिणवरिंदाणं ॥ १७४ ॥

प्रतिश्रोक्तो हि सन् अन्यैः सुरैः सुरवर एव ।
 ततः करोति महापुण्यं भक्त्या भिनवरेन्द्राणां ॥
 कृष्णः पुणो वि य तुष्टो अहबेलालोपणं च सो देवो ।
 वरमाह्वयं स पच्छा कृष्णः पुणो पुष्पकयठसि ॥ १७५ ॥
 करोति पुनरपि च तुष्ट अष्टमेलालोचनं ! च स देव ।
 वरनाटकं स इष्ट्वा करोति पुनः पूर्वकर्म इति ॥ १
 दिम्बच्छराहिं यः सम उर्ध्वगण्डहाराहिं चिरकालं ।
 अपुहवः कामभोगे अहगुणरिद्विसंपणो ॥ १७६ ॥
 दिम्बाप्सरोभिश्च सम उर्ध्वगण्ड इत्यादि चिरकालं ।
 अनुभवति कामभोगान् अष्टगुणद्विसम्पन्नः ॥
 अणिमं महिमं लहिमं पत्नीं पायम्भ कामरूपिणः ।
 ईसत्तं च वसिष्ठ अष्टगुणा ह्येति णाम्ब्रा ॥ १७७ ॥
 अणिमा महिमा लहिमा प्राप्तिः प्राक्कर्म्यं कामरूपित्वं ।
 ईशित्वं च वसिष्ठं अष्टगुणा भवति ज्ञातव्या ॥
 इय अष्टगुणो देवो अरवाहिविवज्जिओ चिरं कालं ।
 जिणघम्मस्स फलेण यः दिम्बसुईं भुञ्जे जीओ ॥ १७८ ॥
 इति अष्टगुणो देवो अरम्भाधिभिर्भित्तिचिरं कालं ।
 त्रिनघर्मस्य फलेन च दिम्बसुखं भुञ्जे जीव ॥
 इति देवसुगणसम्मत्ता-इति देवसुगतिः समाप्ता ।

भुञ्जिता चिरकालं दिम्बं हियश्छियं सुईं सगो ।
 माणुसलोयम्मि पुणो उप्पज्जे उच्चमे वंसे ॥ १७९ ॥
 मुक्त्वा चिरकालं दिम्बं इत्येपितं मुखं स्वर्गं ।
 मानुसं पुनः उत्पद्यते उच्चमे वंसे ॥

भुञ्जिता मणुलोए सव्वे हियइच्छियं अविग्घेण ।

होऊण भोयविरओ जिणदिकखं गिण्हए परमं ॥ १८० ॥

भुक्त्वा मनुजलोके सर्वान् हृदयेप्सितान् अविघ्नेन ।

भूत्वा भोगविरतो जिनदीक्षा गृह्णाति परमा ॥

डहिऊण य कम्मवणं उग्गेण तवाणलेण णिस्सेसं ।

आपुण्णभवं अणंतं सिद्धिसुहं पावए जीओ ॥ १८१ ॥

दग्ध्वा च कर्मवन उग्रेण तपोऽनलेन निःशेष ।

आपूर्णभवमनन्त सिद्धिसुख प्राप्नोति जीव ॥

सुमणुसहिए वल्लहमणाइसिद्धं तओ समासेण ।

अणयारपरमधम्मं वोच्छामि समासओ पत्तो ॥ १८३ ॥

सुम.. वल्लभ अनादिसिद्ध तत समासेन ।

अनगारपरमधर्मे वक्ष्ये समासतः प्राप्त ॥

अट्टदस पंच पंच य मूलगुणा सव्वतो सदाणयाराणं ।

उत्तरगुणा अणेया अणयारो एरिसो धम्मो ॥ १८३ ॥

अष्टादश पंच पंच च मूलगुणा सर्वत सदानगाराणा ।

उत्तरगुणा अनेके अनगार एतादृशो धर्म ॥

जे सुद्धवीरपुरिमा जाइजरामरणदुक्खणिन्विण्णा ।

पालंति सुसुद्धभावा ते मूलगुणा य परिसेसा ॥ १८४ ॥

ये शुद्धवीरपुरुषा जातिजरामरणदु खनिर्विन्ना ।

पालयन्ति सुशुद्धभावास्ते मूलगुणान् च परिशेषान् ॥

इच्चेयावि सव्वे पालंति सविरियं अगूहंता ।

उवल्लुद्धयावधीरा संसारदुक्खक्खयंटाए ॥ १८५ ॥

इत्यादिकानपि सर्वान् पालयन्ति स्ववीर्यं अगूहमानाः ।

अपल्लव्यका १ धीरा ससारदु खक्षयेच्छया ॥

प्रतिबोधितो हि सन् अन्ये सुरैः सुरवर एव ।

ततः करोति महापूजां मत्स्या जिनधरेन्द्राणां ॥

कृष्णह पुणो वि य तुष्टो अष्टवेलालोचनं च सो देवो ।

धरणाढ्यं स पञ्चा कृष्णह पुणो पुष्पकयउत्ति ॥ १७५ ॥

करोति पुनरपि च तुष्टः अष्टवेलालोचनं च स देव ।

धरणाढ्यं स इष्ट्वा करोति पुनः पूर्वकर्म इति ॥ १

दिव्यच्छराहिं य सम उत्तंगपठद्वाराहिं धिरकालं ।

अणुहृषह कामभोगे अष्टगुणरिद्धिसंपन्नो ॥ १७६ ॥

स्त्रियास्तरोमिद्य सम उत्तंगप्र हरामि धिरकालं ।

अनुभवति कामभोगान् अष्टगुणरिद्धिसम्पन्न ॥

अग्निं महिं छहिं पची पायम्म कामरूपितं ।

ईसत्तं च वसिष्ठं अष्टगुणा ह्येति प्रायश्चा ॥ १७७ ॥

अग्निमा महिमा छहिमा प्राप्ति प्राकाम्ये कामरूपितं ।

ईशित्वं च वसिष्ठं अष्टगुणा भवन्ति ज्ञातव्याः ॥

इय अष्टगुणो देवो जरनादिविवस्त्रिओ धिरं कालं ।

त्रिणवम्मस्म फलेण य दिव्यसुहं मुञ्जए जीओ ॥ १७८ ॥

इति अष्टगुणो देवो जरन्त्याधिविस्त्रितधिरं कालं ।

त्रिणवर्मस्य फलेन य दिव्यसुहं मुञ्जे जीव ॥

इति देवसुगहसम्मत्ता-इति देवसुगतिः समाप्तः ।

मुञ्जिष्ठा धिरकाल दिव्यं हियश्छियं सुहं सगो ।

माणुसलोयम्मि पुणो उत्पज्जए उत्तमे वंसे ॥ १७९ ॥

मुक्त्वा धिरकालं दिव्ये इत्येप्सितं सुहं स्वर्गं ।

मानुपलाक पुन उत्पपत उत्तमे वंसे ॥

भुञ्जिता मणुलोए सव्वे हियइच्छियं अविग्घेण ।
होऊण भोयविरओ जिणदिकखं गिण्हए परमं ॥ १८० ॥

मुक्त्वा मनुजलोके सर्वान् हृदयेप्सितान् अविघ्नेन ।

भूत्वा भोगविरतो जिनदीक्षा गृह्णाति परमा ॥

उहिऊण य कम्मवणं उग्गेण तवाणलेण णिस्सेसं ।

आपुण्णभवं अणंतं सिद्धिसुहं पावए जीओ ॥ १८१ ॥

दग्ध्वा च कर्मवन उप्रेण तपोऽनलेन नि शेष ।

आपूर्णभवमनन्त सिद्धिसुख प्राप्नोति जीवः ॥

सुमणुसहिए वल्लहमणाइसिद्धं तओ समासेण ।

अणयारपरमधम्मं वोच्छामि समासओ पत्तो ॥ १८३ ॥

सुम... वल्लभ अनादिसिद्ध तत समासेन ।

अनगारपरमधर्मं वक्ष्ये समासतः प्राप्त ॥

अट्ठदस पंच पंच य मूलगुणा सव्वतो सदाणयाराणं ।

उत्तरगुणा अणेया अणयारो एरिसो धम्मो ॥ १८३ ॥

अष्टादश पंच पंच च मूलगुणाः सर्वत सदानगाराणा ।

उत्तरगुणा अनेके अनगार एतादृशो धर्मः ॥

जे सुद्धवीरपुरिसा जाइजरामरणदुक्खणिन्विण्णा ।

पालंति सुसुद्धभावा ते मूलगुणा य परिसेसा ॥ १८४ ॥

ये शुद्धवीरपुरुषा जातिजरामरणदु खनिर्विन्ना ।

पालयन्ति सुशुद्धभावास्ते मूलगुणान् च परिशेषान् ॥

इच्चेयावि सव्वे पालंति सविरियं अगूहंता ।

उवल्लुद्धयावधीरा संसारदुक्खक्खयंटाए ॥ १८५ ॥

इत्यादिकानपि सर्वान् पालयन्ति स्वर्ग्यं अगूहमानाः ।

अपलुब्धका १ वीरा संसारदुःखक्षयेच्छया ॥

हेमन्ते विदिमंता षलिणिदलविष्वासिर्य महासीर्य ।
 संसारदुःखमीए विसहंति चडंति य सीर्य ॥ १८६ ॥
 ह्मन्ते श्रुतिमन्तो नळिनीदलविनाशितं महाशीतं ।
 संसारदुःखभयानपि सहन्ते खडमिति च शीतं ॥
 अलमलमह्लिअंगा पावमलविषज्जिया महामुणिणो ।
 अह्वस्साहिमुहं करंति आदावर्णं घीरा ॥ १८७ ॥
 अह्वमह्वमिनिताङ्गा पापमह्वविर्विता महामुमयः ।
 आदित्यस्याभिमुखं कुर्वन्ति आतापनं घीरा ॥
 धारंषसारगहिले कापुरीमभयागरे परममीमे ।
 मुणिणो वसंति रण्ये तरुमूले वरिसयालम्भि ॥ १८८ ॥
 धारान्वधारगहने कापुरीमभयकरे परममीमे ।
 मुनयो वसन्ति अरण्ये तरुमूले वर्षाकाले ॥
 अजयारपरमधर्मं घीरा काऊण सुदसम्मत्ता ।
 गच्छति वेई समे केई सिञ्जति धुदकम्मा ॥ १८९ ॥
 अनगारपरधर्मं घीरा इत्वा धुदसम्मत्ता ।
 गच्छन्ति केचित् स्वर्गे केचित् सिद्धयन्ति पुतर्माणः ॥
 ण वि अत्यि माणुसाणं आदसमुत्थं चिय विपयातीदं ।
 अब्बुच्छिण्णं च सुहं अणोषर्मं जं च मिद्धाणं ॥ १९० ॥
 नाप्यरित मनुजानां आत्मसमुत्थं पय विपयातीतं ।
 अम्बुच्छिणं च सुहं अनुपमं पय सिद्धान्तं ॥
 अह्वविह्वकम्मवियडा (सा) सीदीमूदा गिरंजणा पिष्वा ।
 अह्वगुणा विह्वविष्वा लोयग्गणिवासिणो मिद्धा ॥ १९१ ॥
 अह्वविधुधर्मविकळा शान्तिमूता निरंजना नित्या ।
 अह्वगुणा इतठत्वा धोकाप्रनिवासिना सिद्धा ॥

सम्मत्त णाण दंसण वीरिय सुहमं तहेव अवगहणं ।
अगुरुलघुमव्वावाहं अट्टगुणा होंति सिद्धाणं ॥ १९२ ॥

सम्यक्त्व ज्ञान दर्शन वीर्यं सूक्ष्म तथैवावगाहनं ।

अगुरुलघु अव्याबाध अष्टगुणा भवन्ति सिद्धानाम् ॥

भवियाण बोहणत्थं इय धम्मरसायणं समासेण ।

वरपउमणंदिमुणिणा रइयं जमणियमजुत्तेण ॥ १९३ ॥

भव्याना बोधनार्यं इद धर्मरसायन समासेन ।

वरपव्वनन्दिमुनिना रचितं यमनियमयुक्तेन ॥

इदि सिरिधम्मरसायणं सम्मत्तं ।

भीमस्कूलमद्रविरचित सार-समुच्चयः ।

देवदेव जिन नत्वा भवोद्भवविनाशनम् ।
 वस्येऽहं देशनां कांश्चिन्मतिहीनोऽपि मक्तिष ॥ १ ॥
 संसारं पर्यटन् जंतुबहुयोनिस्माकुले ।
 शरीरं मानसं दुःखं प्राप्नोति यत ! दारुणं ॥ २ ॥
 आर्चध्यानरतो मूढो न करोत्स्वात्मनो हितं ।
 तेनासौ सुमहत्स्फुल्लं परश्रेहं च गच्छति ॥ ३ ॥
 ज्ञानमात्मनश्चाधीवो लभते हितमात्मनः ।
 विनयाचारसम्पन्नो विषयेषु पराङ्मुखः ॥ ४ ॥
 आत्मानं भावयेन्नित्यं ज्ञानेन विनयेन च ।
 मां पुनश्चिन्तयमाणस्य पश्चात्तापो भविष्यति ॥ ५ ॥
 तथापि सत्त्वपः कार्यं ज्ञानसञ्जावमाहितं ।
 यथा विमलतां याति चेतोरत्नं सुदुस्तरम् ॥ ६ ॥
 नृजन्मनः फलं सारं यदेतज्ज्ञानसेवनम् ।
 अनिगूहितवीर्यस्य संयमस्य च धारणम् ॥ ७ ॥
 ज्ञानध्यानोपयासैश्च परीपद्भ्यस्तथा ।
 शीलसंयमयोगैश्च स्वात्मानं भावयेत् सदा ॥ ८ ॥

ज्ञानाभ्यासः सदा कार्यो ध्याने चाध्ययने तथा ।
 तपसो रक्षणं चैव यदीच्छेद्विदितमात्मनः ॥ ९ ॥
 ज्ञानादित्यो हृदिर्यस्य नित्यमुद्योतकारकः ।
 तस्य निर्मलतां याति पंचेन्द्रियदिग्गङ्गा ॥ १० ॥
 एतज्ज्ञानफलं नाम यच्चारित्रोद्यमः सदा ।
 क्रियते पापनिर्मुक्तेः साधुसेवापरायणैः ॥ ११ ॥
 सर्वद्वन्द्वं परित्यज्य निभृतेनान्तरात्मना ।
 ज्ञानामृतं सदापेयं चित्तालहादनमुत्तमम् ॥ १२ ॥
 ज्ञानं नाम महारत्नं यन्न प्राप्तं कदाचन ।
 संसारे भ्रमता भीमे नानादुःखविधायिनि ॥ १३ ॥
 अधुना तच्चया प्राप्तं सम्यग्दर्शनसंयुतम् ।
 प्रमादं मा पुनः कार्षीर्विषयास्वादलालसः ॥ १४ ॥
 आत्मानं सततं रक्षेज्ज्ञानध्यानतपोबलैः ।
 प्रमादिनोऽस्य जीवस्य शीलरत्नं विलुप्यति ॥ १५ ॥
 शीलरत्नं हतं यस्य मोहध्वान्तमुपेयुषः ।
 नानादुःखशताकीर्णं नरके पतनं ध्रुवम् ॥ १६ ॥
 यावत् स्वास्थं (स्थयं) शरीरस्य यावच्चेन्द्रियसम्मदः ।
 तावद्युक्तं तपः कर्तुं वार्द्धक्ये केवलं श्रमः ॥ १७ ॥
 शुद्धे तपसि सद्दीर्यं ज्ञानं कर्मपरिक्षये ।
 उपयोगिधनं पात्रे यस्य याति स पंडितः ॥ १८ ॥
 गुरुशुश्रूषया जन्म चित्तं सद्ब्रह्मचानचिन्तया ।
 श्रुतं यस्य समे याति विनियोगं स पुण्यभाक् ॥ १९ ॥

छित्वा स्नेहमयान् पाशान् मिथ्वा मोहमहार्गलाम् ।
 सचारित्रसमायुक्तः शूरो मोक्षपथे स्थिरत ॥ २० ॥
 अहो मोहस्य माहात्म्यं विद्वांसो येऽपि मानवा ।
 मुह्यन्ते तेऽपि संसारे कामार्थरतितत्पराः ॥ २१ ॥
 काम क्रोधस्तथा लोभो रागो द्वेषश्च मत्सरः ।
 मदो माया तथा मोहः कन्दर्पो दप एव च ॥ २२ ॥
 एते हि रिपवो चौरा घर्मसर्वस्वहारिणः ।
 एतैर्षन्नम्यते जीवः संसारे बहुदुःखदे ॥ २३ ॥
 रागद्वेषमयो जीवः कामक्रोधश्चे यतः ।
 लोभमोहमहाविष्टः संसारं संसरत्यसौ ॥ २४ ॥
 सम्यक्त्वज्ञानसम्पन्नो जैनमक्तः श्रितेन्द्रियः ।
 लोभमोहमदैस्त्यक्तो मोक्षभागी न संश्रयः ॥ २५ ॥
 कामक्रोधस्तथा मोहश्च योऽप्येत महाद्विषः ।
 एतेन निर्वृता भावभावत्सौर्यं हृतो नृणाम् ॥ २६ ॥
 नास्ति कामसमो व्याधिर्नास्ति मोहसमो रिपुः ।
 नास्ति क्रोधसमो घनिर्नास्ति ज्ञानसमं सुखम् ॥ २७ ॥
 कषायविषयार्थानां देहिनां नास्ति निर्हृतिः ।
 तेषां च विरमे सौर्यं जायते परमाद्भुतम् ॥ २८ ॥
 कषायविषयोरगैर्भात्मा च पीडितः सदा ।
 चिकित्सयतां प्रयत्नेन जिनवाक्सारमैपजै ॥ २९ ॥

१ अस्मादमे अक्षयान् शोकोऽधिकः च-पुस्तके ।

कर्मणा मोहभीयेम मोहितं सकलं जगत् ।

घम्या मोहः समुत्सार्य तपस्यस्ति महाधियाः ॥ १ ॥

२ विषयोयोगैर्भात्मा च-पुस्तके । विषयै रीरैरात्मा च-पुस्तके ।

विषयोरगदष्टस्य कपायविषमोहितः ।
 संयमो हि महामंत्रस्वाता सर्वत्र देहिनाम् ॥ ३० ॥
 कपायकलुषो जीवो गगरजितमानसः ।
 चतुर्गतिभवाम्बोधौ भिन्ना नौरिव सीदति ॥ ३१ ॥
 कपायवशगो जीवो कर्म ब्रध्नाति दारुणम् ।
 तेनासौ क्लेशमाप्नोति भवकोटिषु दारुणम् ॥ ३२ ॥
 कपायविषयैश्चित्तं मिथ्यात्वेन च संयुतम् ।
 संसारबीजतां याति विमुक्तं मोक्षबीजताम् ॥ ३३ ॥
 कपायविषयं सौख्यं इन्द्रियाणां च संग्रहः ।
 जायते परमोत्कृष्टमात्मनो भवभेदि यत् ॥ ३४ ॥
 कपायान् शत्रुवत् पश्येद्विषयान् विषवत्तथा ।
 मोहं च परमं व्याधिमेवं मर्त्यो विचक्षणः ॥ ३५ ॥
 कपायविषयैश्चौरैर्धर्मरत्नं विलुप्यति (ते) ।
 वैराभ्यखड्गधाराभिः शूराः कुर्वन्ति रक्षणम् ॥ ३६ ॥
 कपायकर्षणं कृत्वा विषयाणामसेवनम् ।
 एतद्भो मानवाः ! पथ्यं सम्यग्दर्शनमुत्तमम् ॥ ३७ ॥
 कपायात्पतप्तानां विषयामयमोहिनाम् ।
 संयोगायोगखिन्नानां सम्यक्त्वं परमं हितम् ॥ ३८ ॥
 वरं नरकवासोऽपि सम्यक्त्वेन समायुतः ।
 न तु सम्यक्त्वहीनस्य निर्वासो दिवि राजते ॥ ३९ ॥
 सम्यक्त्वं परमं रत्नं शंकादिमलवर्जितम् ।
 संसारदुःखदारिद्र्य नाशयेत्सुविनिश्चितम् ॥ ४० ॥
 सम्यक्त्वेन हि युक्तस्य ध्रुवं निर्वाणसंगमः ।
 मिथ्यादृशोऽस्य जीवस्य संसारे भ्रमणं सदा ॥ ४१ ॥

पंडितोऽसौ विनीतोऽसौ धर्मज्ञ प्रियदर्शन ।
 य सदाचारसम्पन्न सम्यक्त्वदृढमानस ॥४२॥
 ज्वरामरणरोगानां सम्यक्त्वज्ञानमेतच्च ।
 धर्मेन कुरुते यस्तु स च वैधो विधीयते ॥४३॥
 जन्मान्तरार्जितं कर्म सम्यक्त्वज्ञानसंयमैः ।
 निराकर्तुं मदा युक्तमपूर्वं च निरोधनम् ॥४४॥
 सम्यक्त्वं भावयेत्क्षिप्रं सज्ज्ञानं चरणं तथा ।
 कृच्छ्रात्सुचरितं प्राप्तं नृत्वं याति निरयकम् ॥४५॥
 अतीतेनापि कालेन यन्न प्राप्तं कदाचन ।
 तदिदानीं त्वया प्राप्तं सम्यग्दर्शनमुत्तमम् ॥४६॥
 उच्यते चन्मनि प्राप्ते चारित्र्यं कुरु यत्नत ।
 सद्धर्मे च परां मक्तिं क्षमं च परमां रतिम् ॥४७॥
 अनादिकालजीवेन प्राप्तं दुःखं पुनः पुनः ।
 मिथ्यामोहपरीतन कषायवद्ववर्तिना ॥४८॥
 सम्यक्त्वादित्यसम्पन्नं कर्मध्वान्तं विनश्यति ।
 आसन्नमव्यसत्त्वानां काललब्ध्यादिसभिषौ ॥४९॥
 सम्यक्त्वमावद्भुदेन विपयासङ्गचर्चित ।
 कषायपिग्दन्तैश्च भयदुःखं विहन्यते ॥५०॥
 संसारध्वंसनं प्राप्य सम्यक्त्वं नाशयन्ति ये ।
 वमन्ति तस्मृत पीत्वा सर्वम्याधिहरं पुनः ॥५१॥
 मिथ्यात्वं परमं भीष्मं संसारस्य दुरात्मनः ।
 तस्माच्चदेव मोक्षतव्यं मोक्षसौगर्भं त्रिष्टुभुगा ॥५२॥

आत्मतत्त्वं न जानन्ति मिथ्यामोहेन मोहिताः ।
 मनुजा येन मानस्था विप्रलुब्धाः कुशासनैः ॥५३॥
 दुःखस्य भीरवोऽप्येते सद्धर्म न हि कुर्वते ।
 कर्मणा मोहनीयेन मोहिता ब्रह्मो जनाः ॥५४॥
 कथं न रमते चित्तं धर्मे चैकसुखप्रदे ।
 देवानां दुःखभीरुणां प्रायो मिथ्यादृशो यतः ॥५५॥
 दुःखं न शक्यते सोढुं पूर्वकर्माजितं नरैः ।
 तस्मात् कुरुत सद्धर्मं येन तत्कर्म नश्यति ॥ ५६ ॥
 सुकृतं तु भवेद्यस्य तेन यान्ति परिक्षयम् ।
 दुःखोत्पादनभूतानि दुष्कर्माणि समन्ततः ॥ ५७ ॥
 धर्म एव सदा कार्यो भुक्त्वा व्यापारमन्यतः ।
 यः करोति परं सौख्यं यावन्निर्वाणसंगमः ॥ ५८ ॥
 क्षणेऽपि समतिक्रान्ते सद्धर्मपरिवर्जिते ।
 आत्मानं मुपितं मन्ये कषायेन्द्रियतस्करैः ॥ ५९ ॥
 धर्मकार्ये मतिस्तावद्वावदायुर्दृढं तव ।
 आर्युःकर्मणि संक्षीणे पश्चात्त्वं किं करिष्यसि ॥६०॥
 धर्ममाचर यत्नेन मा भवस्त्वं मृतोपमः ।
 सद्धर्मं चेतसां पुसां जीवितं सफलं भवेत् ॥ ६१ ॥
 मृता नैव मृतास्ते तु ये नरा धर्मकारिणः ।
 जीवंतोऽपि मृतास्ते वै ये नराः पापकारिणः ॥६२॥
 धर्मामृतं सदा पेयं दुःखातङ्कविनाशनम् ।
 यस्मिन् पीते परं सौख्यं जीवानां जायते सदा ॥६३॥

१ तत्त्व ख—पुस्तके । २ आद्युषि कर्मसंक्षीणे क—पुस्तके । ३ जीविना

स धर्मो यो दयायुक्तः सर्वप्राणिहितप्रदः ।
 स एषोत्तारणे शक्तो भवाम्मोघौ सुदुस्तरे ॥ ६४ ॥
 यदा कंठगतप्राणो जीवोऽसौ परिवर्तते ।
 नान्य कश्चित्तादा श्राता मुक्त्वा धर्मं जिनोदितम् ॥ ६५ ॥
 अत्यायुषा नरेषेह धर्मकर्मविजानता ।
 न ज्ञायते कदा मृत्युर्मविष्यति न संशयः ॥ ६६ ॥
 आयुर्यस्यापि देवैर्षी परिष्ठाते हितान्तके ।
 तस्यापि क्षीयते सद्यो निर्मलोत्तरयोगत ॥ ६७ ॥
 जिनैर्निगदितं धर्मं सर्वसौख्यमहानिधिम् ।
 ये न तं प्रतिपद्यन्ते तेषां जन्मनिरर्थकम् ॥ ६८ ॥
 हितं कर्म परित्यज्य पापकर्मसु रज्यते ।
 तेन वै दह्यते चेत श्लोचनीयो भविष्यति ॥ ६९ ॥
 यदि नामाप्रियं दुःखं सुखं वा यदि वा प्रियम् ।
 ततः कुरुत सद्वर्मे जिनानां जितजन्मनाम् ॥ ७० ॥
 विद्वद्वादेव संकल्पात्सर्वं सङ्गिरुपाग्यते ।
 स्वल्पेनैव प्रयासन विभ्रमवदहो परम् ॥ ७१ ॥
 धर्म एव सदा श्राता जीवानां दुःखसंकलात् ।
 तस्मात्कुरुत मो यत्न मश्रानन्तसुखप्रद ॥ ७२ ॥

१ अस्यापि मायप्रायतस्वेयं पापा वर्तते ।

जीवविमुक्तो मयभो र्भ्रमणमुक्तो य दाह अहसयभो ।

मयभो भोयमपुञ्जा लाङ्कारियमि अहसयभा ॥१०

१ तस्य त क—पुस्तके । २ निमित्तोत्तरवोक्तः क—पुस्तके । ४ तत्र

प्रपद्यन्ते क । ५ तथा च ।

यत्त्वया न कृतो धर्मः सदा मोक्षसुखावहः ।
 प्रसन्नमनसा येन तेन दुःखी भवानिह ॥७३॥
 यत्त्वया क्रियते कर्म विषयान्धेन दारुणम् ।
 उदये तस्य सम्प्राप्ते कस्ते त्राता भविष्यति ॥७४॥
 भुक्त्वाप्यनन्तरं भोगान् देवलोके यथेप्सितान् ।
 यो हि तृप्तिं न सम्प्राप्तः स किं प्राप्स्यति सम्प्रति ॥७५॥
 वरं हालाहलं भुक्तं विषं तद्भवनाशनम् ।
 न तु भोगविषं भुक्तमनन्तभवदुःखदम् ॥७६॥
 इन्द्रियप्रभवं सौख्यं सुखाभासं न तत्सुखम् ।
 तच्च कर्मविबन्धाय दुःग्दानैकपण्डितम् ॥७७॥
 अक्षाश्वान्निश्चलं धत्स्व विषयोत्पथगामिनः ।
 वैराग्यप्रग्रहाकृष्टान् सन्मार्गे विनियोजयेत् ॥७८॥
 अक्षाण्येव स्वकीयानि शत्रवो दुःखहेतवः ।
 विषयेषु प्रवृत्तानि कषायवशवर्तिनः ॥ ७९ ॥
 इन्द्रियाणां यदा छंदे वर्तते मोहसंगतः ।
 तदात्मैव तव शत्रुगत्मनो दुःखबन्धनः ॥ ८० ॥
 इन्द्रियाणि प्रवृत्तानि विषयेषु निरन्तरम् ।
 सज्ज्ञानभावनाशक्त्या वारयन्तीह ते रताः ॥ ८१ ॥
 इन्द्रियेच्छारुजामर्ज्ञः ? कुरुते यो ह्युपक्रमम् ।
 तमेव मन्यते सौख्यं किं तु कष्टमतः परम् ॥ ८२ ॥
 आत्माभिलाषरागाणां यः समः क्रियते बुधैः ।
 तदेव परमं तत्त्वमित्यूचुर्ब्रह्मवेदिन ॥ ८३ ॥

इन्द्रियाणां समे लामं रागद्वेषजयेन च ।
 आत्मान योजयेत्सम्यक् संसृतिच्छेदकारणम् ॥ ८४ ॥
 इन्द्रियाणि वशे यस्य यस्य दुष्टं न मानसम् ।
 आत्मा धर्मरतो यस्य सफलं तस्य जीवितम् ॥ ८५ ॥
 परनिन्दासु ये मूका निजश्लाघ्यपराङ्मुखा ।
 ईदृशैरे गुणैर्युक्ता पूज्या सर्वत्र विष्टये ॥ ८६ ॥
 प्राणान्तिकेऽपि सम्प्राप्ते वर्जनीयानि साधुना ।
 परं लोकविरुद्धानि येनात्मा सुखमश्नुते ॥ ८७ ॥
 स मानवति भूतानि यः सदा विनयान्वितः ।
 स प्रियः सर्वलोकेऽस्मिन्नापमानं समश्नुते ॥ ८८ ॥
 किम्पाकस्य फलं मह्य कदाचिदपि भीमता ।
 विषयास्तु न मोक्तव्या यद्यपि स्यु सुपेशला ॥ ८९ ॥
 स्त्रीसम्पर्कसम सौख्यं वर्णयन्त्यधुषा अना ।
 विचार्यमाणमेतद्धि दुःखानां बीजमुत्तमम् ॥ ९० ॥
 स्मराग्निना प्रदग्धानि क्षरीराणि क्षरीरिण्याम् ।
 क्षमाम्मसा हि सिक्तानि निवृत्ति नैव मेजिर ॥ ९१ ॥
 अग्निना तु प्रदग्धानां स(क्ष)मोस्तीति यतोऽत्र वै ।
 स्मरवन्निप्रदग्धानां स(क्ष)मो नास्ति मवेऽपि ॥ ९२ ॥
 मदनोऽस्ति महाभ्याभिर्दुःखिकिस्स्यः नदा धुषै ।
 संसारवर्धनेऽत्यथ दुःखोत्पादनवत्परः ॥ ९३ ॥
 वापदस्य हि कामाग्निहृदये प्रण्वलत्थलम् ।
 आभयन्ति हि कर्माणि ताषदस्म निरन्तरम् ॥ ९४ ॥

१ बुद्ध्यास्ते पूज्या सर्वविष्टये च । २ परलोक च । ३ भामूवन्ति च ।

४ तावत्स्य च ।

कामाहिदृढदृष्टस्य तीव्रा भवति वेदना ।
 यया सुमोहितो जन्तुः संसारे परिवर्तते ॥ ९५ ॥
 दुःखानामाकरो यस्तु संसारस्य च वर्धनम् ।
 स एव मदनो नाम नराणां स्मृतिसूदनः ॥ ९६ ॥
 संकल्पाच्च समुद्भूतः कामसर्पोतिदारुणः ।
 रागद्वेषद्विजिह्वोऽसौ वशीकर्तुं न शक्यते ॥ ९७ ॥
 दुष्टा येयमनङ्गेच्छा सेयं संसारवर्धिनी ।
 दुःखस्योत्पादने शक्ता शक्ता वित्तस्य नाशने ॥ ९८ ॥
 अहो ते धिषणाहीना ये स्मरस्य वशं गताः ।
 कृत्वा कल्मषमात्मानं पातयन्ति भवार्णवे ॥ ९९ ॥
 स्मरेणातीवरौद्रेण नरकावर्तपातिना ।
 अहो खलीकृतो लोको धर्माभूतपराङ्मुखः ॥ १०० ॥
 स्मरेण स्मरणादेव वैरं देवनियोगतः ।
 हृदये निहितं शल्यं प्राणिनां तापकारकम् ॥ १०१ ॥
 तस्मात्कुरुत सद्वृत्तं जिनमार्गरताः सदा ।
 ये सत्खण्डितां याति स्मरशल्यं सुदुर्धरम् ॥ १०२ ॥
 चित्तसंदूषकः कामस्तथा सद्गतिनाशनः ।
 सद्वृत्तध्वंसनश्चासौ कामोऽनर्थपरम्परा ॥ १०३ ॥
 दोषाणामाकरः कामो गुणानां च विनाशकृत् ।
 पापस्य च निजो बन्धु परापदां चैव संगमः ॥ १०४ ॥
 पिशाचेनैव कामेन छिद्रितं सकलं जगत् ।
 बन्ध्रमेति परायत्तं भवाब्धौ स निरन्तरम् ॥ १०५ ॥

वैरम्यमावनामभैस्तभिवार्य महात्फलं ।
 स्वच्छन्दवृत्तयो घीराः सिद्धिसौम्यं प्रपेदिरे ॥ १०६ ॥
 कामी त्यजति सद्गुरुं गुरोर्वाणीं हियं तथा ।
 गुणानां समुदायं च वेतः स्वास्थ्यं तथैव च ॥ १०७ ॥
 तस्मात्कामः सदा हेयो मोक्षसौम्यं जिघृक्षुमि ।
 संसारं च परित्यक्तुं बाञ्छन्निर्यतिसत्तमैः ॥ १०८ ॥
 कामार्थी वैरिणौ नित्यं विदुर्दध्यानरोधनौ ।
 संत्यज्यतां महाक्रूरौ सुखं संजायते नृणाम् ॥ १०९ ॥
 कामदाहो धरं मोर्षुं न तु क्षीलस्य स्वप्नम् ।
 क्षीलखड्गनशीलानां नरके पतनं ध्रुव ॥ ११० ॥
 कामदाहः सदा नैव स्वल्पकालेन क्षाम्यति ।
 सेवनाथ महापापं नरकावर्तपातनम् ॥ १११ ॥
 सुतीव्रेषापि कामेन स्वल्पकालं तु वेदना ।
 खंडनेन तु क्षीलस्य भवकोटिषु वेदना ॥ ११२ ॥
 नियतं प्रश्नं याति कामदाहः सुदाह्याः ।
 ध्यानोपयोगसामर्थ्याद्विषं मंत्रपदैर्यथा ॥ ११३ ॥
 असेवनमनङ्गस्य क्षमायं परमं स्मृतम् ।
 सेवनाथ परा बुद्धिः क्षमस्तु न कदाचन ॥ ११४ ॥
 उपवासोऽवमोदयं रसानां त्यजनं तथा ।
 अस्नानसेवनं चैव ताम्बूलस्य च वर्जनम् ॥ ११५ ॥
 असेवेच्छानिरोधस्तु निरनुस्मरणं तथा ।
 एते हि निजरोपाया मदनस्य महारिपो ॥ ११६ ॥

काममिच्छानिरोधेन क्रोधं च क्षमया भृशं ।
 जयेन्मानं मृदुत्वेन मोहं संज्ञानसेवया ॥ ११७ ॥
 तस्मिन्नुपशमे प्राप्ते युक्तं सद्वृत्तधारणं ।
 तृष्णां सुदूरतस्त्यक्त्वा विषान्ममिव भोजनं ॥ ११८ ॥
 कर्मणां शोधनं श्रेष्ठं ब्रह्मचर्यसुरक्षितं ।
 सारभूतं चरित्रस्य देवैरपि सुपूजितम् ॥ ११९ ॥
 या चैषा प्रमदा भाति लावण्यजलवाहिनी ।
 सैषा वैतरणी धीरं दुःखोर्मिशतसंकुला ॥ १२० ॥
 संसारस्य च बीजानि दुःखानां राशयः पराः ।
 पापस्य च निधानानि निर्मिता केन योषितः ॥ १२१ ॥
 इयं सा मदनज्वाला वन्हेरिव समुद्भृता ।
 मनुष्यैर्यत्र हूयंते यौवनानि धनानि च ॥ १२२ ॥
 नरकावर्तपातिन्यः स्वर्गमार्गद्वारगलाः ।
 अनर्थानां विधायिन्यो योषितः केन निर्मिताः ॥ १२३ ॥
 कृमिजालशताकीर्णे दुर्गन्धमलपूरिते ।
 विष्मूत्रसंवृते स्त्रीणां का काये रमणीयता ॥ १२४ ॥
 अहो ते सुखितां प्राप्ता ये कामानलवर्जिताः ।
 सद्वृत्तं विधिनापाल्य यास्यन्ति पदमुत्तमं ॥ १२५ ॥

१ घोरा ख । २ अस्मादग्रे श्लोकोऽयं ख-पुस्तके-

दर्शने हरते चित्तस्पर्शने हरते धनम्
 संयोगे हरते प्राणनारी प्रत्यक्षराक्षसी ॥ १ ॥

३ नराणां ख । ४ त्वद्भात्रसंवृते ख ।

मोगार्थी यः करोत्यङ्गो निदानं मोहसंगतः ।
 शूर्णीकरोत्यसौ रत्नं अनर्थसूत्रदेतुना ॥ १२६ ॥
 भवमोगशरीरेषु भावनीयः सदा बुधैः ।
 निर्वेदः परया बुद्ध्या कर्मारतिविघ्नभूमिः ॥ १२७ ॥
 यावन्न मृत्युषम्रेण देहशलो निपात्यतः ।
 नियुज्यतां मनस्तावत्कर्मारतिपरिष्वये ॥ १२८ ॥
 त्यज कामार्थयोः संगं धर्मध्यानं सदा मज्ज ।
 छिद्रि श्लेहमयान् पाशान् मानुष्यं प्राप दुर्लभम् ॥ १२९ ॥
 कथं ते भ्रष्टसद्बुद्धः ? विषयास्तुपसेवते ।
 पञ्चतां हरतां तेषां नरके तीव्रवेदना ॥ १३० ॥
 सद्बुद्धभ्रष्टचित्तानां विषयासंगसंगिनाम् ।
 तेषामिहैव दुःखानि भवन्ति नरकेषु च ॥ १३१ ॥
 विषयास्वादलुब्धेन रागद्वेषवशात्मना ।
 आत्मा च ध्वंसितस्तेन यः क्षमः नापि सेवते ॥ १३२ ॥
 आत्मनां यस्कुतं कर्म भोक्तव्यं तदनेकधा ।
 तस्मात् कर्मास्त्रवं रुद्ध्वा स्वेन्द्रियाणि धर्षं नयेत् ॥ १३३ ॥
 इन्द्रियप्रमरं रुद्ध्वा स्वात्मानं वधमानयेत् ।
 येन निर्वाणसौख्यस्य भाजनं स्वं प्रपत्स्वसे ॥ १३४ ॥
 सम्पन्नेष्वपि मोगेषु महतां नास्ति गृह्यता ।
 अन्येषां गृह्यिरेषाम्नि क्षमस्तु न कदाचन ॥ १३५ ॥
 पट्टस्त्रं चाधिपतिभङ्गी परित्यज्य वसुन्धराम् ।
 वृषवत् सर्वमोगांश्च वीर्या दैगम्बरी स्थिता ॥ १३६ ॥

कृमितुल्यैः किमस्माभिः भोक्तव्यं वस्तु दुस्तरं ।
 तेनात्र गृहपङ्केषु सीदामः किमनर्थकम् ॥ १३७ ॥
 येन ते जनितं दुःखं भवाम्भोधौ सुदुस्तरम् ।
 कर्मारातिमतीवोग्रं विजेतुं किं न वाञ्छसि ॥ १३८ ॥
 अब्रह्मचारिणो नित्यं मांसभक्षणतत्पराः ।
 शुचित्वं तेऽपि मन्यन्ते किन्तु चिन्त्यमतःपरम् ॥ १३९ ॥
 येन संक्षीयते कर्म संचयश्च न जायते ।
 तदेवात्मविदा कार्यं मोक्षसौख्याभिलाषिणा ॥ १४० ॥
 अनेकशस्त्वया प्राप्ता विविधा भोगसम्पदः ।
 अप्सरोगणसंकीर्णं दिवि देवविराजिते ॥ १४१ ॥
 पुनश्च नरके रौद्रे रारवेऽत्यन्तमीतिदे ।
 नानाप्रकारदुःखोद्यैः संस्थितोऽसि विधेर्वशात् ॥ १४२ ॥
 तप्ततैलिकभल्लीषु पच्यमानेन यत्त्वया ।
 संप्राप्तं परमं दुःखं तद्वक्तुं नैव पार्यते ॥ १४३ ॥
 नानायंत्रेषु रौद्रेषु पीडयमानेन वन्धिना ।
 दुःसहा वेदना प्राप्ता पूर्वकर्मनियोगतः ॥ १४४ ॥
 विष्मूत्रपूरिते भीमे पूतिश्लेष्मावसाकुले ।
 भूयो गर्भगृहे मातुर्देवाद्यातोऽसि संस्थितिम् ॥ १४५ ॥
 तिर्यग्गतौ च यद्दुःखं प्राप्तं छेदनभेदनैः ।
 न शक्तस्तत् पुमान् वक्तुं जिह्वाकोटिशतैरपि ॥ १४६ ॥
 संसृतौ नास्ति तत्सौख्यं यन्न प्राप्तमनेकधा ।
 देवमानवतिर्यक्षु भ्रमता जन्तुनानिशं ॥ १४७ ॥

चतुर्गतिनिबन्धेऽस्मिन् संसारेऽस्य तमीतिदे ।
 सुखदुःखान्यथाज्ञानानि भ्रमता विधियोगतः ॥ १४८ ॥
 एवंविधमिदं कष्टं ज्ञात्वास्पन्तविनश्वरम् ।
 कर्म न यासि वैराग्यं विगस्तु तव जीवितम् ॥ १४९ ॥
 जीवितं विद्युता तुल्यं संयोगाः स्वप्नसन्निभा ।
 सन्ध्यारागममः स्नेहं शरीरं वृषभिन्दुवत् ॥ १५० ॥
 शक्रचापसमा भोगाः सम्पदो जलदोपमाः ।
 यौवनं जलरेखेव सर्षमेतदशाश्वतम् ॥ १५१ ॥
 समानवयसो हृष्टा मृत्युना स्ववशीकृताः ।
 कर्म चेतः ममो नास्ति मनागपि हितात्मनः ॥ १५२ ॥
 सर्वाङ्गुलिमये कर्मि नश्वरे व्याधिपीडिते ।
 को हि विद्वान् रतिं गच्छेद्यथास्ति भुवसंगमः ॥ १५३ ॥
 चिरं सुपोषितः कामो भोजनाच्छादनादिभिः ।
 विकृतिं याति सोऽप्यन्ते कास्या बाह्येषु वस्तुषु ॥ १५४ ॥
 नापातो बभ्रुमि सार्धं न गतो बन्धुमि समं ।
 इवैव स्वजने स्नेहो नराणां मूढचेतसाम् ॥ १५५ ॥
 ज्ञातनात्रश्यमर्षम्य प्राणिना प्राणभारिणा ।
 अतः कुत मा श्लोकं मृतं बभ्रुजने बुधाः ॥ १५६ ॥
 आत्मकार्यं परित्यज्य परकार्येषु यी रतः ।
 ममस्वरसचेतस्के स्वहितं अंशमेप्स्यति ॥ १५७ ॥
 स्वहितं तु भवेज्ज्ञानं चारिश्रं दर्शनं तथा ।
 तपःसंरक्षणं चैव सर्वविद्भिस्तादुच्यते ॥ १५८ ॥

सुखसंभोगसंमूढा विषयास्वादलम्पटा ।
 स्वहिताद्ब्रह्ममागत्य गृहवासं सिषेविरे ॥ १५९ ॥
 वियोगा बहवो दृष्टा द्रव्याणां च परिक्षयात् ।
 तथापि निघृण चेत सुखास्वादनलम्पटः ॥ १६० ॥
 यथा च जायते चेतः सम्यक्छुद्धिं सुनिर्मलाम् ।
 तथा ज्ञानविदा कार्यं प्रयत्नेनापि भूरिणा ॥ १६१ ॥
 विशुद्धं मानसं यस्य रागादिमलवर्जितम् ।
 संसाराद्यं फलं तस्य सकलं समुपस्थितम् ॥ १६२ ॥
 संसारध्वंसने हीष्टं धृतिमिन्द्रियनिग्रहे ।
 कषायविजये यत्नं नाभव्यो लब्धुमर्हति ॥ १६३ ॥
 एतदेव परं ब्रह्म न विन्दन्तीह मोहिनः ।
 यदेतच्चित्तनैर्मल्यं रागद्वेषादिवर्जितम् ॥ १६४ ॥
 तथानुष्ठेयमेतद्धि पंडितेन हितैषिणा ।
 यथा न विक्रियां याति मनोऽत्यर्थं विपत्स्वपि ॥ १६५ ॥
 धन्यास्ते मानवा लोके ये च प्राप्यापदां पराम् ।
 विकृतिं नैव गच्छन्ति यतस्ते साधुमानसाः ॥ १६६ ॥
 संक्लेशो न हि कर्तव्यः संक्लेशो बन्धकारणं ।
 संक्लेशपरिणामेन जीवो दुःखस्य भाजनं ॥ १६७ ॥
 संक्लेशपरिणामेन जीवः प्राप्नोति भूरिशः ।
 सुमहत्कर्ममम्बन्धं भवकोटिषु दुःखदम् ॥ १६८ ॥
 चित्तरत्नमसंक्लिष्टं महतामुत्तमं धनम् ।
 येन सम्प्राप्यते स्थानं जरामरणवर्जितम् ॥ १६९ ॥
 सम्पत्तौ विस्मिता नैव विपत्तौ नैव दुःखिताः ।
 महतां लक्षणं ह्येतन्न तु द्रव्यसमागमः ॥ १७० ॥

आपत्सु सम्पत्तन्तीषु पूर्वकर्मनियोगत ।
 शौर्यमेव परं प्राणं न युक्तमनुश्लोचनम् ॥ १७१ ॥
 विशुद्धपरिणामेन शान्तिर्मवति सर्वत ।
 संक्लिष्टेन तु चित्तन नास्ति शान्तिर्मवेष्वपि ॥ १७२ ॥
 संक्लिष्टचेतसां पुंसां माया संसारवर्षिणी ।
 विशुद्धचेतसो वृत्तिः सम्पत्तिवित्तदायिनी ॥ १७३ ॥
 यदा चित्तविशुद्धः म्यादापदं सम्पदस्तथा ।
 समस्तस्वविदां पुंसां सर्वं हि महतां महत् ॥ १७४ ॥
 परोऽप्युत्पयमापन्नो निपेक्षु युक्त एव सः ।
 किं पुन स्वमनोत्यर्थं विपयोत्पययाशिवत् ॥ १७५ ॥
 अज्ञानाद्यदि मोहाद्यत्कृतं कर्म सुकृत्सितम् ।
 व्यावर्तयेन्मनस्तस्मात् पुनस्तन्न समाचरेत् ॥ १७६ ॥
 अचिरेष्वैव कालेन फलं प्राप्स्यसि दुर्मते ! ।
 विपादेऽतीव तिक्तस्यै कर्मणो यत्क्षया कर्तव्यम् ॥ १७७ ॥
 बर्धमानं हित कर्म संज्ञानाद्यो न श्लोघयेत् ।
 सुप्रभूर्तार्णवसंग्रस्तः स पथात्परितप्यते ॥ १७८ ॥
 सुखमार्षकृते मूढा किं न कुर्वन्ति मानवाः ।
 येन सन्तापमायान्ति त्वन्मकोटिश्लेष्वपि ॥ १७९ ॥
 परं च बंधयामीति यो हि मायां प्रयुज्यते ।

१ विशुद्धि क । २ तथा ख । ३ तत्त्वविद्या पुसा ख । ४ यत्कृतं क-
 ५ स्वस्तस्व कषेय ख । ६ अस्माद्यमे ख-युक्तके लोकोऽयं
 स्वर्ग्यर्णव कालेन फलं प्राप्स्यसि यत्कृतं ।
 शास्त्रप्रारम्भकर्मण्या गोपयत्सुमनागपि ॥११॥
 ७ सुप्रभूतभूतसंग्रस्त ख । ८ कृता क ।

इहामुत्र च लोके वै तैरात्मा वंचितः सदा ॥१८०॥
 पंचतासन्नतां प्राप्तं न कृतं सुकृतार्जनं ।
 स मानुषेऽपि संप्राप्ते हा ! गतं जन्म निष्फलम् ? ॥१८१॥
 कर्मपाशविमोक्षाय यत्नं यस्य न देहिनः ।
 संसारे च महागुप्तौ बद्धः संतिष्ठते सदा ॥१८२॥
 गृहाचारकवासेऽस्मिन् विषयामिषलोभिनः ।
 सीदंति नरशार्दूला बद्धा बान्धवबन्धनैः ॥१८३॥
 गर्भवासेऽपि यद्दुःखं प्राप्तमत्रैव जन्मनि ।
 अधुना विस्मृतं केन येनात्मानं न बुध्यसे ॥१८४॥
 चतुरशीतिलक्षेषु योनीनां भ्रमता त्वया ।
 प्राप्तानि दुःखशल्यानि नानाकाराणि मोहिना ॥१८५॥
 कथं नोद्विजसे मूढ ! दुःखात् संसृतिसंभवात् ।
 येन त्वं विषयासक्तो लोभेनास्मिन् वशीकृतः ॥१८६॥
 यत्त्वयोपार्जितं कर्म भवकोटिषु पुष्कलं ।
 तच्छेतुं चेन्न शक्तोऽसि गतं ते जन्म निष्फलम् ॥१८७॥
 अज्ञानी क्षिपयेत्कर्म यज्जन्मशतकोटिभिः ।
 तज्ज्ञानी तु त्रिगुप्तात्मा निहन्यन्तर्मुहूर्ततः ॥१८८॥
 जीवितेनापि किं तेन कृता न निर्जरा तदा ।
 कर्मणां संवरो वापि संसारासारकारिणाम् ॥१८९॥
 स जातो येन जातेन स्वकृता पक्वपाचना ।
 कर्मणां पाकघोराणां विविधेन महात्मनाम् ॥१९०॥
 रोषे रोषं परं कृत्वा माने मानं विधाय च ।
 सङ्गे सङ्गं परित्यज्य स्वात्माधीनसुखं कुरु ॥१९१॥

परिग्रहे महादेपो मुक्तौ च रतिरुत्तमा ।
 सद्ग्रहाने चित्तमेकार्ग्रं रौद्रार्घं नैव सस्वितम् ॥ १९२ ॥
 धर्मस्य संचये यत्नं कर्मणां च परिश्रये ।
 साधूनां श्रेष्ठितं चित्तं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १९३ ॥
 मानस्वमं हृद् मक्त्वा लोमाद्रिं च विदार्य वै ।
 मायावर्ष्ठीं समुत्पात्र्य क्रोधशत्रुं निहन्य च ॥ १९४ ॥
 यथास्थार्तं हितं प्राप्य चारित्र्यं ध्यानवत्पर ।
 कर्मणां प्रश्रयं कृत्वा प्राप्नोति परमं पदम् ॥ १९५ ॥
 संगदिरहिता घीरा रागादिमलवर्जिता ।
 शान्ता दान्तास्तपोभूषा मुक्तिकांश्चमत्परा ॥ १९६ ॥
 मनोपाकाययोगेषु प्रणिधानपरायणाः ।
 वृत्ताख्या ध्यानमम्पन्नास्तं पार्श्वं करुमापराः ॥ १९७ ॥
 श्रुतिभावनया युक्ता ह्युममावनयान्विता ।
 तत्सार्थाहितचेतस्कास्ते पार्श्वं दातुरुत्तमाः ॥ १९८ ॥
 श्रुतिभावनया दुःखं सत्त्वभावनया भवम् ।
 ज्ञानभावनया कर्म नाशयन्ति न संशय ॥ १९९ ॥
 अग्रहो हि क्षमे येषां विग्रहं कर्मशत्रुमि ।
 विषयेषु निरासङ्गास्ते पार्श्वं यतिसत्तमाः ॥ २०० ॥
 नि संगिनोऽपि वृत्ताख्या निस्नेहाः सुभ्रुतिप्रिया ।
 अभूषा पि तपोभूषास्तं पार्श्वं योगिनः सदा ॥ २०१ ॥
 यैमेमत्त्वं सदा त्यक्तं स्वकायेऽपि मनीषिभिः ।
 तं पार्श्वं संयतात्मानं सर्वसत्त्वहिते रता ॥ २०२ ॥

परीषहजये शक्तं शक्तं कर्मपरिक्षये ।
 ज्ञानध्यानतपोभूषं शुद्धाचारपरायणं ॥ २०३ ॥
 प्राशान्तमानसं सौख्यं प्रशान्तकरणं शुभं ।
 प्रशान्तारिमहामोहकामक्रोधनिसूदनम् ॥ २०४ ॥
 निन्दास्तुतिसमं धीर शरीरेऽपि च निस्पृहं ।
 जितेन्द्रियं जितक्रोधं जितलोभमहाभटं ॥ २०५ ॥
 रागद्वेषविनिर्मुक्तं सिद्धिसंगमनोत्सुकम् ।
 ज्ञानभ्यासरतं नित्यं नित्यं च प्रशमे स्थितम् ॥ २०६ ॥
 एवं विधं हि यो दृष्ट्वा स्वगृहाङ्गणमागतम् ।
 मात्सर्यं कुरुते मोहात् क्रिया तस्य न विद्यते ॥ २०७ ॥
 चतुर्भिः कुलकम् ।

मायां निरासिकां कृत्वा तृष्णां च परमौजसः ।
 रागद्वेषौ समुत्सार्य प्रयाता पदमक्षयम् ॥ २०८ ॥
 धीराणामपि ते धीरा ये निराकुलचेतसः ।
 कर्मशत्रुमहासैन्यं ये जयन्ति तपोबलात् ॥ २०९ ॥
 परीषहजये शूराः शूराश्चेन्द्रियनिग्रहे ।
 कषायविजये शूरास्ते शूरा गदिता बुधैः ॥ २१० ॥
 नादत्तेऽभिनवं कर्म सच्चारित्रनिविष्टधीः ।
 पुराणं निर्जयेद्भाटं विशुद्धध्यानसंगतः ॥ २११ ॥
 संसारावासनिर्वृत्ताः शिवसौख्यसमुत्सुकाः ।
 सद्भिस्ते गदिताः प्राज्ञाः शेषाः शास्त्रस्य वंचकाः ॥ २१२ ॥
 समता सर्वभूतेषु यः करोति सुमानसः ।
 समत्वभावनिमुक्तो यात्यमौ पदमव्ययम् ॥ २१३ ॥

इन्द्रियाणां जये शूराः कर्मबन्धे च कातराः ।
 तत्वार्याहितचेतस्का स्वशरीरेऽपि निस्पृहा ॥ २१४ ॥
 परीपहमहारासिवननिर्दलनक्षमाः ।
 कपायविषये शूराः स शूर इति कथ्यते ॥ २१५ ॥
 संसारध्वंसिनीं चर्यां ये कुर्वन्ति सदा नराः ।
 रागद्वेषद्विं कृत्वा ते यान्ति परमं पदम् ॥ २१६ ॥
 मलैस्तु रहिता घीरा मलदग्धाङ्गयण्य ।
 सद्गुणधारिणो निरयं ज्ञानाम्बासं सिपेविर ॥ २१७ ॥
 ज्ञानमावनया शक्तां निमृतेर्नान्तरात्मनः ।
 अप्रमर्षं गुणं प्राप्य लभन्ते हितमात्मन ॥ २१८ ॥
 संसारावासमीरुष्णां त्यक्तान्तर्बाह्यसंगिनाम् ।
 विषयेभ्यो निवृत्तानां स्याभ्य तेषां हि जीवितम् ॥ २१९ ॥
 समं शत्रौ च मित्रं च समो मानापमानयो ।
 लामालामे समो नित्यं लोष्टुकांश्चनयोस्तथा ॥ २२० ॥
 सम्यक्स्वमावनाशुद्धं ज्ञानसेवापरायण ।
 चारित्राचरथासक्तमक्षीणमुत्सुक्यधिपम् ॥ २२१ ॥
 ईदृशं भ्रमणं दृष्ट्वा यो न मन्येत दुष्टधी ।
 नृबन्मनिष्फलं सारं संहारयति सर्वथा ॥ २२२ ॥
 रागादिबर्जनं सङ्गं परित्यज्य दृढव्रता ।
 घीरा निर्मलचेतस्का तर्पयन्ति महाधिपः ॥ २२३ ॥
 ससारोद्भिप्रचितानां नि भ्रयससुखैपिणाम् ।
 सर्वसंगनिवृत्तानां भ्रन्यं तेषां हि जीवितम् ॥ २२४ ॥

सप्तभीस्थानमुक्तानां यत्रास्तमितशायिनाम् ।
 त्रिकालयोगयुक्तानां जीवितं सफलं भवेत् ॥२२५॥
 आर्त्तरौद्रपरित्यागाद् धर्मशुक्लसमाश्रयात् ।
 जीवः प्राप्नोति निर्वाणमनन्तसुखमच्युतं ॥२२६॥
 आत्मानं विनयाम्याशु विषयेषु पराङ्मुखः ।
 साधयेत्स्वहितं प्राज्ञो ज्ञानाभ्यासरतो यतिः ॥२२७॥
 यथा संगपरित्यागस्तथा कर्मविमोचनम् ।
 यथा च कर्मणां छेदस्तथासन्नं परं पदम् ॥२२८॥
 यत्परित्यज्य गन्तव्यं तत्स्वकीयं कथं भवेत् ।
 इत्यालोच्य शरीरेऽपि विद्वान् तां च परित्यजेत् ॥२२९॥
 नूनं नात्मा प्रियस्तेषां ये रता संगसंग्रहे ।
 समासीनाः प्रकृतिस्थाः स्वीकर्तुं नैवशक्यते ॥२३०॥
 शरीरमात्रसंगेन भवेदारंभवर्धनम् ।
 तदशाश्वतमत्राणं तस्मिन् विद्वान् रतिं त्यजेत् ॥२३१॥
 संगत्संजायते गृद्धिर्गृद्धौ वाञ्छति संचयम् ।
 संचयाद्धर्धते लोभो लोभाद्दुःखपरंपरा ॥२३२॥
 ममत्वाज्जायते लोभो लोभाद्भागश्च जायते ।
 रागाच्च जायते द्वेषो द्वेषाद्दुःखपरंपरा ॥२३३॥
 निर्ममत्वं परं तत्त्वं निर्ममत्वं परं सुखं ।
 निर्ममत्वं परं वीजं मोक्षस्य कथितं बुधैः ॥२३४॥
 निर्ममत्वे सदा सौख्यं संसारस्थितिच्छेदं नम् ।
 जायते परमोत्कृष्टमात्मन संस्थिते सति ॥२३५॥

अर्थो मूलमनर्थानामर्थो निवृत्तिनाशनम् ।
 कषायोत्पादककार्यो दुःखानां च विघापक ॥ २३६ ॥
 प्राप्तोऽङ्गितानि विज्ञानि त्वया सर्वाणि ससृता ।
 पुनस्तेषु रति कष्टां मुक्तवान्त इवौदने ॥ २३७ ॥
 को वा विषं समादाय परलोकं गतः पुमान् ।
 येन तृष्णामिसंतप्तं कर्म भङ्गाति दाह्यम् ॥ २३८ ॥
 तृष्णाघा नैष पश्यन्ति द्वितं वा यदि बाह्यम् ।
 सन्तोषाङ्गनमासाद्य पश्यन्ति सुधियो जना ॥ २३९ ॥
 सन्तोषसारसद्रसन समादाय विषक्षणा ।
 भवन्ति सुखिनो नित्य मोक्षसन्मार्गवर्तिन ॥ २४० ॥
 तृष्णानलप्रदीप्तानां सुसौख्यं तु कुतो नृणाम् ।
 दुःखमेव सदा तेषां ये रता धनसंक्षये ॥ २४१ ॥
 सन्तुष्टाः सुखिनो नित्यमसन्तुष्टाः सुदुःखिता ।
 उभयोरन्तरं ज्ञात्वा सन्तोषे क्रियतां रति ॥ २४२ ॥
 द्रव्याणां दूरतस्त्वयस्त्वा सन्तोषं कुरु सन्मते ? ।
 मा पुनर्दीर्घसंसारे पर्यटिष्यमि निमित्तम् ॥ २४३ ॥
 ईश्वरो नाम सन्तोषी यो प्रार्थयते परम् ।
 प्रार्थनां महतामत्र परं दारिद्र्यकारणम् ॥ २४४ ॥
 हृदयं दहतेऽत्यर्थं तृष्णामिपरिहापित ।
 न क्षयं क्षमनं कर्तुं विना सन्तोषवारिष्ठा ॥ २४५ ॥
 यैः सन्तोषांशृतं पीतं निर्ममत्वेन वासितं ।
 त्यक्तं तैर्मानसं दुःखं दुःखेनेनेष सौहृदं ॥ २४६ ॥

यैः सन्तोषामृतं पीतं तृष्णातृट्प्रणाशनं ।
 तैश्च निर्वाणसौख्यस्य कारणं समुपार्जितम् ॥ २४७ ॥
 सन्तोषं लोभनाशाय रतिं च सुखशान्तये ।
 ज्ञानं च तपसां वृद्धौ धारयन्ति दिग्म्बराः ॥ २४८ ॥
 ज्ञानदर्शनसम्पन्न आत्मा चैको ध्रुवो मम ।
 शेषा भावाश्च मे ब्रह्मा सर्वे संयोगलक्षणाः ॥ २४९ ॥
 संयोगमूलजीवेन प्राप्ता दुःखपरपरा ।
 तस्मात्संयोगसम्बन्धं त्रिविधेन परित्यजेत् ॥ २५० ॥
 ये हि जीवादयो भावाः सर्वज्ञैर्भाषिताः पुराः ।
 अन्यथा च क्रियास्तेषां चिंतितार्थनिरर्थकाः ॥ २५१ ॥
 यथा च कुरुते जन्तुर्ममत्वं विपरीतधीः ।
 तथा हि बन्धमायाति कर्मणस्तु समन्ततः ॥ २५२ ॥
 अज्ञानावृतचित्तानां रागद्वेषरतात्मनाम् ।
 आरंभेषु प्रवृत्तानां हितं तस्य न भीतवत् ॥ २५३ ॥
 परिग्रहपरिष्वङ्गाद्रागद्वेषश्च जायते ।
 रागद्वेषौ महाबन्धः कर्मणां भवकारणम् ॥ २५४ ॥
 सर्वसङ्गान् पश्यन् ? कृत्वा ध्यानाग्निनाहुतिं क्षिपेत् ।
 कर्माणि समिधश्चैव योगोऽयं सुमहाफलम् ॥ २५५ ॥
 राजस्यसहस्राणि अश्वमेधशतानि च ।
 अनन्तभागतुल्यानि न स्युस्तेन कदाचन ॥ २५६ ॥
 सा ब्रह्मा या शमे याति विनियोगपुराहिता ।
 शेषा च निर्दया ब्रह्मा कर्मोपार्जनकारिणी ॥ २५७ ॥

प्रज्ञाङ्गना सदा सेव्या पुरुषण सुखावहा ।
 ह्योपादयतत्वज्ञा या रता सर्वकर्मणि ॥ २५८ ॥
 दयाङ्गना सदा सेव्या सर्वकालफलप्रदा ।
 सेवितासौ करोत्याशु मानस करुणात्मनम् ॥ २५९ ॥
 मैत्र्यङ्गना सदोपास्या हृदयानन्दकारिणी ।
 या विषये कृतोपास्तिथिर्त्तं विद्वेषवर्जितं ॥ २६० ॥
 सवसत्वे दया मैत्री यं करोति सुमानसः ।
 अमत्यसावरीन् सर्वान् बाह्याभ्यन्तरसंस्थितान् ॥ २६१ ॥
 शम नयन्ति भूतानि ये शक्ता देशनाविधौ ।
 कालादिलब्धिपुक्तानि प्रत्यहं तस्य निर्भरा ॥ २६२ ॥
 शमो हि न भवेद्येषां ते नरा पञ्चसन्निभाः ।
 समृद्धा अपि तच्छास्त्रे कामार्यरति सङ्गिन ॥ २६३ ॥
 धिक्त्तं (श्रे) नरकतिर्यस्तु अमतोऽपि निरन्तरं ।
 यतोऽमौ विद्यते नैव समो दुरितवर्धनं ॥ २६४ ॥
 मनस्याल्हादिनी संख्या सर्वकालसुखप्रदा ।
 उपसेव्या त्वया भद्र ! क्षमा नाम कुलाङ्गना ॥ २६५ ॥
 क्षमया क्षीयते कर्म दुःखदं पूर्वमंधित ।
 धिक्त्तं च जायते शुद्धिं विद्वेषभयवर्जितम् ॥ २६६ ॥
 प्रज्ञा तया च मैत्री च समता करुणा क्षमा ।
 मम्यकत्वमहिता संख्या सिद्धिसौख्यसुखप्रदा ॥ २६७ ॥

१ क्षमा च २ करुणात्मना च; करुणात्मने च । ३ बुद्धयश्च । ४ सत्त्वगुणे
 च । ५ समता सुविद्यते च । ६ अस्मिन् श्लोकात्पूर्वमर्बकोऽयं च—गुणके ।

कर्मण्या ध्वंसने धिक्त्तं दारं मोहादिनाशने ।

द्वेष कदाप्ययमे च नायोम्यो सञ्जुमर्हति ॥ १ ॥

७ कर्म च । ८ प्रज्ञासुवा च ।

भयं याहि भवाङ्गीमात् प्रीतिं च जिनशासने ।
 शोकं पूर्वकृतात्पापाद्यदीच्छेद्वितमात्मनः ॥२६८॥
 कुसंसर्गः सदा त्याज्यो दोषाणां प्रविधायकः ।
 सगुणोऽपि जनस्तेन लघुतां याति तत्क्षणात् ॥२६९॥
 सत्सङ्गो हि बुधैः कार्यः सर्वकालसुखप्रदः ।
 तेनैव गुरुतां याति गुणहीनोऽपि मानवः ॥२७०॥
 साधूनां खलसंगेन चेष्टितं मलिनं भवेत् ।
 सैहिकैर्यसमाशक्त्या भाव्यं भावोरपि क्षयः ? ॥२७१॥
 रागादयो महादोषाः खलास्ते गदिता बुधैः ।
 तेषां समाश्रयस्ताज्यस्तत्वद्विद्धिः सदा नरैः ॥२७२॥
 गुणाः सुपूजिता लोके गुणाः कल्याणकारकाः ।
 गुणहीना हि लोकेऽस्मिन् महान्तोऽपि मलीमसा ॥२७३॥
 सद्गुणै गुरुतां याति कुलहीनोऽपि मानवः ।
 निर्गुणः सकुलाढ्योऽपि लघुतां याति तत्क्षणात् ॥२७४॥
 सद्वृत्तः पूज्यते देवैराखण्डलपुरःसरैः ।
 असद्वृत्तस्तु लोकेऽस्मिन्निन्द्यतेऽसौ सुरैरपि ॥२७५॥
 चारित्रं तु समादाय ये पुनर्भोगमागताः ।
 ते साम्राज्यं परित्यज्य दास्यभावं प्रपेदिरे ॥२७६॥
 शीलसंधारिणां पुसां मनुष्येषु सुरेषु च ।
 आत्मा गौरवमायाति परत्रेह च संततं ॥२७७॥
 आपदो हि महाघोराः सत्वसाधनसंगतैः ।
 निस्तीर्याग्रं महोत्साहैः शीलरक्षणतत्परैः ॥२७८॥

वरं तत्क्षणतो मृत्यु शीलसयमधारिणाम् ।
 न तु सच्छीलमंगेन साम्राज्यमपि जीवितम् ॥२७९॥
 घनहीनोऽपि शीलाढ्य पूज्यः सर्वत्र विष्टे ।
 शीलहीनो घनाढ्योऽपि न पूज्य स्वजनेष्वपि ॥२८०॥
 वरं शत्रुगृहे मिथा याचना शीलधारिणां ।
 न तु सच्छीलमंगेन साम्राज्यमपि जीवितम् ॥ २८१ ॥
 वरं मदैव दारिद्र्य शीलैश्वर्यसमन्वितम् ।
 न तु शीलविहीनानां विमवाश्रयवर्तिनः ॥२८२॥
 घनहीनोऽपि सद्ब्रह्मो याति निर्वाणनायतां ।
 चक्रवर्त्यप्यसद्ब्रह्मो याति तु स्वपरम्पराम् ॥२८३॥
 सुखरात्रिर्मवेधेपां येषां शीलं सुनिमलम् ।
 न सच्छीलविहीनानां दिवमोऽपि सुखावह ॥२८४॥
 देहं दहति कायामिस्तत्क्षणं समुदीरितम् ।
 वर्धमानं समामग्न्य चिरकालसमाश्रितम् ॥२८५॥
 क्रोधेन बधते क्रमं दारुणं भववर्धनम् ।
 शिष्टा च क्षीयते सद्यस्तपसा समुपाश्रितम् ॥२८६॥
 सुदुष्टमनसा पूव यत्कर्मसमुपाश्रितम् ।
 तस्मिन् फलप्रदयाम्ने कोऽप्येषां क्रोधमुद्बहेत् ॥२८७॥
 विद्यमानं गणं यद्दशेतमो जायते भूति ।
 क्रमणा याच्यमानं किं विमुक्तिने जायते ॥२८८॥
 म्वद्विनं च परिचयं मयत्न पापमाहरत् ।
 धर्मा न यत्कराम्यस्य न कृतघ्नो न विद्यते ॥२८९॥

शत्रुभावस्थितान् यस्तु करोति वशवर्तिनः ।
 प्रज्ञाप्रयोगसामर्थ्यात् स शूरः स च पंडितः ॥२९०॥
 विवादो हि मनुष्याणां धर्मकामार्थनाशकृत् ।
 वैरान् बन्धुर्जनो नित्यं वाहितुं कर्मणा जनाः ॥२९१॥
 धन्यास्ते मानवा नित्यं ये सदा क्षमया युताः ।
 वंचमाना स ? वै लुब्धा विवादं नैवकुर्वते ॥२९२॥
 वादेन बहवो नष्टा येऽपि द्रव्यमहोत्कटाः ।
 वरमर्थपरित्यागो न विवादः खलैः सह ॥२९३॥
 अहंकारो हि लोकानां विनाशाय न वृद्धये ।
 यथा विनाशकाले स्यात् प्रदीपस्य शिखोज्वला ॥२९४॥
 हीनयोनिषु बंभ्रम्य चिरकालमनेकधा ।
 उच्चगोत्रे सकृत्प्राप्ते कोऽन्यो मानं समुद्रहेत् ॥ २९५॥
 रागद्वेषौ महाशत्रू मोक्षमार्गमलिम्लुचौ ।
 ज्ञानध्यानतपोरत्नं हरतः सुचिरार्जितम् ॥ २९६ ॥
 चिरं गतस्य संसारे बहुयोनिसमाकुले ।
 प्राप्ता सुदुर्लभा बोधिः शासने जिनभाषिते ॥ २९७ ॥
 अधुना तां समासाद्य संसारच्छेदकारिणीम् ।
 प्रमादो नोचितः कर्तुं निमेषमपि धीमता ॥ २९८ ॥
 प्रमादं ये तु कुर्वन्ति मूढा विषयलालसाः ।
 नरकादिषु तिर्यक्षु ते भवन्ति चिर नराः ॥ २९९ ॥
 आत्मा यस्य वशे नास्ति कुतस्तस्य परे जनाः ।
 आत्माधीनस्य शान्तस्य त्रैलोक्यं वशवर्तिनः ॥ ३०० ॥

आत्माधीनं तु यत्सौख्यं तत्सौख्यं धर्णितं पुत्रैः ।
 पराधीनं तु यत्सौख्यं दुःखमेव न तत्सुख ॥ ३०१ ॥
 पराधीने सुखं कष्टं राज्ञामपि महौजसा ।
 तस्मान्नेवत् समालोच्य आत्मायत्तं सुखं कुरु ॥ ३०२ ॥
 आत्मायत्तं सुखं लोके परायत्तं न तत्सुखं ।
 ण्वत्तं सम्पत्तिज्ञानन्तो भृङ्गन्ते मानुषा कथम् ॥ ३०३ ॥
 नो संग्राह्यायते सौख्यं मोक्षसाधनमुत्तमम् ।
 संग्राह्यं जायते दुःखं सत्तारस्य निग्रन्धनम् ॥ ३०४ ॥
 पूर्वकर्मविपाकेन बाधायां यत्तं शोचनम् ।
 तदिदं तु नन्ददृष्टस्य अरुणोद्दिताडनम् ॥ ३०५ ॥
 अन्यो हि बाधते दुःखं मानसं न विषयमेव ।
 पवनैर्नीयते तूलं मेघोः शृङ्गं न वातुचित् ॥ ३०६ ॥
 परज्ञानफलं ह्यत्तं न विभूतिर्गरीपसी ।
 तथा हि बाधते कर्म सद्बुधेन विमुच्यते ॥ ३०७ ॥
 मद्येगं परमं कार्यं भुतस्य गदितं पुत्रैः ।
 तस्माद्ये धनमिच्छन्ति ते त्विच्छन्त्यमृताद्विषम् ॥ ३०८ ॥
 भुतं ह्यत्तं श्रमो येषां धनं परमदुर्लभम् ।
 तं नगं धनिनं प्रोक्त्वा श्रेया निर्धनिनः सदा ॥ ३०९ ॥
 को वा हृष्टिं ममायातो मोगैर्दुरितधन्वनैः ।
 दधो वा दधगजो वा चक्रांको वा नराधिपः ॥ ३१० ॥
 आत्मा वै सुमहत्तीर्थं यदात्मौ प्रश्रमं स्थितः ।
 यदात्मौ प्रश्रमो नास्ति ततस्तीर्थनिरर्थकम् ॥ ३११ ॥

शीलव्रतजले स्नातुं शुद्धिरस्य शरीरिणः ।
 न तु स्नातस्य तीर्थेषु सर्वेष्वपि महीतले ॥३१२॥
 रागादिवर्जितं स्नानं ये कुर्वन्ति दयापराः ।
 तेषां निर्मलता योगैर्न च स्नातस्य वारिणा ॥३१३॥
 आत्मानं स्नापयेन्नित्यं ज्ञाननीरेण चारुणा ।
 येन निर्मलतां याति जीवो जन्मान्तरेष्वपि ॥३१४॥
 सर्वाशुचिमये काये शुक्रशोणितसंभवे ।
 शुचित्वं येऽभिवाञ्छन्ति नष्टास्ते जडचेतसः ॥३१५॥
 औदारिकशरीरेऽस्मिन् सप्तधातुमयेऽशुचौ ।
 शुचित्वं येऽभिमन्यन्ते पशवस्तेन मानवः ॥३१६॥
 सत्येन शुद्ध्यते वाणी मनो ज्ञानेन शुद्ध्यति ।
 गुरुशुश्रूषया काय शुद्धिरेप सनातन ॥३१७॥
 स्वर्गमोक्षोचितं नृत्वं मूढैर्विषयलालसैः ।
 कृतं स्वल्पसुखस्यार्थं तिर्यङ्नरकभाजनम् ॥३१८॥
 सामग्रीं प्राप्य सम्पूर्णा यो विजेतुं निरुद्यमः ।
 विषयारिमहासैन्यं तस्य जन्मनिरर्थकम् ॥३१९॥
 निरवद्यं वदेद्वाक्यं मधुरं हितमर्थवत् ।
 प्राणिना चेतसोऽल्हादि मिथ्यावादवहिष्कृतम् ॥३२०॥
 प्रियवाक्यप्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः ।
 तस्मात्तदेव वक्तव्यं किं वाक्येऽपि दरिद्रता ॥३२१॥
 व्रतं शीलतपोदानं संयमोऽर्हत्पूजनम् ।
 दुःखविच्छिन्नये सर्वं प्रोक्तमेतन्न संशय ॥३२२॥

तणतुल्य परद्रव्यं परं च स्वक्षरीरवत् ।
 पररामा समा मातु पश्यन् याति परं पदम् ॥३२३॥
 सम्पत्त्वसमतायोगे नै संग्मो क्षमता तया ।
 कथायविपयासंगः कर्मणा निर्जरा परा ॥३२४॥
 अय तु कुलमद्रेण मवविच्छित्तिकारणम् ।
 दृग्धो षालस्वभावेन ग्रन्थ सारसमुच्चयः ॥३२५॥
 ये मत्तया भावयिष्यन्ति मवकारणनाशनम् ।
 तेऽधिरैषैव कालेन प्राश्वं ? प्राप्स्यति शाश्वतम् ॥३२६॥
 सारसमुच्चयमेतद्यं पठन्ति समाहिता ।
 ते स्वल्पेनैव कालेन पदं यास्यन्त्यनामय ॥३२७॥
 नम परमसद्गुणानविघ्ननाशनहेतवे ।
 महाकल्भायसम्पत्तिकारिणेऽरिष्टनेमये ॥३२८॥
 इति श्रीकुलमद्रधिरधितं *सारसमुच्चयकारिणं
 समाप्तम् ।

१ परं बंध क्षरीरवत् ॥ २ नसर्गं ॥ ३ समता ॥

गुणसंग्रहगत पाठ पुस्तकद्वयेऽपि नास्ति । इति सारसमुच्चयप्रस्तावना
 इति त-पुस्तक पाठ ।

सिरिसुहचंदाहरियविरहया

अंगपण्णत्ती ।

द्वादशाङ्गप्रज्ञप्तिः ।



सिद्धं बुद्धं णिच्चं णाणाभूसं णमीय सुहयंदं ।

वोच्छे पुव्वपमाणमेगारहअंगसंजुत्तं ॥ १ ॥

सिद्ध बुद्ध नित्य ज्ञानभूषण नत्वा शुभचन्द्रम् ।

वक्ष्ये पूर्वप्रमाणमेकादशाङ्गसंयुक्तम् ॥

तिविहं पयं जिणेहिमत्थपयं खलु पमाणपयमुत्तं ।

तदियं मज्झपयं हु तत्थत्थपयं परूवेमो ॥ २ ॥

त्रिविध पद जिनैरर्थपद खलु प्रमाणपदमुक्तम् ।

तृतीय मध्यमपद हि तत्रार्थपद प्ररूपयाम् ॥

जाणदि अत्थं सत्थं अक्खरबूहेण जेत्तियेणेव ।

अत्थपयं तं जाणह घटमाणय सिग्घमिच्चादि ॥ ३ ॥

जानाति अर्थं सार्थं अक्षरव्यूहेन यावतैव ।

अर्थपद तज्जानीहि घटमानय शीघ्रमित्यादि ॥

छंदपमाणप्रबद्धं पमाणपयमेत्थ सुणह जं तं खु ।

मज्झपयं जं आगमभणियं तं सुणह भवियजणा ॥ ४ ॥

छन्दःप्रमाणप्रबद्ध प्रमाणपदमत्र जानीहि यत्तत् खलु ।

मध्यमपद यदागमभणित तच्छृणुत भव्यजनाः ! ॥

सोलससयचोत्तीसा कोडी तियसीदिलक्खयं जत्थ ।

सत्तसहस्सद्वसयाऽडसीदऽपुणरुत्तपदवण्णा ॥ ५ ॥

षोडशशतचतुर्विंशत्यत्र त्र्यशीतिउच्चाणि यत्र ।

सप्तसहस्राणि अष्टशतान्यत्रशीतिपुनरुक्तपदवर्णा

१६३४, ८३, ७, ८, ८८ मध्यमपञ्चमन्या ।

सप्तसहस्रपयेहिं सघादसुद गिरुविय जाण ।

इगिदरगदीण रम्मं त संखेजेहिं पडिवत्ती ॥ ६ ॥

संख्यातसहस्रपदे संघातधृतं निरूपितं जानीहि ।

एकतरगतीनां रम्यं तत्संख्याति प्रतिपत्ति ॥

षडगइसरुवयवपठिससुदहिं अणियोगं ।

षोडसमगणमण्णामेवविसेसेहि संजुचं ॥ ७ ॥

चतुर्गतिस्वरूपरूपकप्रतिपत्तिसंख्यातैरनुयोगम् ।

चतुर्दशमार्गणासङ्गाभेदविशेषै संयुक्तं ॥

षडरत्नीअणियोगे पाहुठपाहुठसुद सया होदि ।

चउवीसे तम्हि हवे पाहुठय वस्युअहियारे ॥ ८ ॥

चतुराश्रनुयोगे प्राभतप्राभूतश्रुतं सदा भवति ।

चतुर्विंशतौ तस्मिन् मनेत् प्राभतं वस्तुत्रविकारे ॥

वीसं वीस पाहुठअहियारं एकवत्स्यु अहियारो ।

तहिं दम चोदम अट्टहारसय बार बारं च ॥ ९ ॥

विंशतौ विंशतौ प्राभताविकार एकवत्स्वविकार ।

तत्र तत्र चतुर्दश अष्ट अष्टदश द्वादश च ।

सोलं च वीस तीसं पण्णारमसं च चउसु दस वस्यु ।

एदहि वस्युएहिं चउदसपुम्वा इवति पुणो ॥ १ ॥

षोडश च विंशति त्रिंशत् पंचदश च चतुर्दश वस्तुनि ।

एते वस्तुभि चतुर्दशपूर्वाणि भवन्ति पुन ॥

पणणउदिसया वत्थू णवयसया तिसहस्सपाहुडया ।

चउदस पुव्वे सव्वे हवंति मिलिदा य ते तम्मिह ॥ ११ ॥

पचनवतिगतानि वस्तूनि नवकशतानि त्रिसहस्रप्राभृतानि ।

चतुर्दश पूर्वाणि सर्वाणि भवन्ति मिलितानि च तानि तत्र ॥

वत्थू १९५ वत्थू एकं प्रति पाहुड २० । पाहुडसख्या ३९००,
पाहुड एकं प्रति पाहुड, (पाहुड) २४ जात अनुयोगसख्या २२,
४६, ४०० अनुयोगे पाहुडसख्या ।

सयकोडी वारुत्तर तेसीदीलक्खमंगंथाणं ।

अट्ठावण्णसहस्सा पयाणि पंचेव जिणदिट्ठं ॥ १२ ॥

शतकोटि द्वादशोत्तरा त्र्यग्गीतिलक्षाण्यङ्गग्रंथाना ।

अष्टापचाशत्सहस्राणि पदानि पंचैव जिनदृष्टानि ॥

द्वादशाङ्गश्रुतपदाना सख्या ११२, ८३, ५८,००,५ ।

पण्णत्तरि वण्णाणं सयं सहस्साणि होदि अट्ठेव ।

इगिलक्खमट्ठकोडि पइण्णयाणं पमाणं हु ॥ १३ ॥

पंचसप्तति वर्णानां शत सहस्राणि भवति अष्टैव ।

एकलक्ष अष्टकोट्य प्रकीर्णकाना प्रमाण हि ॥

अङ्गवाह्यश्रुताक्षरसख्या ८, ०१, ०१, १७५ ।

पणदस सोलस पण पण णव णभ सग तिण्णिं चैव सँगं ।

सुण्णं चउचउसगल्लचउचउअट्ठेकसव्वसुदवण्णा ॥१४॥

पचदश षोडश पच पच नव नभ सप्त त्रीणि चैव सप्त ।

शून्य चतु चतु.सप्तषट्चतु चतुरष्टैकसर्वश्रुतवर्णाः ॥

१ तिणि पुस्तके पाठ । २ सग इति पाठ पुस्तके । ३ सुण पुस्तके पाठ ।

४ सव इति पाठ पुस्तके ।

सर्वघृताक्षराणि-

१८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ ।

आयार पदमंग तत्थहारससहस्सपयमेत ।

यत्यायरंति मञ्जा मोक्खुपहं तण त णाम ॥ १५ ॥

आचारं प्रथमांगं तत्राद्यदशसहस्रपदमात्रं ।

यत्राचरन्ति भव्या माञ्जपथं तन तन्नाम ।

कहं चरे कहं तिठे कहमासे कह सये ।

कहं मासे कह भुजे कहं पारवं ण संघइ ॥ १६ ॥

कथं चरेत् कथं तिष्ठत् कथमासीत् कथं शयीत् ।

कथं भाषेत कथं भुञ्जीत् कथं पापं न वप्स्यते ।

जद चरं जद तिठे जदमासे जदं सये ।

जद मासं जद भुजे एवं पारवं ण संघइ ॥ १७ ॥

यत् चरेत् यत् तिष्ठेत् यत् आसीत् यत् शयीत् ।

यत् भाषेत यत् भुञ्जीत् यत् पापं न वप्स्यते ॥

मह्व्वभाणि पंचेव समिदीओक्खरोहण ।

लोओ आवमयाल्लमवच्छंहुमूसया ॥ १८ ॥

महात्रनानि पंचैष समितपोऽश्वरोधनं ।

लाघ आवश्यकपदं अत्र अज्ञानमूशयनानि ॥

अदन्वणमेगमत्ती ठिठिमोयणमेव हि ।

यदीणं य समाचारं वित्थरव परूवए ॥ १९ ॥

अन्तमनैकभक्ते स्थितिभाजनमेव हि ।

यतीना यं समाचारं विस्तारेणैव प्ररूपयेत् ॥

आचाराङ्गस्य पदानि १८००० । आचाराङ्गस्य श्लोकसख्या, ९१९-
५९२३११८७००० । आचाराङ्गस्य अक्षरसख्या २९९२६९५४-
१९८४००० इति ।

आयाराग गद-इत्याचाराज गत ।

सूदयडं विदियंगं छत्तीससहस्सपयपमाणं खु ।
सूचयदि सुत्तत्थं संखेवा तस्स करणं तं ॥ २० ॥

मूत्रकृत् द्वितीयाङ्ग पट्टिङ्गत्सहस्रपदप्रमाण खलु ।

सूचयति सूत्रार्थं संक्षेपेण तस्य करणं तत् ॥

णाणविणयादि विग्घातीदाज्ञयणादिसव्वसक्किरिया ।

पण्णायणा (य) सुकथा कप्पं व्यवहारविसक्किरिया ॥ २१ ॥

ज्ञानविनयादिविश्वातीतस्वाध्यायादिसर्वसत्क्रिया ।

प्रज्ञापना च सुकथा कल्प्य व्यवहारवृत्पक्रिया ॥

छेदोवहावणं जइण समयं यं परूवदि ।

परस्स समयं जत्थ किरियाभेया अपोयसे ॥ २२ ॥

छेदोपस्थापनं यतीना समयं यत् प्ररूपयति ।

परस्य समयं यत्र क्रियाभेदान् अनेकशः ॥

पयपमाणं ३६००० । श्लोकप्रमाणं १८३९१८४६ ३७४०००

अक्षरप्रमाणं ५८८५३९०८३९६८००० ।

इदि सूक्ष्मं विदियगं गद-इति सूत्रकृत् द्वितीयाङ्ग गत ।

बादालसहस्सपदं ठाणंगं ठाणभेयसंजुत्तं ।

चिहंति ठाणभेया एयादी जत्थ जिणदिट्ठा ॥ २३ ॥

द्वाचत्वारिंशत्सहस्रपदं स्यानाङ्गं स्यान्भेदसंयुक्तं ।

तिप्रति स्यान्भेदा एकादया यत्र विनष्टा ॥

सगहणयेण जीवो एको षड्वहारदो दु संसारिओ मुक्तो ।

सो तिविहो पुणुप्पादच्चयधोव्वसजुत्तो ॥ २४ ॥

संगहनयेन जीव एको षड्वहारतस्तु संसारी मुक्त ।

स त्रिविध पुनरुत्पादम्ययधौम्यसंयुक्त ॥

चउगइसंकमणजुदो पच्चविहो पंचभावमेएण ।

पुव्वपरदनिखणुचरठ्ठाधोगमणदो छद्धा ॥ २५ ॥

चतुर्गतिसंक्रमणयुक्त पंचविध पंचभावभेदेन ।

पूर्वापरदक्षिणोत्तरोर्ध्वाधोगमनत पोढा ॥

सिय अत्थि णत्थि उहयं सिय वचच्चं च अत्थिवचच्चं ।

सिय वचच्चं णत्थि उमहो वचच्चमिदि सत्त ॥ २६ ॥

स्यादस्ति, नास्ति उभय, स्यादवक्तव्य, अस्त्यवक्तव्य, ।

स्यादवक्तव्यो नास्ति, उभयोऽवक्तव्य इति सत्त ॥

अट्ठविहकम्मजुत्तो अत्थि णवच्छ णवत्थगो जीवो ।

पुदधिजलनेउबाउपवेयधिगोयवित्तिचपगा ॥ २७ ॥

अष्टविधकर्मयुक्त अस्ति नवधा नवर्षका जीव ।

पृथ्वीजलनजोत्रायुप्रत्येकनिगोदद्वित्रिचतु पंचेन्द्रिया ॥

दहमया पुण जीवा एवमजीवं तु पुग्गलो एक्को ।

अणुसंघादो दुविहो एवं सव्वथ णायच्चं ॥ २८ ॥

दशभेदा पुन जीवा एको जीव तु पुत्रक एक ।

अणुस्कत्वता द्विविध एवं सर्वत्र ज्ञातव्य ॥

ठाणागस्स पयप्पमाण ४२००० । श्लोक २१४५७१५४१०३०००
अक्षरप्रमाण ६८६६२८९३१२९६००० ।

इदि ठाणाग तिदिय गद-इति स्थानाङ्ग तृतीय गतम् ।

समवायंगं अडकदिसहस्समिगिलक्खमाणुपयमेत्तं ।
संगहणयेण दव्वं खेत्तं कालं पडुच्च भवं ॥ २९ ॥

समवायाङ्ग अष्टकृतिसहस्र एकलक्षमानपदमात्र ।

सग्रहनयेन द्रव्य क्षेत्र काल प्रतीत्य भाव ॥

दीवादी अविंयंति अत्था णज्जंति सरित्थसामण्णा ।
दव्वा धम्माधम्माजीवपदेसा तिलोयसमा ॥ ३० ॥

द्वीपादयो अवेयन्ते अर्था ज्ञायन्ते सदृशसामान्येन ।

द्रव्येण वर्माधर्मजीवप्रदेशाः त्रिलोकसमाः ॥

सीमंतणरय माणुसखेत्तं उड्डुइंदयं च सिद्धिसिलं ।
सिद्धट्टाणं सरिसं खेत्तासयदो मुणेयव्वं ॥ ३१ ॥

सीमन्तनरक मानुषक्षेत्र ऋत्विन्द्रक च सिद्धिशिला ।

सिद्धस्थान सदृश क्षेत्राश्रयतो मतव्य ॥

ओहिट्टाणं जंबूदीवं सव्वत्थसिद्धि सम्माणं ।

णंदीसरवावीओ वाणिंदपुराणि सरिसाणि ॥ ३२ ॥

अवधिस्थान जम्बूद्वीप सर्वार्थसिद्धिः समान ।

नन्दीश्वरवाप्यः वीनेन्द्रपुराणि सदृशाणि ॥

समओ समएण समो आवल्लिएणं समा हु आवल्लिया ।

कालेण पढमपुढवीणारय भोमाण वी (वा) णाणं ॥ ३३ ॥

१ स्थानाङ्गस्य पदप्रमाण । २ द्रव्यापेक्षया इत्यर्थ । ३ एते पञ्च पञ्चत्वारिं-
शल्लक्षप्रमिता । ४ व्यन्तरेन्द्राणा पुराणि । ५ एतानि सर्वाणि स्थानानि एकल-
क्षयोजनप्रमितानि ।

समय समयेन सम आवृत्तिका समा हि आवृत्तिका ।
 कालेन प्रथमपृष्ठीनारकाणां भोमानां बानानां ॥
 सरिस बहृष्णकाळ सत्तमखिदिणारयाण उक्तसं ।
 मव्वहाणं अत्त मरिसं उस्मत्पिप्पीपमुहं ॥ ३४ ॥
 सदृशं अक्क्यायुः सत्तमखिदिनारकाणामुत्कृष्टं ।
 मर्वार्यस्यानां आयुः सदृशं उत्तर्पिणीप्रमुखं ॥
 भावे केवलघाणं क्वलदसणसमाणयं दिट्ठ ।
 एवं अत्य सरित्थं वेत्ति विणा सव्वअस्थानं ॥ ३५ ॥
 भावेन केवलघानं केवलदर्शनसमानं दिट्ठ ।
 एवं यत्र सदृशं जानन्ति विना सर्वार्यान् ॥
 समवायांगपटं १६४००० । श्लोक ८३७८५०७७९२६० ० ।
 अक्षर २६८११२२४९३६३२००० ।
 इति समवायांगं चत्तुर्थं पदं-इति समवायाङ्गं चतुर्थं पदं ।

दुगदुगअवृत्तियसुष्णं विवात्तपण्णात्तिअंगपरिमाथ ।
 पाप्माविसेसकहण्य वेत्ति विणा अत्य गणपण्णा ॥ ३६ ॥
 द्विकद्विकत्रिकान्त्यं विपाकप्रवृत्त्यङ्गपरिमाणं ।
 नानाविशफकयनं भवन्ति विना यत्र गणिप्रभान् ॥
 किं अत्यिणत्ति जीवो गिण्णोऽभिण्णोऽहवाह किं एगो ।
 पत्तव्वो किमवत्तव्वो हि किं मिण्णो ॥ ३७ ॥
 किमस्ति नास्ति जीवो नित्योऽनित्योऽप्यथापि किमेकं ।
 वत्तम्य किमवत्तम्या हि किं भिन्नं ॥
 गुणपञ्जयादभिण्णो सद्विमहस्ता गणिस्म पण्हेर्यं ।
 अत्यत्ति तं विवात्तपण्णात्तिमंगं सु ॥ ३८ ॥

गुणपर्यायाम्यामभिन्न. पष्ठिसहस्राणि गणिनः प्रश्ना. ।

यत्र सन्ति तद्विपाकप्रज्ञप्त्यग खलु ॥

विवायपण्णतिअगपट २२८० । श्लोक ११६४८१६९३७०२०-

०० । वर्ण ३७२७४१४१९८४६४००० ।

इदि विवागपण्णतिअग गद-इति विपाकप्रज्ञप्त्यङ्ग गत ।

णाणकहाछट्ठंगं पयाइं पंचेव जत्थत्थि ।

छप्पणं च सहस्सा णाहकहाकहणसंजुत्तं ॥ ३९ ॥

ज्ञातृकथापष्ठाङ्ग पदानि पचैव यत्र सन्ति ।

षट्पचाशच्च सहस्राणि नाथकथाकथनसयुक्त ॥

णाहो तिलोयसामी धम्मकहा तस्स तच्चसंकहणं ।

घाइकम्मगुयादो केवलणाणेण रम्मस्स ॥ ४० ॥

नाथ त्रिलोकस्वामी धर्मकथा तस्य तत्त्वसकथन ।

घातिकर्मक्षयात् केवलज्ञानेन रम्यस्य ॥

तित्थयरस्स तिसंज्जे णाहस्स सुमज्झिमाय रत्तीए ।

चारहसहासु मज्जे छग्घडियादिव्वज्जुणीकालो ॥ ४१ ॥

तीर्थकरस्य त्रिसध्याया नाथस्य सुमध्यमाया रात्रौ ।

द्वादशसभामु मध्ये पड्घटिका दिव्यध्वनिकाल ॥

होदि गणिचक्किमहवपण्हादो अण्णदावि दिव्वज्जुणि ।

सो दहलक्खणधम्मं कहेदि खलु भवियवरजीवे ॥ ४२ ॥

भवति गणिचक्रिमघवप्रश्नत अन्यदापि दिव्यध्वनि ।

स दशलक्षणधर्मं कथयति खलु भव्यवरजीवे ॥

णादारस्स य पण्हा गणहरदेवस्स णायमाणस्स ।

उत्तरवयणं तस्स वि जीवादी वत्थुकहणे सा ॥ ४३ ॥

ज्ञातुश्च प्रश्ना गणधरदेवस्य भिन्नासमानस्य ।

उत्तरवचनं तस्यापि जीवादिवस्तुकथनं सा ॥

अहवा षादारार्थं घम्माणुकहादिकहणमेवं सा ।

तित्यगणिवचकगरवरसवकार्णं च ग्राहकदा ॥ ४४ ॥

अथवा ज्ञातृणां धर्मानुकृत्यात्कथनमर्थं सा ।

तीर्थगणिवचक्रिनरवरशुक्रादीनां च नायकया ॥

ज्ञातृधर्मकथांगस्य पदानि ५५६००० । श्लोक २८४०५१८४९५-

५४००० । वर्ण ९८९६५९१८५७२८००० ।

इति भाषाधम्मच्छाषाम् छन्दमर्षं-इति ज्ञातृधर्मकथानाम् अष्टमः पद्यः ।

मत्तरिसहस्म लफ्खा एयारह जतपुवासमभ्ययये ।

उत्तं पयप्पमार्णं जिषेण तं णमह मवियज्जणा ॥४५॥

समतिसहस्रं लक्षाणि एकादश यत्रोपासकप्रथयेने ।

उक्तं पत्रप्रमाणं जिननं तं ममत भव्यज्जना ॥

दमणवयमामाहयपोमहसच्चित्तरायमधे य ।

धंमारंभपरिग्गहअणुमणमुद्धिह देमविरडेडे ॥४६॥

दशनव्रतसामायिकप्रोपत्रसच्चित्तरात्रिमत्तत्रश्च ।

प्रश्नप्रभपरिग्रहानुमनोदिष्टा देशविरता एते ॥

जन्धे याग्दमदा दाण पूयं च संहसेषं च ।

वयगुणमील किरिया तामिं मंसा वि पुचंति ॥४७॥

यत्रेकात्ताथदा ताने पूजा च संघनेवा च ।

व्रतगुणगीतानि क्रिया तयां मंत्रा अपि उच्यन्ते ॥

उपासका ययनस्य पदानि ११७ ०० । श्लोक ५०७७३५००-

७१ । अक्षर १ २७१२०२२८९६०००० ।

न इषामय इत्यर्थं अलमं अर्तं गतं इत्युपासकाप्यवर्तं अष्टमः पद्यः ।

अंतयडं वरमंगं पयाणि तेवीसलक्ख सुमहस्सा ।
अट्टावीसं जत्थ हि वण्णिज्जइ अंतकयणाहो ॥४८॥

अन्तकृद्धरमङ्ग पदानि त्रयोर्विंशतिलक्षाणि सहस्राणि ।
अष्टाविंशति यत्र हि वर्ण्यते अन्तकृन्नाथः ॥

पडितित्थं वरमुणिणो दह दह सहिळ्ण तिच्चमुवसगं ।
इंदाटिरइयपूयं लद्धा मुंचंति संसारं ॥४९॥

प्रतितीर्थं वरमुनयो दश दश सोढ्वा तीव्रमुपसर्गं ।
इन्द्रादिरचितपूजा लब्ध्वा मुञ्चन्ति संसार ॥

माहस्पं वरचरणं तेसिं वण्णिज्जए सया रम्मं ।
जह वड्डुमाणतित्थे दहावि अंतयडकेवल्लिओ ॥५०॥

माहात्म्यं वरचरणं तेषां वर्ण्यते सदा रम्यं ।
यथा वर्धमानतीर्थे दशापि अन्तकृत्केवलिनः ॥

मायंगं रामपुत्तो सोमिल जमलीकणाम किक्कंवी ।
सुदंसणो वलीको य गमी अलंबद्ध पुत्तलया ॥५१॥

मतगो रामपुत्रं सोमिलं यमलीकनाम किष्कविलं ।
सुदर्शनं वलिकश्च नमि पालवष्टं पुत्रा ॥

अन्तकृद्दशाङ्गस्य पदानि २३२८००० । श्लोकाः ११८९३३९३-
९८८५२००० । अक्षराणि ३८०५८८६०७६३२३४००० ।

इदि अतयडं दसागमद्वयं गद-इत्यन्तकृद्दशाङ्गमष्टमं गतम् ।

तिणहंचउचउदुगणवपयाणि चाणुत्तरोववाददसे ।
विजयादिसु पंचसु य उववायिका विमाणेसु ॥५२॥
त्रिनभश्चतुश्चतुर्द्विकनवपदानि चानुत्तरोपपाददशके ।
विजयादिषु पंचसु च औपपादिका विमानेषु ॥

पठितित्यं सद्भिः सद्भिः ह्यु दास्वसर्गोपलभ्यमाहृष्या ।
दह दह मुनिषो विहिता पाणे मोक्षुण ज्ञानमया ॥५३॥

प्रतितीर्थं सोदुषा हि दास्योपसर्गं उपलभ्यमाहात्म्या ।

दश दश मुनयो विधिना प्राणान् मुक्त्वा ध्यानमया ॥

विजयादिसु उक्त्वणा वणिजंते सुहावसुहृद्बहुला ।
ते जमह वीरतित्ये उजुदासो सालिमदस्त्रो ॥५४॥

विजयादिपुपपना वर्ष्मन्ते स्वभावसुसम्बुला ।

तान् नमत वीरतीर्थे शत्रुदास शालिमद्रस्त्र्य ॥

सुप्तस्त्रो अमयो वि य घण्टो वरवारिसेणपदजया ।
अदो विलासपुत्रो कचइयो जह तह अण्णे ॥५५॥

मुनश्चोऽमयोऽपि य घन्य वरवारिसेणनन्दनौ ।

नन् विलासपुत्र कर्तिकेयो यथा तथा अन्येषु ॥

अनुत्तरोपपत्ताङ्गस्य पदानि ९२४४००० । लोका ४७२२६१

७४२१४६ ०० । अक्षराणि १५११२३७५८१७६६७००० ।

इति अष्टमोऽध्यायः । नवमं अंशं गर्द—स्वतन्त्रोपपत्तारं नवमं अष्टं पठ ।

पण्हाणं वायरणं अंग पयापि तियमुष्णसोलसियं ।
तणवन्लिलस्त्रसंस्वा जय जिना वेति मुणह जणा ॥५६॥

प्रदानानां व्याकरणमङ्गं पदानि त्रिसृम्यवोऽष्टा ।

त्रिनवतिःशसंख्या यत्र जिना भुवन्ति शृणुत जनाः ! ॥

पण्हास्म द्दवयणणहपमुद्धिमणुर्ययमरुवस्म ।
घादुणरमूलजस्म वि अत्था तियकालगोचरयो ॥ ५७ ॥

प्रान्तस्य तत्रचचननप्रमुद्धिमन म्थम्यतपस्य ।

गानुत्तमूलं काम्पपि म शिखिकात्मात्तर ॥

१ यथा यथाज्ञानात् एत तत्राम्येषु तीर्थेषु अन्ये वृष्ट ।

धणधणजयपराजयलाहालाहादिसुहदुहं णेयं ।

जीवियमरणत्थो वि य जत्थ कहिज्जइ सहावेण ॥ ५८ ॥

धन्यधान्यजयपराजयलाभालाभादिमुखदुःख ।

जीवितमरणार्थोऽपि च यत्र कथ्यते स्वभावेन ॥

आक्खेवणी कहाए कहिज्जइ पण्हदो सुभव्वस्स ।

परमदसंकारहिदं तित्थयरपुराणवत्तंतं ॥ ५९ ॥

अवक्षेपणी कथा कथ्यते प्रश्नत सुभव्यस्य ।

परमतगकारहित तीर्थकरपुराणवृत्तान्त ॥

पढमाणुयोगकरणाणुयोगवरचरणदव्वअणुयोगं ।

संठाणं लोयस्स य यदिसावयधम्मवित्थारं ॥ ६० ॥

प्रथमानुयोगकरणानुयोगवरचरणद्रव्यानुयोगानि ।

सस्थान लोकस्य च यतिश्रावकधर्मविस्तार ॥

पंचत्थिकायकहणं वक्खाणिज्जइ सहावदो जत्थ ।

विक्खेवणी वि य कहा कहिज्जइ जत्थ भव्वाणं ॥ ६१ ॥

पंचास्तिकायकथन व्याख्यायते स्वभावतो यत्र ।

विक्षेपणी अपि च कथा कथ्यते यत्र भव्याना ॥

पच्चक्खं च परोक्खं माणं दुविहं णया परे दुविहा ।

परसमयवादक्खेवो करिज्जई वित्थरा जत्थ ॥ ६२ ॥

प्रत्यक्ष च परोक्ष मान द्विविध नया परे द्विविधा ।

परसमयवादक्षेप क्रियते विस्तारेण यत्र ॥

दंसणणाणचरित्तं धम्मो तित्थयरदेवदेवस्स ।

तम्हा पभावतेओवीरियवम(र)णाणसुहआदि ॥ ६३ ॥

दर्शनज्ञानचरित्राणि वर्मः तीर्थकरदेवदेवस्य ।

तस्मात् प्रभावतेजोवीर्यवरज्ञानसुखादय ॥

संवेजणीकहाए मणिज्जइ सवलमव्ववोइत्थं ।

णिव्वेजणीकहाए मणिज्जइ परम वेरगं ॥ ६४ ॥

संवेजनीकथया भण्यते सकलभयवोचनार्थे ।

निर्वेजनीकथया भण्यते परमवैराम्ये ॥

संसारदेहभोगा रागो जीवस्स आयदे तम्हा ।

अमुहाण कम्मार्णं वधो ततो ह्वे दुबखं ॥६५॥

संसारदेहभोगा रागो जीवस्य जायते तस्मात् ।

अशुभानां कर्मणां बन्ध ततो भवेदु खं ॥

अमुहकुलं उप्यधी विस्वदालिदरोपभाहुलं ।

अवमार्यं षरलोए परकम्मकरो महापावो ॥६६॥

अशुभकुले उत्पत्तिं विस्वदालिदरोगमाहुल्यं ।

अपमानं नरलोके परकर्मकरो महापाप ॥

एवविहं क्हाणं वायरणं वेव्व पण्हवायरणे ।

ठहमे अंग पिण्ह करिज्जमाणं सया सुणह ॥६७॥

एवंविधं कथानां व्याकरणं वेदं प्रश्नव्याकरणं ।

एतन्मया नित्यं क्रियमाणं सदा शृणुत ॥

प्रश्नव्याकरणाङ्गस्य पद्यानि ०३१६००० । श्लोक ४७५९४०

११३३८ । अशुभगणि १५२३००८३६२८४६०८००० ।

इति पञ्चवाक्येण दशमो भागो गद्य इति प्रश्नव्याकरणं दशमं अर्थं गतम् ।

मुलसील्लिकरु काडी पयापि णिणं विवागमुत्ते य ।

कम्मार्णं अणमणी मुहामुहाणं हु मग्गिमया ॥६८॥

अशुभं च । अणं च । अणं च । पद्यानि नित्यं विपाकस्तुत्रे च ।

इत्येवम् ॥ अशुभानुभाना हि मध्यमस्तु ॥

तिव्वमंदाणुभावा दव्वे खेत्तेसु काल भावे य ।

उदयो विवायरूवो भणिज्जइ जत्थ वित्थारा ॥६९॥

तीत्रमन्दानुभावा द्रव्ये क्षेत्रे काले भावे च ।

उदयो विपाकरूपो भण्यते यत्र विस्तारेण ॥

विपाकसूत्रागस्य पदानि १८४००००० । श्लोका ९४००२७
७०३५६००००० । वर्णा ३००८०८८६५१३९२००००० ।

इदि विवागसुत्तग एकादस गद-इति विपाकसूत्राग एकादशं गत ।

एयारंगपयाणि य कोडीचउपंचदहसुलक्खाइं ।

वि सहस्सादो वोच्छे पुव्वपमाणं समासेण ॥ ७० ॥

एकादशाङ्गपदानि च कोटिचतुष्कपचदशलक्षाणि ।

अपि सहस्त्रे द्वे वक्ष्ये पूर्वप्रमाण समासेण ॥

एकादशानामङ्गना पदानि ४१५०२००० । श्लोका. २१२०२७-
३३५६१४९३००० । अक्षराणि ६७८४८७४७३९६७७७६०००

इदि एकादसागानि गदानि-इत्येकादशाङ्गानि गतानि ।

दिट्ठिप्पवादमंगं परियम्मं सुत्त पुव्वगं चैव ।

पढमाणुओग चूलिय पंचपयारं णमंसामि ॥ ७१ ॥

दृष्टिप्रवादमङ्ग परिकर्म सूत्र पूर्वाङ्ग चैव ।

प्रथमानुयोग चूलिका पचप्रकार नमामि ॥

तत्थ पयाणि पंच य णभ णभ छ पंच अट्ट छड सुण्णं ।

अंक क्रमेण य णेयाणि जिणागमे णिच्चं ॥ ७२ ॥

तत्र पदानि पच नभो नभ षट् पच अष्ट षट् अष्ट शून्य ।

अक क्रमेण च ज्ञेयानि जिनागमे नित्य ॥

दृष्टिवादाङ्गपदसंख्या १०८६८५६००५। श्लोका ५५५२५८-
०१८७३९४२७१०७। वर्णसंख्या १७७६८२५६५९९६६१६
६७४४०।

दिद्वीणं विष्णि सया तेसद्वीणं वि मिच्छवापायं ।
अत्य गिराकरणं खलु तण्णाम दिद्विषादंग ॥ ७३ ॥

दृष्टीनां त्रिशतानि त्रियष्टे मियावादानां ।

यत्र निराकरणं खलु तन्नाम दृष्टिवादाङ्गम् ॥

तं जहा-सयया-

किरियावायविद्वीणं कौक्कल-कंठेविदि-कोसिय-हरिमंसु-मं-
घाविय-रोमस-मुंड-मस्सलायणादीणं मसीविसर्दं (१८०)

क्रियावादिनां कौक्कल-कंठेविदि-कौशिक-हरिस्मसु-मांघपिक-ते-
मश-मुंड-आश्वलायनादीनां अशीतिशतं (१८०) ।

अकिरियावायविद्वीणं मरीचि-कपिल-उल्लूक-गार्ग-व्याघ्रमूति-वा-
वतुलि-माठर-मांगलायणादीणं चतुरशीति (८४)

अक्रियावायदृष्टीनां मरीचि-कपिल-उल्लूक-गार्ग-व्याघ्रमूति-वा-
वलि-माठर-मांगलायनादीनां चतुरशीति (८४) ।

मञ्जानविद्वीणं सायल-वहल-कुडुमि-सायमुगि-नारायण-क-
ठ-मज्जदिण-भाय-पप्पलायन-वायरायण-सिद्धिक-देतिकायण-
यसु-अमणिपमुहाणं मगमटी (९७) ।

मञ्जानादीनां सायल-वहल-कुडुमि-सायमुगि-नारायण-क-
ठ-मायान-भाय-पप्पलायन-वायरायण-सिद्धिक-देतिकायण-यसु-
अमणिपमुहाणं मगमटी ६७ ।

यणइयविद्वीणं यमिहु पागमर-जउफण-यम्मीक-रोमइस्मणि-
मघल्ल याम-पलापुल-उयमणय-इइल्ल-मयच्छिउपमुहाणं ३
नीमा (३)

वैनयिकदृष्टीना वशिष्ठ-पाराशर-जतुकर्ण-बाल्मीकि-रोमहर्षणि-
तत्यदत्त-व्यास-एलापुत्र-औपमन्यव-ऐन्द्रदत्त-आगस्त्यादीना द्वात्रिं-
शत् (३२) ।

इदि मिलिदूण तिसट्टिउत्तरतिसदीकुवायनिरायरण प्ररूवय ।

इति मिलित्वा त्रिषष्ट्युत्तरत्रिशतकुवादनिराकरण प्ररूपित ।

इदि वारहअंगाणं समरणमिह भावदो मया णिच्चं ।

सुभचंदेण हु रइयं जो भावइ सो सुहं पावइ ॥७४॥

इति द्वादशाङ्गाना स्मरणमिह भावतो मया नित्यं ।

शुभचन्द्रेण हि रचित यो भावयति स सुख प्राप्नोति ॥

एयारसुदसमुद्रे जो दिव्वदि दिव्वभावेण ।

सो संसारदवाणलज्जालालीणो ण संपज्जइ ॥७५॥

एकादशश्रुतसमुद्रे यो दीव्यति दिव्यभावेन ।

स संसारदावानलज्वालालीनो न सम्पद्यते ॥

दंसणणाणचरित्तं तवे य पावंति सासणे भणियं ।

जो भाविऊण मोक्खं तं जाणह सुदह माहप्पं ॥७६॥

दर्शनज्ञानचारित्रण तपसा च प्राप्नुवन्ति शासने भणित ।

यो भावयित्वा मोक्ष तज्जानीहि श्रुतस्य माहात्म्य ॥

एयारसंगपयकयपरूवणं मए प्रमाददोसेण ।

भणियं किं पि विरुद्धं सोहंतु सुयोगिणो णिच्चं ॥७७॥

एकादशाङ्गपदकृतप्ररूपण मया प्रमाददोषेण ।

भणित किमपि विरुद्ध शोधयन्तु सुयोगिनो नित्यं ॥

इदि सिद्धतसमुच्चये वारहअगसमरणावराभिहाणे अगपण्णत्तीए

अगणिरूवणाणाम पढमो अहियारो सम्मत्तो ॥ १ ॥

चतुर्दशपूर्वाङ्गप्रज्ञप्ति ।

परियम्मं पंचविह परिये कम्माणि गणिदमुत्ताणि ।
 जत्य तदो सं मणिय सुणह पयारे हु तस्सावि ॥ १ ॥

परिकर्म पंचविधं परित कर्माणि गणितसूत्राणि ।

यत्र ततस्तद्गणितं शृणुत प्रकरान् हि तस्यापि ॥

चंद्रम्यायु विमाषे परिया रिद्धी च अयण गमण च ।
 मयलद्वपायगहणं षण्णेदि वि चंद्रपण्णत्ती ॥ २ ॥

चन्द्रम्यायु विमानानि परिपारमृद्धिं च क्षयनं गमनं च ।

मयलाद्वपायप्रहणं षणयस्यपि चन्द्रप्रज्ञप्ति ॥

इत्तीमलपस्वर्पमहम्मपयवाण चद्रपण्णत्ती ।

इत्तिमलपस्वर्पमहम्मपयवाणो चन्द्रप्रज्ञप्ति ।

य ३ । श्लोका १८४१७३००६०९०७५०० ।

यग १०३ ६४ ३६२२४ ००० ।

गहम्मरजिय पणत्तरया पयाणि पण्णमितियारम्म ॥ ३ ॥

गहम्मरजिय पणत्तरया पयाणि पण्णमितियारम्म ॥

मृग्गतायु विमाष्य परिया रिद्धी य अयणपरिमाणं ।

नगातनमगहणं षण्णत्ति वि मृग्गणत्ती ॥ ४ ॥

नगातनमगहणं षण्णत्ति वि मृग्गणत्ती ।

मृग्गणत्ति ॥

२ १०७४०६४६१६१०० ।

जंबूदीवे मेरू एक्को कुलसेलछक वणसंडा ।

छव्वीसं वीसं च दहा वि य वीसं वक्खारणग वस्सा ? ॥५॥

जम्बूद्वीपे मेरुके कुलगैलपट्टक वनखडा ।

पड्विंशतिः विंशतिश्च द्रहा अपि च विंशतिः वक्षारनगा वर्षा ॥

चोत्तीसं भोगधरा छकं वेंतरसुराणमावासा ।

जंबूसालमलिरुक्खा विदेउ चारि णाहिगिरी ॥ ६ ॥

चतुस्त्रिंशत् भोगधराः पट्टक वेंतरसुराणमावासाः ।

जंबूशालमलिवृक्षा विदेहा चत्वारो नाभिगिरयः ॥

सुण्णवसुण्णदुगणवसत्तरअंककमेण णईसंखा । १७९२०९० ।

वण्णेदि जंबूदीवापण्णत्ती पयाणि जत्थत्थि ॥ ७ ॥

शून्यनवशून्यद्विकनवसप्तदशाङ्कक्रमेण नदीसख्या ।

वर्ष्यन्ते जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तौ पदानि यत्र सन्ति ॥

तियसुणपणवगतियलक्खा, दीवजलहिपण्णत्ती ।

अढाइ (जा) उधारसायरमिद दीवजलहिस्स ॥८॥

त्रिकशून्यपचवर्गात्रिकलक्षाणि, द्वीपजलधिप्रज्ञप्तौ ।

सार्धद्वयोद्धारसागरमित द्विपजलधीना ॥

पदानि ३२५००० । श्लोक १६६०३७५०१९-८७५०० ।

वर्ण ५३१३२०००६३६००००० ।

वित्थारं सट्ठाणं तत्थठियजोइसाण ठाणाणं ।

ओमाणं . तत्थाऽकिट्टिमजिणाणं च ॥९॥

विस्तार संस्थान तत्रस्थितज्योतिषा स्थानाना ।

ओमाना तत्राकृत्रिमजिनाना च ॥

प्रासादवासतोरणमंडवमुहमंडवादिमालाणं ।

दिवसायरपरियम्मे करेदि वित्यार वष्णयं ॥१०॥

प्रासादम्यासतोरणमंडपमुखमंडवादिमालानां ।

द्वीपसागरपरिकर्मणि क्रियते विस्तारेण वर्णनं ॥

बावष्णं छत्तीसं लक्षसहस्रं पयस्त परिमाणं । ५२३६००० ।

द्विपंचाशत् पट्टिच्छलस्तहस्रं पदानां परिमाणं ।

बख्खापण्णाचीए तियसुण्णछत्तिउडका ॥११॥ ८७३६००० ।

म्याख्याप्रहृतौ त्रिकरान्यपट्टिकचतुरथ्याङ्का ॥

जोऽरुविरुधिजीवाजीवार्णं च दम्भनिवहार्णं ।

मव्वामव्वार्णं पि य मेयं परिमाणं लक्ष्णयं ॥१२॥

या मव्वपिरुधिजीवाजीवानां च दम्भनिवहानां ।

मव्वामव्वानामपि च भदं परिमाणं लक्षणं ॥

सिद्धार्णं खलु अयंतरपरंपरासिद्धिठाणपचार्यं ।

अण्णमिं वच्छुण्णं वित्यारं करेदि पण्णाची ॥१३॥

सिद्धानां खलु अनन्तरपरंपरासिद्धिस्थानप्राप्तानां ।

अन्येषां विस्तीर्णं विस्तारं करोति प्रहसि ॥

पणपण्णत्तिपयाणि य णहाणि तिय पंचसुण्णइगिउड-

इगिकोडिउडाणि पुणो एव परियम्म सम्मत्तं ॥१४॥

पंचप्रभमिपत्तानि च नभामि त्रीणि पंचरान्यैकाटिक-

काण्डियुतानि पुनरेवं परिकर्म समाप्तं ॥

पया १/१० ० ।

अहर्सीर्वालमव्वपयं सुच सूचेदि मिच्छदिठीणं ।

याए इदि खलु जीवो अयंचओ वंचओ वाधि ॥ १५ ॥

अष्टाशीतिलक्षपद सूत्र सूचयति मिथ्यादृष्टीना ।

वादे इति खलु जीवोऽबन्धको बन्धको वापि ॥

पयाणि ८८००००० ।

णिकृत्ता णिग्गुणओ अभोजओ सप्पयासओ णिच्चो ।

परप्पयासकरणो जीवो अत्थेव वा णत्थि ॥ १६ ॥

निष्कर्ता निर्गुणोऽभोजक स्वप्रकाशको नित्यः ।

परप्रकाशकरणो जीवोऽस्त्येव वा नास्ति ।

एवं किरियाणाणादिविणयकुदिद्विवायाणं ।

वित्थारं जं वोच्छदि तस्स पयारं णिसामेह ॥ १७ ॥

एव क्रियाज्ञानादिविनयकुदृष्टिवादाना ।

विस्तार यद्ब्रुवति तस्य प्रकार निशाम्यत ॥

अत्थि सदो परदो वि य णिच्चाणिच्चत्तणेण णवअट्ठा ।

कालीसरप्पणियदि सहावदो होंति तव्वमेया ॥ १८ ॥

अस्ति स्वत. परतोऽपि च नित्यानित्यत्वेन नवार्थाः ।

कालेश्वरात्मनियतिस्वभावत भवन्ति तद्भेदाः ॥

सव्वं कालो जणयदि भूदं सव्वं विणासदे कालो ।

जागत्ति हि सुत्तेसु वि ण सक्कदे वंचिदुं कालो ॥ १९ ॥

सर्वं कालो जनयति भूत सर्वं विनाशयति कालः ।

जागर्ति हि सुत्तेष्वपि न शक्यते वचितु कालः ॥

इदि कालवादो-इति कालवाद ।

जीवो अण्णाणी खलु असमत्थो तस्स जं सुहं दुक्खं ।

सैगं णिरयं गमणं सव्वं ईसरकयं होदि ॥ २० ॥

‘णाय गमण सव्व ईसरकय होदि’ पाठ पस्तके । आगमनकारेण एवैवर्णित ।

जीवोऽहानी म्लच्छ असमर्थस्तस्य यस्मुखं दुःखं ।
स्वर्गे नरके गमनं सर्वं ईश्वरवृत्तं भवति ॥

ईश्वरवादो—ईश्वरवादः ।

देवो पुरिसो एको सम्बन्धाधी परो महत्त्वा य ।
सर्व्वगविगूढो वि य सचेयणो विगुणोऽकृत्ता ॥ २१ ॥

देवः पुरीष एक सर्व्वन्यापी परो महत्त्वा च ।
सर्व्वगविगूढोऽपि च सचेतनो निर्गुणोऽकृता ॥

अप्यवादो—अप्यवादः ।

जेष अदा जं तु अहा नियमेण य जस्स होइ तंतु तदा ।
तस्स तहा तेष् हवे इदि वादो नियमिवादो दु ॥२२॥

येन यदा यत्तु यथा नियमेन च यस्य भवति तत्तु तदा ।
तस्य तथा तेन भवेत्ति ति बाणो नियमिवादस्तु ॥

नियमिवादो—नियमिवादः ।

मख्व सहावदो खलु तिवल्लत्त कंठ्याण को करई ।
विविहत्तं भरमियपमुविहंगमाणं सहावो य ॥२३॥

सर्व्वं स्वभावतः खलु नीक्षणत्वं कंठ्याणां क क्त्वाति ।
विविधत्वं नरमृगपद्मविहंगानां स्वभावश्च ॥

सहाववादो—स्वभाववादः ।

एवं अद्गुणवपणयार्थं रयण काळणं असीदिसदकिरियावादाय
मंगा । तं जहा । काळाया जीवो सवो अत्थि १ काळावो जीवो परवो
अत्थि २ काळावो जीवो पिच्चा अत्थि ३ काळावो जीवो अत्थि
अत्थि ४ इदि अजीवादिस्तु महत्सु मंगा प्पादेय्या मासिकृण मंगा
असीदिसर् १८ इवति ।

एव चतुर्नवपचाना रचना कृत्वा अशीतिगतक्रियावादाना भगा ।
तद्यथा—कालतो जीव स्वतोऽस्ति १ कालतो जीव परतोऽस्ति २ कालतो
जीवो नित्योऽस्ति ३ कालतो जीवोऽनित्योऽस्ति ४ इति अजीवादिषु
अष्टसु भगा ज्ञातव्या आश्रित्य भगा अशीतिगतं १८० भवन्ति ।

१

काल	ईश्वर	आत्मा	नियति	स्वभाव				
जीव	अजीव	पुण्य	पाप	आत्मव	सवर	निर्जरा	धन्व	मोक्ष
स्वत	परत	नित्य	अनित्य					
अस्ति								

अह अक्रियवाद्दणो वियप्पा—अथ अक्रियावादिना विकल्पा.—

सत्तपयत्था वि सदो परदो णत्थित्ति पंत्तिचदुजादा ।

कालादिया वि भंगा सत्तरि अक्कियवाद्दणं ॥ २४ ॥

सत्तपदार्था अपि स्वत परतो नास्तीति पक्किचतुष्कजाता ।

कालादिका अपि भगा सत्तति अक्रियावादिना ॥

णियडीदो कालादो सत्तपदत्थाण पंत्तितियजादा ।

चउदसभंगा होंति हु एवं चुलसीदि विण्णेया ॥२५॥

१ कालभेद ३६ ईश्वरभेद ३६ आत्मभेद ३६ नियतिभेद ३६ स्वभाभेद ३६
एव १८० ।

नियतितः काळत सप्तपदार्थानां पैकिप्रियाताः ।

चतुर्दशभंगा भवन्ति हि एवं चतुरशीतिभिन्नेषा ॥

काळादो जीवो स्वतो प्पत्थि १ काळतो जीवो परतो प्पत्थि २ एवं सप्ततिः भंगा । पियडीवो जीवो पत्थि १ काळादो जीवो वत्थि २ एवं बोहसभंगा सभ्वं मिळिवा खुलीसीदी ८४ ।

काळतो जीव स्वतो नास्ति १ काळतो जीव परतो नास्ति २ एवं सप्तति भंगा । नियतितो जीवो नास्ति १ काळतो जीवो नास्ति २ एवं चतुर्दशभंगा । सर्वे मिळिवा चतुरशीति ८४ ।

काळ	ईश्वर	व्यक्ता	निवृत्ति	स्वभाव		
जीव	अजीव	व्यक्त्व	संवर	निर्वर	१	मोड
स्वतः	परतः					
नास्ति						

नियति	काल					
जीव	अजीव	भाष्य	वच्य	संवर	निर्वर	मोड
नास्ति						

को नाणइ णव अत्थे सत्तमसत्तुभयमवच्चमेव इदि ।
अवयणजुद सत्तत्तयं इदि भगा होंति तेसंठी ॥२६॥

को जानाति नवार्थान् सत्वमसत्वमुभयमवक्तव्यमेवेति ।
अवचनयुत सप्ततय इति भगा भवति त्रिषष्टि ॥

अस्ति	नास्ति	उभय	अवक्तव्य	अ० अ०	ना० अ०	अ० ना० अ०
जीव	अजीव	पुण्य	पाप	आस्रव	बन्ध	सवर नि० मोक्ष

अण्णाणवाइभेया जीवादण्णाणभावसजुत्ता ।
तेसंठी जिणभणिया मिच्छाभावेण सतत्ता ॥२७॥

‘ अज्ञानवादिभेदा जीवादज्ञानभावसयुक्ता ’ १ ।

त्रिषष्टि. जिनभणिता मिध्यात्वभावेन सतत्ता ॥

मणवयणदेहदाणगविणओ णिवदेवणाणिजदिउट्ठे ।
वाले मादरपियरे कायव्वो चेदि अट्ट चदु ॥२८॥

मनोवचनदेहदानगविनयो नृपदेवज्ञानियतिवृद्धेषु ।

वाले मातापित्रोः कर्तव्यश्चेति अष्ट चतु ॥

एवं विणयवादो बत्तीसा ३२-एव वैनयिकवाद द्वात्रिंशत् ३२ ।

एव सच्छंददिट्ठीणं वादाउलकारण ? ।

तिसट्ठितिसया णेया सव्वससारकारण ॥२९॥

एव स्वच्छददृष्टीना ... ।

त्रिषष्टि त्रिशतानि ज्ञेयानि सर्वससारकारणानि ॥

१ को जाणइ सत्तचऊ भावं सुद्धं खु दोणिपंत्तिभवा ।
चत्तारि होंति एवं अण्णाणीणं तु सत्तंठी ॥ १ ॥
को जानाति सत्वचतुष्क भाव शुद्ध खलु द्विपक्तिभवा ।
चत्वारो भवन्त्येव अज्ञानिना तु सप्तषष्टि. ॥

पठरसेण विना ष्वस्वि यणनखीराइसेवण ।
 बालसङ्घो पिच्छसाहो फलं किञ्चिं च सुवर्ह ॥३०॥
 पौरुषेण विना नास्ति स्तनखीरादिसेवर्न ।
 आलस्यादयो निरुसाह फलं किञ्चिन्न मुक्ते ॥
 पुरिसबाधो—पौरुषबाधः ।

दइवा सिञ्जदि अत्यो पोरिसं पिप्फल हवे ।
 एसो सालमधुपुंगो कण्णो इम्मइ संगरे ॥ ३१ ॥
 तैवात् सिद्धवति अर्थ पौरुषं निष्फलं भवेत् ।
 एय सालसमुत्तुग कर्णं हन्यते संगरे ॥
 दइवबाधो—वैवबाधः ।

एकण चक्रेण रहो ण यादि संजोगमेवेति षदन्ति तण्णा ।
 खंधो य पग्गु य वणं पविट्ठा से संपजुष्वा षयरं पविट्ठा ॥३२॥
 एकन चक्रेण रथो न याति संयोगमेवेति षदन्ति तण्णा ।
 अन्धध पंगुध वने प्रविष्टौ तौ सम्प्रयुक्तौ नगरे प्रविष्टौ ॥
 संजोगबाधो—संयोगबाधः ।

लोपपमिट्ठी माथा पंचाली पंचपंडवत्थी ही ।
 महउट्ठिया ण रुञ्जइ मिलिट्ठिं सुरहिं दुप्पारा ॥ ३३ ॥
 अकप्राप्तदि माथा पंचाली पंचपांडवत्थी हि ।
 मज्जदा रता न म्दयन मिट्ठिनं मुग्गं दुर्वारा ॥
 लोपबाधो मातृबाधः ।

वयणवहा जावदिया णयवादा होंति चेव तावदिया ।
 णयवादा जावदिया तावदिया होंति परसमया ॥ ३४ ॥
 वचनपथा यावन्तो नयवादा भवन्ति चैव तावन्तः ।
 नयवादा यावन्तो तावन्तो भवन्ति परसमयाः ॥
 इदि सुत्त गद-इति सूत्र गतं ।

पढम मिच्छादिट्ठिं अव्वदिक आसिदूण पडिवज्ज
 अणुयोगो अहियारो बुत्तो पढमाणुयोगो सो ॥ ३५ ॥
 प्रथम मिध्यादृष्टिं अव्युत्पन्न आश्रित्य प्रतिपाद्य ।
 अनुयोगोऽधिकार उक्त प्रथमानुयोग स ॥
 चउवीस तित्थयरा वइणो ? बारह छखंडभरहस्स ।
 णवबलदेवा किण्हा णव पडिसत्तू पुराणाइ ॥ ३६ ॥
 चतुर्विंशतिस्तीर्थकरान् जयिनो द्वादश षट्खडभरतस्य ।
 नव बलदेवान् कृष्णान् नव प्रतिशत्रून् पुराणानि ॥
 तेसिं वण्णति पिया माई णयराणि चिण्ह पुव्वभवे ।
 पचसहस्सपयाणि य जत्थ हु सो होदि अहियारो ॥ ३७ ॥
 तेषा वर्णयन्ति पितृन् मातृ नगराणि चिह्नानि पूर्वभवान् ।
 पचसहस्रपदानि च यत्र हि स भवति अधिकारः ॥
 पयाणि ५००० ।
 कोडिपय उप्पाद पुव्व जीवादिदव्वणियरस्स ।
 उप्पादव्वयधुव्वादणेयधम्माण पूरणय ॥ ३८ ॥
 कोटिपद उत्पाद पूर्व जीवादिद्रव्यनिकरस्य ।
 उत्पादव्ययध्रौव्याद्यनेकधर्माणा पूरणक ॥

पयाणि १००००००० । तं अहा—

द्व्यार्षं जाणाण्युवप्यभगोपरक्रमजोगावज्जसंभाषितुप्यावप्य-
यधुम्याषि तियाळगोयरा पव घम्मा हवंति । उपरिणवं द्वावमपि
नवहा । उप्यप्यमुप्यज्जमाणमुप्यस्समाणं, पङ्क जस्समाणं, पंखमाणं,
ठिक्ं तिहुमाणं बिस्सतमिषि पवारणं तं घम्माणमुप्यज्जणादीण पत्तेप
पवधिहत्तजसमवावो पयासीदिवियप्यधम्मपरिणववप्यधम्मप्यं वं
कोदि तमुप्यावपुम्यं ।

द्रव्याणां नानानयोपभयगोचरक्रमपौगप्यसंभितोत्पादव्यपघ्नौम्याणि
श्रिकृच्छगोचरा नवधर्मा भवन्ति । उपरिणतं द्रव्यमपि नववा । उत्पन्नं
उत्पद्यमानं उत्पत्त्यमानं नष्ट नश्यत् नश्यत्, स्थितं तिष्ठत् स्थास्यत्
इति नवानां तेषां धर्माणां उत्पन्नादीनां प्रत्येकं नवविधत्वसंभवात् एक-
शीतिविधकन्यधमपरिणतद्रव्यवर्णनं यत्करोति तदुत्पादपूर्वम् ॥

अमाम्म वत्थुणो पि हि पहाणभूदस्स जाणमगणंतं ।

सुअग्गायणीयपुम्वं अग्गायणसंभवं विदिसं ॥३९॥

अमस्य वस्तुनोऽपि हि प्रधानमूक्तस्य ज्ञानं जयनं ।

स्वप्रायणीयपूर्वं अग्रायणसंभवं द्वितीयं ॥

मत्तम(म)मसुणयदुपमपंचरियसुकायल्लनकद्व्यार्षं ।

वज्जाण मत्तण्हं वण्णादि तं अत्थभियराणं ॥४०॥

सप्तशतमुनयदूर्णयपंचालिकायपहद्रव्याणां ।

नन्वाना मत्ताना वणयति ऋर्थनिकरणो ॥

मण लक्खणणिमर इण्णनदीलक्खणपयपमाणमिणं ।

वेत्ति जिणा तथ थ णणमह षरा सुभावेण ॥ ४१ ॥

मत्तान अणनिफत्तान, पण्णवत्तिक्खणपदप्रमाणमिणं ।

जानन्ति जिना तत्थाथ नमम्यत मराः । सुभावेन ॥

पुव्वंतं अवरंतं धुवाधुवच्चवणलद्धिणामाणि ।

अद्धुव संपण हि च अत्थ भोमावयज्ज च ॥ ४२ ॥

पूर्वान्त अवरात धुवाधुवच्च्यवन लद्धिनामानि ।

.. ॥

सव्वत्थकप्पणीयं णाणमदीदं अणागदं कालं ।

सिद्धिमुवज्जं वंदे चउदहवत्थूणि विदियस्स ॥ ४३ ॥

सर्वार्थकल्पनीय ज्ञानमतीत मनागत कालः ।

सिद्धिं प्राप्त वन्दे चतुर्दश वस्तूनि द्वितियस्य ॥

पचमवत्थुचउत्थपाहुडयस्साणुयोगणामाणि ।

कियवेयणे तहेव फसण कम्मपयडिक तह ॥ ४४ ॥

पचमवस्तुचतुर्थप्राभूतस्यानुयोगनामानि ।

तथैव स्पर्शन कर्म प्रकृतिक तथा ॥

वधणणिवधणपाकमाणुकममहब्भुदयमोक्खा ।

सकम लेस्सा च तहा लेस्साए कम्म परिणामा ॥ ४५ ॥

वधननिवधनोपक्रमानुपक्रमान्युदय मोक्षा ।

सक्रम लेस्या च तथा लेस्याया कर्म परिणामाः ॥

सादमसाद दि (वि) ग्य हस्स भव धारणीयसण्ण च ।

पुरुपोगलप्पणाम णिहत्तअहिहत्तणामाणि ॥ ४६ ॥

सातमसात विघ्न हास्य भय धारणीयसज्ञ च ।

पुरुपुद्गलप्रमाण निधत्यनिधत्यनामानि ॥

सणकाचिदमणकाचिदमहकम्मट्टिदिपच्छिमखधा ।

अप्पन्नहुत्तं च तहा तद्दाराणं च चउवीसं ॥ ४७ ॥

सकाचितानकाचितमथकर्मस्थितिपश्चिमस्कन्धा ।

अल्पवहुत्व च तथा तद्द्वाराणा च चतुर्विंशतिः ॥

अण्णोसि षट्पूण पाहुद्वयस्सावणुयोगयाण च ।
 णामाण उवणसो कालविसेसेण णट्ठो हु ॥ ४८ ॥
 अन्येषां वस्तूनां प्राभृतस्यानुयागानां च ।
 नाम्नामुपदेशे कालविशेषेण नथ हि ॥
 पयाणि ९६००००० ।

अस्माद्यथोपपुष्पं गर्भं-अप्रायर्णात्पूर्वं गर्भं ।

विज्जाणुवात्तपुण्वं वज्जं जीवादिषट्पुमामत्थं ।
 अणुवादो अणुवण्णणामिह तस्स इवेति णणमह ॥ ४९ ॥
 वीर्यानुवात्पूर्वं वीर्यं जीवादिषट्पुसामत्थं ।
 अनुवात्तोऽनुवर्णनमिह तस्य भवेत्ति नमम्यत ॥
 त वण्णदि अप्पबलं परविज्जं उदयविज्जमवि णिषं ।
 खेत्तबलं कालबलं भावबलं उवबलं पुण्णं ॥ ५० ॥
 तदूर्णमति आत्मबलं परवीर्यं उभयवीर्यमपि नित्यं ।
 क्षत्रबलं काळबलं भावबलं तपोबलं पूर्णं ॥

दम्बबलं गुणपञ्जयविज्जं विज्जाबलं च सव्यबलं ।
 मत्तरिलक्खपयहिं पुण्णं पुण्वं तदीयं सु ॥ ५१ ॥
 द्रव्यबलं गुणपर्ययधीर्धं विद्याबलं च सर्वबलं ।
 मत्तरिलक्खपयं पूर्णं पूर्वं तृतीयं मत्तु ॥

पयाणि ७ ० ।

इति विज्जाणुवात्पुष्पं गर्भं-इ त वीर्यानुवात्पूर्वं गर्भं ।

सियअत्थिणत्थिपमुहा तमिं इह रुवणं पवादोसि ।
 अत्थि यदो तां वम्मा अत्थिणत्थिपवादपुष्पं च ॥ ५२ ॥

स्यादस्तिनास्तिप्रमुखास्तेषा इह रूपण प्रवाद इति ।
 अस्ति अस्तिनास्तिप्रवादपूर्वं च ॥
 णियदव्वखेत्तकालभावे सिय अत्थि वत्थुणिवहं च ।
 परदव्वखेत्तकाले भावे सिय णत्थि आसित्ता ॥५३॥
 निजद्रव्यक्षेत्रकालभावान् स्यादस्ति वस्तुनिवह च ।
 परद्रव्यक्षेत्रकालभावान् स्यान्नास्ति आश्रित्य ॥
 सियअत्थिणत्थि कमसो सपरदव्वादिचउज्जुदं जुगवं ।
 सियऽवत्तव्वं सेयरदव्वं खेत्तं च भावे च ॥५४॥
 स्यादस्तिनास्ति क्रमशः स्वपरद्रव्यादिचतुर्युत युगपत् ।
 स्यादवक्तव्य स्वपरद्रव्य क्षेत्र च भाव च ॥
 सिय आसिदूण अत्थि चावत्तव्वं सदव्वदो जुगवं ।
 सपरदव्वादीदो सिय णत्थि अव्वच्चमिदि जाणे ॥५५॥
 स्यादाश्रित्य अस्ति चावक्तव्य स्वद्रव्यतो युगपत् ।
 स्वपरद्रव्यादित , स्यान्नास्ति अवक्तव्यमिति जानीहि ॥
 परदव्वखेत्तकालं भावं पडिवज्ज जुगव दव्वादो ।
 सिय अत्थि णत्थि अवरं क्रमेण णेयं च सपरं च ॥ ५६ ॥
 परद्रव्यक्षेत्रकालान् भाव प्रतिपद्य युगपत् द्रव्यतः ।
 स्यादस्ति नास्ति अपर क्रमेण ज्ञेय च स्वपर च ॥
 दव्वं खेत्तं कालं भावं जुगवं समासिदूणा व ।
 एवं णिच्चादीणं धम्माणं सत्तभंगविही ॥ ५७ ॥
 द्रव्य क्षेत्र काल भाव युगपत् समाश्रित्य च ।
 एव नित्यादीना धर्माणा सत्तभगविधि ॥

त्रिद्विषिसेहावतप्यभंगार्ण पतेयबुसंजोयतिसंजोयजावार्ण तिण्ण
तिण्ण एगसंभोयार्ण मेळणं सत्तभंगी पण्हयसावु एकस्मि वत्तुस्मि
अविरोहेण सहंवाति प्पाप्पाणयमुफ्फगोणमायेण अं प्रकवदि ।

विधिनिपेवावत्तम्यभंगानां प्रत्येकद्विसंयोगत्रिसंयोगजातानां त्रिष्येकसं
ख्यानां मेळनं सत्तभंगी प्रश्नवशात् एकस्मिन् वस्तुनि अविरोधेन संभवंती
नानानयमुफ्फगौणमायेन यत्प्ररूपयति ।

तत्पयाणि बुहेण य णवते सद्विलक्खमाणाणि ।
णाणायपिक्खणपराणि सत्तस्स भंगस्स ॥ ५७ ॥

तत्र पदानि बुधैश्च ज्ञायन्ते पण्डित्तमानानि ।
नानानयनिरूपणपराणि सप्तानां भंगानां ॥

पयाणि ६०००००० ।

इति अतिवचस्विपवात्पुण्य कर्त्तव्यं—इत्यस्तिनास्तिप्रवादपूर्वं यत् ।

णाणप्पवादपुण्यं मदिसुदओही सुणाणणाणायं ।
मणपञ्जयस्स मयं केवलणाणस्स रूर्वं च ॥ ५९ ॥

ज्ञानप्रधात्पूर्वं मतिधुतावधिसुज्ञानाज्ञानाना ।
मन-पर्ययस्य भेदान् केवलज्ञानस्य रूपं च ॥

कहदि इ पयप्पमाणं कोडी रुळ्ळणागा हि मदिणार्णं ।
अवगहईहावायाचारणागा होंति तद्धमेया ॥ ६० ॥

कथयति पत्रप्रमाणं कांति रूपोनां हि मतिज्ञानं ।
अवग्रहहावायधारणा भवन्ति तद्भेदा ॥

विमयाण विमईणं संजोग दंसभं विमप्पवदं ।
अवगहणार्णं तत्तो विसंसकंखा इवे ईहा ॥ ६१ ॥

विषयाणा विषयिणा सयोगे दर्शन, विकल्पवत् ।

अवग्रहज्ञान ततो विशेषाकाक्षा भवेदीहा ॥

ततो सुणिण्णओ खलु होदि अवाओ दु वत्थुजादस्स ।

कालंतरे वि णिण्णिदसमरणहेऊ तुरीयं तु ॥ ६२ ॥

ततः सुनिर्णयः खलु भवति अवायस्तु वस्तुजातस्य ।

कालान्तरेऽपि निर्णीतस्मरणहेतुस्तुर्यं तु ॥

इंदियअणिंदियुत्थं वैजणअत्थादवग्गहो दुविहो ।

चक्खुस्स माणसस्स य पढमो ण वज्वग्गहो कमसो ॥ ६३ ॥

इन्द्रियानिन्द्रियोत्थ व्यञ्जनार्थाम्यामवग्रहो द्विविधः ।

चक्षुषः मनसश्च प्रथमो न चावग्रहः क्रमशः ॥

बहु बहुविहं च खिप्पाणिस्सिदणुत्तं धुवं च इदरं च ।

पडि एक्के जादे तिसयं छत्तीसभेयं च ॥ ६४ ॥

बहु बहुविधं च क्षिप्रं अनिसृतं अनुक्तं ध्रुवं इतरञ्च ।

प्रति एकैकस्मिन् जाते त्रिशतं षट्त्रिंशद्भेदं च ॥

मदिणाण-मतिज्ञानम् ।

सुदणाणं अत्थादो अत्थंतरगहणमेव मदिपुव्वं ।

दव्वसुदं भावसुदं णियमेणिह सहजं पमुहं ॥ ६५ ॥

श्रुतज्ञानमर्थात् अर्थान्तरग्रहणमेव मतिपूर्वं ।

द्रव्यश्रुतं भावश्रुतं नियमेनेह शब्दजं प्रमुखं ॥

पज्जायक्खरपदसंधायं पडिवत्तियाणियोगं च ।

पाहुड पाहुडपाहुड वत्थू पुव्वं समासेहिं ॥ ६६ ॥

पर्यायाक्षरपदसघातं प्रतिपत्तिं अनुयोगं च ।

प्राभृतं प्राभृतप्राभृतं वस्तु पूर्वं समासैः ॥

विधिष्विसेहावतम्भमंगार्णं पतेयबुसंजोयतिसंजोयजाषार्णं तिष्णिवि
 तिष्णिव एगसंभोयार्णं मेळर्णं सतमंगी पद्मवसावु एकस्मि वर्युमि
 अविरोहेण सहंघति जाणाप्ययमुक्कगोणभावेण र्णं प्ररुधंदि ।

विधिनिषेधावस्यभंगानां प्रत्येकद्विसंयोगत्रिसंयोगजास्तानां त्रिष्येकसं-
 स्मानां मेळर्णं सतमंगी प्रश्नवशात् एकस्मिन् वस्तुनि अविरोधेन संभर्ती
 नानानयमुक्कगौणभावेन यत्ररूपपति ।

तस्यपयाणि धुहेण य ण्चंते सद्विलक्ष्यमाणानि ।

जाण्णयविरूपपर्याणि सत्तस्त मंगस्त ॥ ५७ ॥

तत्र पत्नानि बुधैश्च ज्ञाप्यन्ते पक्षिलक्ष्यमानानि ।

नानानयनिरूपणपर्याणि सत्तानां मंगानां ॥

पयाणि ६०००००० ।

इति अतिवृत्तिपदाद्युक्तं चरं—इत्यस्तिनास्तिप्रवादपूर्वं चरं ।

जाण्णप्यवाटपुच्वं मदिसुदओही सुण्णत्थणाप्याणं ।

मणपञ्जयम्म मेय केवलणाणस्त रूवं च ॥ ५९ ॥

ज्ञानप्रधात्पूर्वं मत्तिमुतावविमुञ्जानाञ्जानानां ।

मन पययम्म भेत्तान् केवलज्ञानस्य रूपं च ॥

कइदि हू पयप्पमात्थ कोडी रुळ्ळणागा दि मदियाणं ।

अत्रगइईहावायाधारणा होति तट्ठमेया ॥ ६० ॥

स्थयानि पत्त्रमाणं कोटि रूपानां दि मत्तिज्ञानं ।

अत्रप्रज्ञाशायवाग्णा भवन्ति तद्भेदा ॥

विमयाण विमइणं संजोग टमणं वियप्पवद्द ।

अयगहणाणं मत्तो विसेमकंत्वा हये ईहा ॥ ६१ ॥

विषयाणा विषयिणा सयोगे दर्शनं, विकल्पवत् ।

अवग्रहज्ञानं ततो विशेषाकाक्षा भवेदीहा ॥

ततो सुणिण्णओ खलु होदि अवाओ दु वत्थुजादस्स ।

कालंतरे वि णिण्णिदसमरणहेऊ तुरीयं तु ॥ ६२ ॥

ततः सुनिर्णयः खलु भवति अवायस्तु वस्तुजातस्य ।

कालान्तरेऽपि निर्णीतस्मरणहेतुस्तुर्यं तु ॥

इंदियअणिंदियुत्थं वेंजणअत्थादवग्गहो दुविहो ।

चक्खुस्स माणसस्स य पढमो ण वऽवग्गहो कमसो ॥ ६३ ॥

इन्द्रियानिन्द्रियोत्थ व्यञ्जनार्थाम्यामवग्रहो द्विविधः ।

चक्षुषः मनसश्च प्रथमो न चावग्रहः क्रमशः ॥

बहु बहुविहं च खिप्पाणिस्सिदणुत्तं ध्रुवं च इदरं च ।

पडि एक्के जादे तिसयं छत्तीसभेयं च ॥ ६४ ॥

बहु बहुविध च क्षिप्र अनिस्त अनुक्त ध्रुव इतरच्च ।

प्रति एकैकस्मिन् जाते त्रिशतं षट्त्रिंशद्भेद च ॥

मदिणाण-मतिज्ञानम् ।

सुदणाणं अत्थादो अत्थंतरग्रहणमेव मदिपुव्वं ।

दव्वसुदं भावसुदं णियमेणिह सदजं पमुहं ॥ ६५ ॥

श्रुतज्ञानमर्थात् अर्थान्तरग्रहणमेव मतिपूर्वं ।

द्रव्यश्रुत भावश्रुत नियमेनेह शब्दज प्रमुख ॥

पञ्जायक्खरपदसंघायं पडिवत्तियाणियोगं च ।

पाहुड पाहुडपाहुड वत्थू पुव्वं समासेहिं ॥ ६६ ॥

पर्यायाक्षरपदसघात प्रतिपाति अनुयोग च ।

प्राभृत प्राभृतप्राभृत वस्तु पूर्वं समासै ॥

वीसविहं तं तेसि आवरणविभेयतो हि नियमेण ।
 सुदुमधिगोदस्त हवे अपुणस्त पढमसमयम्हि ॥ ६७ ॥
 विशतिविधं सत्तेपा आवरणनिभेदता हि नियमन ।
 सूक्ष्मनिगोदस्य भवेत् अदूर्णस्य प्रथमस्तमये ॥
 लङ्कखरपञ्चायं गिरुचुग्धाहं लहुं गिरावरणं ।
 उवखरिषड्भुजुषं वीसवियर्षं तु सुदण्डायं ॥ ६८ ॥
 अन्धखरपर्यायं नित्योदघाटं लघु निरावरणं ।
 उपयुपरिशुद्धिमुक्तं विशतिविधत्तपं हि सुत्थानं ॥
 इति सुदण्डायं-इति सुतथानं ।

भवगुणपञ्चयविहितं ओहीणायं तु अवहिगं समये ।
 सीमाभाषणं रूवीपदत्यसंघातपञ्चकं ॥ ६९ ॥
 भवगुणप्रत्ययविहितं अन्धखरानं तु अयधिगं समये ।
 सीमाहानं रूपिपदार्थसंघातप्रत्यक्षं ॥
 दसोही परमोही सन्वोही होदि तस्य तिविहं तु ।
 गुणपञ्चयगो नियमा देसोही णरतिरक्खाणं ॥ ७० ॥
 दशावधि परमावधि सर्वावधिर्भवति तत्र त्रिविधस्तु ।
 गुणप्रत्ययक्रे नियमात् दशावधि नरतिरक्खा ॥
 अवरं दमाहिस्त य णरतिरिष्ट इवदि संजदधि वरं ।
 भवपञ्चयगो ओही सुरभिरयाणं च तित्थायं ॥ ७१ ॥
 अवरं दमावधेयं नरतिर्यक्षु भवति संयते वरं ।
 भवप्रत्ययक्रेऽवधिं मुरनरक्खाणां च तीर्थक्खाणां ॥
 गणामेय पढमं एयवियर्षं तु विदियमोही तु ।
 परमाही मन्वाही चरमसरीरिस्त विरदस्त ॥ ७२ ॥

नानाभेद प्रथम एकविकल्पस्तु द्वितीयोऽवधिः खलु १ ।

परमावधिः सर्वावधिः चरमशरीरिण. विरतस्य ॥

अणुगामी देशादिसु तमणुगामी य हीयमाणो वि ।

वडुंतो वि अवत्थिद अणवत्थिद होंति छब्भेया ॥७३॥

अनुगामी देशादिपु तेप्पन्ननुगामी च हीयमानोऽपि ।

वर्धमानोऽपि अवस्थितोऽनवस्थितो भवन्ति षड्भेदाः ॥

इदि ओहिणाणं—इत्यवधिज्ञान ।

मणपज्जयं तु दुविहं रिजुमदि पढमं तु तत्थ विउलमदी ।

संजमजुत्तस्स हवे ज जाणइ तं खु णरलोए ॥७४॥

मन पर्ययस्तु द्विविध ऋजुमति. प्रथमस्तु तत्र विपुलमतिः ।

सयमयुक्तस्य भवेत् यज्जानाति तत् खलु नरलोके ॥

इदि मणपज्जय—इति मन पर्यय ।

सच्चावरणविमुक्तं लोयालोयप्पयासगं णिच्चं ।

इंदियकमपरिमुक्तं केवलणाण गिरावाहं ॥ ७५ ॥

सर्वावरणविमुक्त लोकालोकप्रकाशक नित्य ।

इन्द्रियक्रमपरिमुक्त केवलज्ञान निराबाध ॥

इदि केवलणाण—इति केवलज्ञान ।

कुमदि कुसुदं विभंगं अण्णाणतिय वि मिच्छअणपुच्चं ।

सच्चादिभावमुक्तं भवहेदुं सम्मभावचुदं ॥ ७६ ॥

कुमतिः कुश्रुत विभग अज्ञानत्रयमपि मिथ्यानपूर्वं ।

सत्यादिभावविमुक्त भवहेतु सम्यक्त्वभावच्युत ॥

रुद्धाकोटिपय णाणपवादं अपेयणाणार्ण ।
 णाणामेयपरुवणपरं णमंसामि मात्रजुदो ॥ ७७ ॥
 रूपोनकोटिपदं ज्ञानप्रवादं अनेकज्ञानानां ।
 नानाभेदप्ररूपणपरं नमामि मात्रयुक्तः ॥
 पयाणि ९९९९९९९ ।

इति भाष्यपवादं परं—इति ज्ञानप्रवादं गतं ।

सद्यपवादं छट्टं वाग्गुत्तिं चाभि वयणसकारो ।
 वयणपओर्गं धारहभासा खलु वद्वधदुमेये ॥ ७८ ॥
 सत्यप्रवाते पठे वाग्गुत्तिथापि वचनसंस्कार ।
 वचनप्रयोगो द्वादशभाषा खलु वद्वधदुमेदा ॥
 बहुविहमिमामिहारणं दसविहसद्य मया परुवेदि ।
 जीवाण बोहणस्यं पयाणि छसुत्तरा कोटी ॥७९॥
 बहुविधमृयामिधानं दशविक्सत्यं मया प्ररूप्यते ।
 जीवानां वाधनार्थं पदानि पदुत्तरा कोटि ॥

मंजहा । असद्यमिच्छस्ती मोष्य या वाग्गुत्ती वयणसकारकारकारकार
 उरकठमिरजिम्भामुल्लंघन्यामिन्कातालुभोट्टामाणि मद्दुहावापि
 पिट्टाईमिपिट्टवापिबिबिद्वार्ईसिविविद्वार्संबिबिद्वरूपा पंचपपत्ता
 वयणसकारकारणाणि सिद्धुदुदुदुदुदु वयणपओर्गो तल्लुक्कणसत्यं
 सक्कायाइवापरण । वारह भासा—इणमजेण कियमिदि मयदुक्कह
 षमम्मक्कायं णाम १ परोप्यरविरोहहेडु कळहवाया २ पिट्टो बो-
 वस्सप्य पंनुण्णयाया ३ चम्मत्थकाममोक्काअस्सवत्थपमसंबरा
 छायां ४ इदियधिम्यंसु रइठव्याइया वाया रविवाया ५ तेसु भर
 दिउव्याविया थाया भरविवाया ६ परिग्गहाअणसरक्कणवाइभासपि
 हनु वयणमुयादिवयण ७ वयहारे वंक्काहेडु वयणं वियजिबयर्थ
 ८ तवणाणादिसु अबणियवयणमवणविबयणं ९ येयहेडुवयणं मूला-

चयणं १० सम्मग्गोवदेसकं वयणं सम्मदंसणवयणं ११ मिच्छाम-
ग्गोवदेसकं वयणं मिच्छादंसणवयणमिदि १२ ।

तद्यथा । असत्यनिवृत्तिमौनं वा वाग्गुप्ति । वचनसस्कारकारणानि
उरःकठशिरोजिह्वामूलदन्तनासिकाताल्वोष्ठनामानि अष्टस्थानानि, स्पृष्टे-
परस्पृष्टताविवृततेपद्विवृततासविवृततारूपाः पञ्चप्रयत्ना वचनसस्कारणानि ।
शिष्टदुष्टरूपो वचनप्रयोग तल्लक्षणशास्त्र सस्कृतादिव्याकरण । द्वादश-
भाषा इदमनेनकृतमिति अनिष्टकथनमभ्याख्यान नाम १ परस्परविरोध-
हेतु. कलहवाक् २ पृष्टतो दोषमूचन पैशून्यवाक् ३ धर्मार्थकाममोक्षास-
म्बद्धवचनमसवद्बालापः ४ इन्द्रियविषयेषु रत्युत्पादिका या वाक् रतिवाक्
५ तेष्वरत्युत्पादिका या वाक् अरतीवाक् ६ परिग्रहार्जनसरक्षणाद्यासक्ति-
हेतु वचन उपाधिवचन ७ व्यवहारे वचनाहेतु निकृतिवचन ८ तपो-
ज्ञानादिषु अविनयवचन अप्रणतिवचन ९ स्तेयहेतु वचन मृषावचनं
१० सन्मार्गोपदेशक वचन सम्यग्दर्शनवचन ! ११ मिथ्यामार्गोपदेशकं
वचन मिथ्यादर्शनवचनमिति १२ ॥

वत्तारा बहुभेया वींदियपमुहा हवंति मूसवयो ।

बहुविहमसच्चवयणं दब्बादिसमासियं णेयं ॥८०॥

वक्तारो बहुभेदा द्वीन्द्रियप्रमुखा भवन्ति मृषावाक् ।

बहुविधमसत्यवचन द्रव्यादिसमाश्रित ज्ञेय ॥

दसविहसच्चं जणवद सम्मिदि ठवणा य णाम रूवे य ।

संभावणे य भावे पडुच्च ववहार.उवमाए ॥८१॥

दशविधसत्य जनपद सम्मतिः स्थापना च नाम रूप ।

संभावना च भावः प्रतीत्य व्यवहारं उपमा ॥

भत्तं राया सम्मदि पडिमा तह होदि एस सुरदत्तो ।

किण्हो जंबूदीवं पल्लट्टिदि पाववज्जवयो ॥८२॥

मर्कं रात्रा सम्मति प्रकिमा तथा भवत्येय सुरदत्त ।

कृष्ण जम्बूद्वीपं परिवर्तयति पापवर्ग्यवचनं ॥

हस्सो रन्ध्रदि कूरो पल्लोवममेषमादिया सत्त्वा ।

आमंतणि आणवणी पुच्छणि आचष्णी य पणवणी ॥८३॥

इत्थ रभ्यति कूर पत्योपममेषमादिकानि सत्यानि ।

आमंत्रणी आङ्गापनी पृच्छनी याचनी प्रङ्गापनी ॥

पञ्चस्वाणी संशयवयणी इच्छाणुलोमिया तच्च ।

णवमी अणखरखुदा एवं मासा परूवेदि ॥८४॥

प्रत्याख्यानी संशयवचनी इच्छानुलोमिया तच्च ।

नवमी अनन्तरगता एवं माया प्ररूपयति ॥

पयाणि १०००० ०६ ।

इति सप्तपदादपुष्पं गणं—इति सप्तपदादपूर्वं गणं ।

अप्पपवाद भणियं अप्पमरूवप्यरूवयं पुष्पं ।

छब्बीसकोटिपयगयमेवं जाणंति सुपयत्या ॥८५॥

आमंत्रणां भणितं आत्मस्वरूपप्ररूपकं पूर्वं ।

पञ्चानिकोत्पिपत्गतमेवं जानन्ति सुपयत्या ॥

जीवो कृत्ता य वत्ता य पाणी भोक्ता य पोग्गलो ।

बेदी विण्ह मयभू मरीरी तह माणखो ॥८६॥

मत्तो जत्तु य माष्णी य माई जोगी य संकुडो ।

असंकुडो य स्वत्तण्ह अंतरप्या तदेव य ॥८७॥

जीव कर्ता च कृत्ता च प्राणी भोक्ता च पुद्गल ।

वत्त विण्यु स्वयंभू मरीरी तथा मानव ॥

सक्ता जन्तुश्च मानी च मायी योगी च सकुचित ।

असकुचित क्षेत्रज्ञ अन्तरात्मा तथैव च ॥

व्यवहारेण जीवति दशप्राणैर्हि, निश्चयनयेन च केवलज्ञानदर्शनसम्य-
क्त्वरूपप्राणै । जीविष्यति जीवितपूर्वो जीवतीति जीव । व्यवहारेण
शुभाशुभ कर्म निश्चयनयेन चित्पर्याय च करोतीति कर्ता । न किमपि
करोतीत्यकर्ता । सत्यमसत्य च वक्तीति वक्ता । निश्चयतोऽवक्ता । नय-
द्विकोक्तप्राणा यस्य सन्तीति प्राणी । कर्मफल स्वस्वरूप च भुक्ते इति

व्यवहारेण जीवति दशप्राणैर्हि, निश्चयनयेन च केवलज्ञानदर्शनसम्य-
क्त्वरूपप्राणै, जीविष्यति जीवितपूर्वो जीवतीति जीवो ।
व्यवहारेण सुहासुहं कम्मं णिच्छयणयेण चिप्पज्जयं च करेदित्ति
कत्ता । नो कामिवि करेदि इदि अकत्ता । सच्चमसच्चं च वत्तित्ति
वत्ता । णिच्छयदो अवत्ता । णयदुगुत्तपाणा अस्स अत्थि इदि
पाणी । कम्मफलं सस्सरूव च भुंजदि इदि भोत्ता । कम्मपोग्गलं
पूरेदि गालेदि य पोग्गलो । णिच्छयदो अपोग्गलो । सव्व वेइ इदि
वेदो । वावणसीलो विण्ह । सयभुवणसीलो सयंभू । सरीरमस्स-
त्थित्ति सरीरी । णिच्छयदो असरीरी । माणवादिपज्जयजुत्तो मा-
णवो । णिच्छएण अमाणवो । एवं सुरो असुरो तिरिच्छो अति-
रिच्छो णारयो अणारयो च इदि णादव्वं । परिग्गहेसु सजदित्ति
सत्ता । णिच्छयदो असत्ता । णाणाजोणिसु जायइत्ति जंतू । णिच्छ-
येण अजतू । माणो अहकारो अस्सत्थित्ति माणी । णिच्छयदो अ-
माणी । मायास्सत्थित्ति मायी । णिच्छयदो अमायी । जोगो मण-
वयणकायलक्खणो अस्सत्थित्ति जोगी । णिच्छयदो अजोगी । जह-
ण्णेण संकुइदपदेसो संकुडो । समुग्घादे लोय वाप्पइत्ति असंकुडो ।
खेत्तं लोयालोयं सस्सरूवं च जाणदित्ति खेत्तण्ह । अट्टकम्माब्भंत-
रवत्तीसभावदो चेदणाब्भंतरवत्तीसभावदो च अंतरप्पा । एवं मुत्तो
अमुत्तो । एवमादि वण्णेदि सत्तमपुव्वं ।

व्यवहारेण जीवति दशप्राणै , निश्चयनयेन च केवलज्ञानदर्शनसम्य-
क्त्वरूपप्राणै । जीविष्यति जीवितपूर्वो जीवतीति जीव । व्यवहारेण
शुभाशुभ कर्म निश्चयनयेन चित्पर्याय च करोतीति कर्ता । न किमपि
करोतीत्यकर्ता । सत्यमसत्य च वक्तीति वक्ता । निश्चयतोऽवक्ता । नय-
द्विकोक्तप्राणा यस्य सन्तीति प्राणी । कर्मफल स्वस्वरूप च भुक्ते इति

भोक्तु । कर्मपुत्रकान् पूरयति गाल्पयति च पुत्रल । निश्चयतोऽपुत्रल ।
 सर्षं वेत्तीति वेद । म्यापनशीलो विष्णु । स्वयंभवनशीलो स्वयंभू ।
 शरीरमस्यास्तीति शरीरी । निश्चयतोऽशरीरी । मानवादिपर्याययुक्तो मानव ।
 निश्चयेनामानव । एवं सुरोऽसुर, तिर्यचोऽतिर्यच, नारकोऽनारकश्च
 इति षातम्यः । परिग्रहेषु सजतीति सक्त । निश्चयतोऽसक्त । नानाम्यो-
 निषु जायते इति जन्तु । निश्चयेनाजन्तु । मानोऽहंकारोस्यास्तीति मानी ।
 निश्चयतोऽमानी । मायास्यास्तीति मायी । निश्चयतोऽमायी । मोगो मन-
 वचनकायलक्षणोऽस्यास्तीति योग निश्चयतोऽयोगी । जघन्येन संकुचि-
 त्प्रदेश संकुचित । समुद्राते लोकं म्याप्नोतीत्यसंकुचित । क्षेत्रं लोकात्मकं
 स्वस्वरूपं च जानातीति क्षेत्रज्ञ । अष्टकर्माभ्यन्तरवर्तित्वभावतश्चे-
 तनान्यन्तरवर्तित्वभावतश्चास्तत्परमा । एवं मूर्तोऽमूर्त । एवमादिकं वण-
 यति सप्तमं पूर्णं ।

पयाणि २६ ०००००० ।

इति अप्यपवादं चर्च-इत्यात्मप्रवादं फलं ।

कम्मपवात्परूवणं कम्मपवादं सया णमंसामि ।

इगिकोडीअइसीलीलपखपयं अहमं पुब्ब ॥ ८८ ॥

कम्मपवात्परूवणं कम्मपवादं सया नमामि ।

एककात्रागार्शातिष्णपत्तं अहमं पूर्णं ॥

आवरणम्य विभयं घेयणीयं मोहणायु गार्मं च ।

गार्मं च अंतगय अहवियप्यं च कम्ममिणं ॥ ८९ ॥

आवरणम्य विभयं वन्नीयं माहनीयमायु नाम च ।

गात्र घान्तगयं अहवियप्यं च कर्मं ॥

अडदालसयं उत्तरपयडीदो असंखलोयभेयं च ।
बंधुदयुदीरणावि य सत्तं तेसिं परूवेदि ॥ ९० ॥

अष्टचत्वारिंशच्छत उत्तरप्रकृतित, असख्यलोकभेद च ।
बधोदयोदीरणा अपि च सत्व तेना प्ररूपयति ॥

पयडिःट्टिदि अणुभागो पदेसबंधो हु चउविहो बंधो ।
तेसिं च ठिदि गेया जहण्णइदरप्पभेयेण ॥९१॥

प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबन्धो हि चतुर्विधो बन्धः ।
तेपा च स्थितिः ज्ञेया जघन्येतरप्रभेदेन ॥

अणुभागो पयडीणं सुहासुहाणं च चउविहो होदि ।
गुडखंडसक्करामिदसरिसो य रसो सुहाणं पि ॥९२॥

अनुभागः प्रकृतीना शुभाशुभाना च चतुर्विधो भवति ।
गुडखडशर्करामृतसदृशश्च रसः शुभानामपि ॥

णिबकंजीरविसरहालाहलसरिसचउविहो गेयो ।
अणुभायो असुहाणं पदेसबंधो वि बहुभेयो ॥९३॥

निबकजीरविषहालाहलसदृशश्चतुर्विधो ज्ञेयः ।
अनुभागोऽशुभाना प्रदेशबन्धोऽपि बहुभेदः ॥

लयदारट्टिसिलासमभेया ते विल्लिदारणं तस्स ।
इगिभागो बहुभागाट्टिसिला देसघादिघादीणं ॥९४॥

लतादार्विस्थिशिलासमभेदास्ते वल्लीदार्वनन्तस्य ।
एकभागो बहुभागा अस्थिशिला देशघातिघातिना ॥

पयाणि १८०००००० ।

इदि कम्मपवादपुण्व गद—इति कर्मप्रवादपूर्व गत ।

पञ्चस्त्राण षष्ठमं चउसीदिलक्ष्यपयप्पमाणं तु ।
तस्य वि पुरिसविसेसा परिमितकालं च इदं च ॥९५॥

प्रत्याख्याने नवमं चतुरशीतिषष्ठपदप्रमाणं तु ।
तत्रापि पुरुषविशेषान् परिमितकालं च इतरथ ॥

शाम हवणा द्रव्यं खेपं कालं पद्मं भाव च ।
पञ्चस्त्राण किञ्चद् सावज्जापं च बहुलाणं ॥ ९६ ॥

नाम स्यापनां द्रव्यं क्षेत्रं कालं प्रतीत्य भाषं च ।
प्रत्याख्याने क्रियते सावधानां च बहुलानां ॥

उपवासविधिं तस्य वि भाषणमेव च पञ्चसमिधिं च ।
गुणितविय तद् वण्णदि उपवासफलं विमुद्दस्य ॥९७॥

उपवासविधिं तस्यापि भावनाभेदं च पञ्चसमितिं च ।
गुणितवियं तथा वणयति उपवासफलं विमुद्दस्य ॥

अप्यागदमदिककंतं कोटिजुदमखडिदं ।
मायारं च पिरायारं परिमाथ तदेतरं ॥९८॥

अनामातमतिक्रान्तं कोटियुतमखडितं ।
माकज्ज च निगकारं परिमाणं तपेतरत् ॥

तद्वा च षष्ठणीयानं महेदुगमिदि ठिदं ।
पञ्चस्त्राणं जिणदि दइमेयं पफितिदं ॥ ९९ ॥

तथा च मत्तमुकमिति स्थितं ।
प्रत्याख्याने विनंत्तं तन्मत्तप्रकीर्तितं ॥

चउज्विदं न हि विणयमुदं अणुवादमुदमिदि जापे ।
अणुपालणमुदं नियं भावविमुदं गहीदस्य ॥ १०० ॥

चतुर्विध तद्वि विनयशुद्ध अनुवादशुद्धमिति जानीहि ।
अनुपालनशुद्ध चैव भावविशुद्ध गृहीतव्य ॥

पयाणि ८४००००० ।

इदि पञ्चक्खाणपुव्व गदं-इति प्रत्याख्यानपूर्व गत ।

विज्जाणुवादपुव्वं पयाणि इगिकोडि होंति दसलक्खा ।
अंगुट्टपसेणादी लहुविज्जा सत्तसयमेत्थ ॥१०१॥

विद्यानुवादपूर्व पदानि एककोटि. भवन्ति दशलक्षाणि ।

अगुष्टप्रसेनादी लघुविद्या सप्तशतान्यत्र ॥

पंचसया महविज्जा रोहिणिपमुहा पकासये चावि ।

तेसिं सरूवसत्ति साहणपूयं च मंतादिं ॥१०२॥

पचशतानि महाविद्या रोहिणीप्रमुखा प्रकाशयति चापि ।

तासा स्वरूपशार्त्तं साधनपूजा च मन्त्रादिक ॥

सिद्धाणं फललाहे भोमंगयणंगसद्दच्छिण्णाणि ।

सुमिणंलक्खणविंजणअट्टणिमित्ताणि जं कहइ ॥१०३॥

सिद्धाना फललामान् भौमगगनाङ्गशब्दच्छिन्नानि ।

स्वप्नलक्षणव्यजनानि अष्टौ निमित्तानि यत्कथयति ॥

पयाणि ११०००००० ।

इदि विज्जाणुवादपुव्व-इति विद्यानुवादपूर्व ।

कल्लाणवादपुव्वं छव्वीससुकोडिपयप्पमाणं तु ।

तित्थहरचक्रवट्टीत्रलदेउसमद्धचक्कीणं ॥ १०४ ॥

कल्याणवादपूर्व षड्विंशतिसुकोटिपदप्रमाण तु ।

तीर्थकरचक्रवर्तिबलदेवसमर्द्धचक्रिणा ॥

गन्भाषदरणतच्छत्र वित्ययरादीसु पुण्यहेतू च ।

सोलहभाषाक्रिया तवाभि षण्ण्येदि (स) विसेसं ॥१०५॥

गर्भावतरोत्सवानि तीर्थकरादिषु पुण्यहेतूषु ।

षोडशभाषनाक्रिया तपोसि वर्णयति सयिशेषे ॥

वरचन्द्रसूरगह्वरगह्वरखत्तादिचारसउणाई ।

* तेसि च फलाई पुणो * षण्ण्येदि मुहासुई अत्य ॥१०६॥

वरचन्द्रसूर्यग्रहणग्रहनक्षत्रादिचारशकुनादि ।

तेषां च फलादि पुन वर्णयति शुभाशुभं यत्र ॥

पयाई २६०००००००० ।

इति कालवशात्पुष्पं-इति कल्याणवशात्पूर्वं ।

पाण्यावासं पुष्पं तेरहकोडीपयं षमं सामि ।

अत्य वि कयचिकिच्छापसुहृद्गायुवेयं च ॥१०७॥

प्राणात्वायं पूर्वं प्रमोदशकोडिपदं नमामि ।

यत्रापि कायचिकित्साप्रनुष्ठाप्याङ्गं अयुर्भेदं च ॥

भूर्दीकम्मंजंगुलिपक्षमाण्यामाहया परे भेया ।

ईडापिगलादिप्राणा पुहवीत्राउग्निवायुषु ॥ १०८ ॥

भूतिकर्मत्रागुणिप्रक्रमसावक्य परे भेया ।

ईडापिगलादिप्राणा पृथिव्यम्बुमिवायुनां ॥

तत्राणं बहुभय दहपाणपरुषणं च इव्वाणि ।

उषयारयावयारयरूवाणि च तेसिमेवं सु ॥ १०९ ॥

सम्भानां बहुभेदाः तत्राणपरुषणं च इव्वाणि ।

उपकारापकाररूपाणि च तेषामेवं अष्ट ॥

वण्णिज्जइ गइभेया जिणवरदेवेहि सच्चभासाहिं ।

वर्ण्यते गतिभेदैः जिनवरदेवैः सर्वभाषाभि ।

पयाणि १३००००००० ।

पाणावाय गद-प्राणावायं गत ।

किरियाविसालपुव्वं णवकोडिपयेहिं संजुत्तं ॥ ११० ॥

क्रियाविशालपूर्वं नवकोटिपदैः सयुक्त ॥

संगीदसत्थछेदालंकारादी कला बहत्तरी य ।

चउसट्ठी इच्छिगुणा चउसीदी जत्थ सिल्लाणं ॥१११॥

संगीतशास्त्रच्छदोलङ्कारादि यः कला द्वासप्ततिः ।

चतुःषष्टिः स्त्रीगुणाः चतुरशीति यत्र शिल्पाना ॥

विण्णाणाणि सुगब्भाधाणादी अडसय च पणवग्गं ।

सम्महंसणकिरिया वण्णिज्जंते जिणिंदेहिं ॥११२॥

विज्ञानानि सुगर्भाधानादय अष्टशत च पचवर्ग ।

सम्यग्दर्शनक्रिया वर्ण्यते जिनेन्द्रैः ॥

णिच्चणिमित्ताकिरिया वंदणसम्मादिथा मुणिंदाणं ।

लोगिगलोगुत्तरभवकिरिया णेया सहावेण ॥११३॥

नित्यनिमित्तक्रिया वदनासाम्यादिका मुनीन्द्राणा ।

लौकिकलोकोत्तरभवक्रिया ज्ञेया स्वभावेन ॥

पयाणि ९००००००० ।

इदि किरियाविसाल-इति क्रियाविशाल ।

तिल्लोयविंदसारं कोडीवारह दसग्घपणलक्खं ।

जत्थ पयाणि तिलोयं छत्तीसं गुणिदपरियम्मं ॥११४॥

त्रिबोक्विन्दुसारं कोट्यो द्वादश दशान्नपंचलक्षणि ।

यत्र पदानि त्रिधाकं पद्मत्रिंशत् गणितपरिकर्म ॥

अठवधद्वारात्पि पुष्पो अंकविपासादि चारि षीजाई ।

मोक्षस्वरूपगमनकारणसुहृदधम्मकिरियाओ ॥११५॥

अष्टम्यधद्वारान् पुन अंकविपासादीनि चत्वारि बीजानि ।

मोक्षस्वरूपगमनकारणसुखधर्मक्रिया ॥

लोयस्स विंदवयवा वण्णिज्जंत च एत्थ सारं च ।

तं लोयविंदुसारं धोइसपुब्बं णमसामि ॥११६॥

लोकस्य विन्दवोऽवयवा वर्ण्यन्ते यत्र सारं च ।

लोकविन्दुसारं चतुर्दशार्थं नमामि ॥

पयाणि १२५०००००० ।

त्रिबोक्विन्दुसारं परं—त्रिबोक्विन्दुसारं परं ।

इदि णाणभूमपट्टे सूरिं सिरिविजयकित्तिणामगुहं ।

णमिउण सूरिमुक्खो कइइ इणं सुद्धसुहचंदो ॥ ११७ ॥

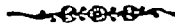
इति ज्ञानभूषणपट्टे सूरिं श्रीविजयकरीर्तिनामगुहं ।

नत्वा सूरिमुन्य कथयति इमां सुद्धसुहचंद्र ॥

इदि भंगपण्णत्तीप सिउंठसमुच्चये वाउअंगसमरणावरमि-

हाणे विदिया अहियाये ॥ २ ॥

चूलिकाप्रकीर्णकप्रज्ञप्तिः ।



तच्चूलियासुभेया पंच वि तह जलगया हवे पढमा ।
जलथभण जलगमणं वण्णादि विण्हिहस्स भक्खं जं ॥१॥

तच्चूलिकासु भेदाः पचापि तथा जलगता भवेत्प्रथमा ।

जलस्थभन जलगमन वर्णयति वन्हे भक्षण यत् ॥

वेसणसेवणमंतंतंतवचरणपमुहविहिभेए ।

णहणहदुगणवअडणवणहदुण्णि पयाणि अंककमे ॥२॥

प्रवेशनसेवनमत्रतत्रतपश्चरणप्रमुखविविभेदान् ।

नभोनभोद्विकनवाष्टनवनभोद्विकानि पदानि अकक्रमेण ॥

पयाणि २०९८९२०० ।

जलगदचूलिया-जलगतचूलिका ।

मेरुकुलसेलभूमीपमुहेसु पवेससिग्घगमणादि- ।

कारणमंतंतंतंतवचरणणिरूवया रम्मा ॥३॥

मेरुकुलशैलभूमिप्रमुखेषु प्रवेशशीघ्रगमनादि- ।

कारणमत्रतत्रतपश्चरणनिरूपिका रम्या ॥

तित्थियपयमेत्ता हु थलगयसण्णामचूलिया भणिया ।

मायागया च तेत्थियपयमेत्ता चूलिया णेया ॥४॥

तावत्पदमात्रा हि स्थलगतसन्नामचूलिका भणिता ।

मायागता च तावत्पदमात्रा चूलिका ज्ञेया ॥

मायारूवमहेंदजालविकिरियादिकारणगणस्स ।

मंततवतंतयस्स य णिरूवग्ग कोदुयाकलिदा ॥५॥

एयत्तणेण अप्पे गमणं परदव्वदो दु णिव्वत्ती ।

उवयोगस्स पइत्ती स समायोऽदो उच्चदे समये ॥११॥

एकत्वेन आत्मनि गमन परद्रव्यतस्तु निवृत्तिः ।

उपयोगस्य प्रवृत्तिः स समाय आत्मोच्यते समये ॥

णादा चेदा दिट्ठाहमेव इदि अप्पगोचरं ज्ञाणं ।

अह सं मज्झत्थे गदि अप्पे आयो दु सो भणिओ ॥१२॥

ज्ञाता चेतयिता दृष्टाहमेव इत्यात्मगोचर ध्यान ।

अथ स मध्यस्थे गतिरात्मनि आयस्तु स भणितः ॥

तत्थ भवं सामइयं सत्थं अवि तप्परूवगं छविहं ।

णाम द्ववणा दव्वं खेत्तं कालं च भाव तं ॥१३॥

तत्र भवं सामायिकं शास्त्रमपि तत्प्ररूपक पड्विध ।

नाम स्थापना द्रव्य क्षेत्र कालश्च भावस्तत् ॥

तत्थ इट्ठाणिट्ठणामेसु रायदोषणिव्वत्ति सामाइयमिदि अहिहाणं
वा णाम सामाइय ॥ १ ॥

तत्रेष्टानिष्टनामसु रागद्वेषनिवृत्ति सामायिकमिति अभिधान वा नाम
सामायिकम् ॥१॥

मणुण्णमणुण्णासु इत्थिपुरिसाइआयारठावणासु कट्टलेवचित्ता-
दिपडिमासु रायदोसणियट्ठी इणं सामाइयमिदि वा इज्जमाणयं किञ्चि
वत्थू वा ठावणा सामाइयं ॥ २ ॥

मनोज्ञामनोज्ञासु स्त्रीपुरुषाद्याकारस्थापनासु काष्ठलेपचित्रादिप्रतिमासु
रागद्वेषनिवृत्तिः इद सामायिकमिति वा स्थाप्यमान किञ्चिद्वस्तु वा स्था-
पना सामायिक ॥ २ ॥

इट्ठाणिट्ठेसु चेदणाचेदणदव्वेसु रायदोसणियट्ठी सामाइयसत्थाणु-
वज्जुत्तणायगो तस्सरीरादि वा दव्वसामाइयं ॥ ३ ॥

इद्यनिष्ठेषु चेतनाचेतनद्रव्येषु रगद्वेषनिवृत्ति सामायिकशास्त्रोपयुक्तज्ञापक सच्छरीरादि वा द्रव्यसामायिकं ॥ ३ ॥

पामगामपपरषणाविज्ञेतेषु इद्यानिष्ठेषु रत्यदोसधियही चेत सामाह्यं ॥ ४ ॥

नामप्रामनगरवनादिक्षेत्रेषु इद्यनिष्ठेषु रगद्वेषनिवृत्ति क्षेत्रसामायिकं ॥ ४ ॥

वसंतादसु उदुसु सुषककिण्डार्यं पक्षार्णं दिणवारणपक्षतादसु च तेषु कालविशेषेषु तं धियही कालसामाह्यं ॥ ५ ॥

वसंतादिषु ऋतुषु शुद्धकृष्णयो पक्षयो दिनवारनक्षत्रादिषु च तेषु कालविशेषेषु धियही कालसामायिकं ॥ ५ ॥

गामभावस्त जीयादित्तद्विषययुवयोगरूपस्त पश्चापस्त मिच्छार्थसपक्षसायविसंकिञ्चेषधियही सामाह्यसत्युपयुक्तपामगो तप्यस्वायपरिणतं सामाह्यं वा भावसामाह्यं ॥ ६ ॥

नामभावस्त जीयादित्तद्विषययुवयोगरूपस्य पर्यायस्य मिष्यादर्शनकपायात्संज्ञानिवृत्ति सामायिकशास्त्रोपयुक्तज्ञापक तत्पर्यायपरिणतं सामायिकं वा भावसामायिकं ॥ ६ ॥

सामाह्यं यत्—सामायिकं गतं ।

चउधिमजिणाष ञामठवणद्वस्सेचकलमावेहिं ।

कल्लाणचउत्तीमात्तिमयावपाडिहेरणं ॥ १४ ॥

चतुर्धिमजिनानां नामस्यायनद्रव्यक्षेत्रकलमावै ।

कयाणचतुर्धिमजिनानां शान्तिशयाप्रतिहार्याणां ॥

परमोगालियदहमम्मोमरणाय धम्मदेसस्त ।

मण्यमिह त यवण तप्यद्विबद्धं च सत्तमं च ॥ १५ ॥

परमौदारिकदेहसमवशरणाना वर्मदेशस्य ।

वर्णनमिह तत्स्तवन तत्प्रतिबद्ध च शास्त्र च ॥

थव गद—स्तव गत ।

मा वंदणा जिणुत्ता वंदिज्जह जिणवराणमिण एक्क ।

चेत्तचेत्तालयादिथई च दब्बादिवहुभेया ॥ १६ ॥

सा वन्दना जिनोक्ता वन्द्यते जिनवराणा एक ।

चैत्यचैत्यालयादिस्तुतिश्च द्रव्यादिवहुभेदा ॥

एव वदणा—एव वदना ।

पडिकमणं कयदोसणिरायरणं होदि तं च सत्तविहं ।

देवसियराइक्खियचउमासियमेववच्छरियं ॥ १७ ॥

प्रतिक्रमण कृतदोषनिराकरण भवति तच्च सप्तविध ।

दैवसिकरात्रिकपाक्षिकचातुर्मासिकसावत्सरिक ॥

इज्जावहियं उत्तमअत्थं इदि भरहखेत्तादि ।

दुस्समकालं च तथा छहसंहणणऽड्डुपुरिसमासिज्ज ॥ १८ ॥

ईर्यापथिक उत्तमार्थमिति भरतक्षेत्रादि ।

दु.षमकाल च तथा षट्संहननाढ्यपुरुषमाश्रित्य ॥

दब्बादिभेदभिण्णं सत्थं अवि तप्परूवयं तं (तु) ।

यदिवग्गेहि सदावि य णादब्बं दोसपरिहरणं ॥ १९ ॥

द्रव्यादिभेदाभिन्न शास्त्रमपि तत्प्ररूपक तत्तु ।

यतिवर्गैः सदापि च ज्ञातव्य दोषपरिहरण ॥

इदि पडिक्कमण—इति प्रतिक्रमण ।

वेणुहयं जाद्व्यं पंचविहो जाणदसभायं च ।

चारिचतवुषचारद विषओ अत्थ परुविज्जइ ॥ २० ॥

वैनपिकं ज्ञातव्यं पंचविधं ज्ञानदर्शनयोश्च ।

चारिप्रतपठपचाराम्नां विनयः यत्र प्ररूप्यते ॥

विणयो सासणघम्मो विषओ संसारतारओ विषओ ।

मोक्खपहो वि य विणओ कायव्वो सम्मदिद्वीर्यं ॥ २१ ॥

विनय शासनवर्म विनय संसारतरक विनय ।

मोक्खपयोऽपि च विनय कर्तव्यं सम्यग्दक्षिणि ॥

विषयो बहो-विनयो क्तः ।

किदिकम्मं जिणवयणधम्मजिणालयाण वेचस्त ।

पंचगुरूण भवहा वंदणहेतुं परुवेदि ॥ २२ ॥

इतिवर्म्मं जिणवचनधर्म्मजिनास्थानां चैत्यस्य ।

पंचगुरूणां नवधा वन्दनहेतुं प्ररूपयति ॥

साधीअतियपदिक्खअतियअदिचउसरसुधारसावचे ।

णिअणिमिआकिरियाविहिं च धत्तीस दोसहरं ॥ २३ ॥

स्वाधीनत्रिकप्रपञ्चिप्यत्रिनतिचतु शिरोऽद्वादशावर्त्ताः ।

नित्यनैमित्तिकक्रियाविधिं च द्वात्रिंशदोषहरं ॥

इति किदिकम्मं-इति इतिवर्म्मं ।

अदिगोचारस्य विहिं पिण्डविमुद्धिं च जं परुवेदि ।

दसवयालियसुत्तं दह फाला अत्थ संबुत्ता ॥ २४ ॥

यतिगोचरस्य विधिं पिंडविशुद्धिं च यत् प्ररूपयति ।

दशवैकालिकमूत्रं दश काला यत्र समुक्ताः ॥

इदि दहवेकालिय-इति दशवैकालिक ।

उत्तराणि अहिज्जंति उत्तरऽङ्घयणं मदं जिणिंदेहिं ।

वावीसपरीसहाणं उवसग्गाणं च सहणविहिं ॥ २५ ॥

उत्तराणि अधीयन्ते उत्तराध्ययन मत जिनेन्द्रैः ।

द्वाविंशतिपरीपहाना उपसर्गाणा च सहनविधिं ॥

चण्णेदि तप्फलमवि एवं पण्हे च उत्तरं एवं ।

कहदि गुरु सीसयाणं पइण्णिय अट्टम तं खु ॥ २६ ॥

वर्णयति तत्फलमपि एव प्रश्ने च उत्तर एव ।

कथयति गुरुः शिष्येभ्य प्रकीर्णक अष्टम तत्खल्ल ॥

इदि उत्तराङ्घयण-इत्युत्तराध्ययन ।

कप्पव्ववहारो जहिं ववहिज्जइ जोग कप्पमाजोगा ।

सत्थं अवि इसिजोगं आयरणं कहदि सव्वत्थ ॥ २७ ॥

कल्पव्यवहारः यत्र व्यवहियते योग्य कल्प्य अयोग्य ।

शास्त्रमपि ऋषियोग्य आचरणं कथयति सर्वत्र ॥

एव कप्पव्ववहारो गदो-एव कल्पव्यवहारो गत ।

कप्पाकप्पं तं चिय साहूणं जत्थ कप्पमाकप्पं ।

चण्णिज्जइ आसिच्चा दव्वं खेत्तं भवं कालं ॥ २८ ॥

कल्प्याकल्प्यं तदेव साधूनां यत्र कल्प्यमकल्प्यं ।

वर्ष्यते वाश्रित्य द्रव्यं क्षेत्रं भवं कालं ॥

इति कल्प्याकल्प-इति कल्प्याकल्प्यं ।

महाकल्पं भाष्यं त्रिजकल्पार्णं च सध्वसाहूर्णं ।

उत्तमसंहारणां द्रव्यक्षेत्रादिवर्तीर्णं ॥ २९ ॥

महाकल्प्यं ज्ञातव्यं जिनकल्पानां च सर्वसाधूनां ।

उत्तमसंहारणानां द्रव्यक्षेत्रादिवर्तीनां ॥

त्रियकालयोगकल्पं षड्विरकल्प्याणं ब्रह्म षड्विज्जह ।

द्विकक्षासिक्खापोषणसङ्घेह्यअप्पसकारं ॥ ३० ॥

त्रिजालयोगकल्प्यं षड्विरकल्प्यानां यत्र वर्ष्यते ।

दीक्षाशिक्षापोषणसङ्घेहनत्तमसंस्काराणि ॥

उत्तमठाभगदाण्यं उक्त्वाहाराहणाविसेसं च ।

उत्तमस्थानगतानां उक्त्वाहारावनाविशेषं च ।

इति महाकल्पं गद-इति महाकल्प्यं गतं ।

पुण्डरियणामसत्थं नमामि पिबं सुभावेण ॥ ३१ ॥

पुण्डरीकनामशास्त्रं नमामि नित्यं सुभावेण ।

भावणविंतरजोहमकल्पविभाषेसु ब्रह्म षड्विज्जह ।

उत्पत्तीकारणं खलु दाभं पूषं च तव्यरणं ॥ ३२ ॥

भावनम्यन्तरज्योतिष्कल्पविमानेषु यत्र वर्ष्यते ।

उत्पत्तिकर्मणं खलु दानं पूजा च तव्यरणं ॥

सम्मत्तसंज्ञमार्तिं अकामपिज्जरणमेव ब्रह्म पुणो ।

तदुपादद्याणवेहवसुहसंपत्ती च जीवार्थं ॥ ३३ ॥

सम्यक्त्वसयमादि अकामनिर्जरा एव यत्र पुन ।

तदुत्पादस्थानवैभवमुखसपत्तिश्च जीवाना ॥

इदि महपुडरीय-इति महापुडरीक ।

णीसेहियं हि सत्थं पमाददोसस्स दूरपरिहरण ।

पायच्छित्तविहाण कहेदि कालादिभावेण ॥ ३४ ॥

निपेधिका हि शास्त्र प्रमाददोषस्य दूरपरिहरणं ।

प्रायश्चित्तविधान कथयति कालादिभावेन ॥

आलोयण पडिकमणं उभयं च विवेयमेव वोसग्ग ।

तव छेय परिहारो उवठावण मूलमिदि णेया ॥ ३५ ॥

अलोचन प्रतिक्रमणं उभय च विवेक एव व्युत्सर्गः ।

तपश्छेदः परिहारः उपस्थापना मूलमिति ज्ञेय ॥

दहमेया वि य छेदे दोसा आकंपियं दस एदे ।

अणुमाणिय जं दिट्ठं वादर सुहमं च छिण्ण च ॥ ३६ ॥

दशभेदा अपि च छेदे दोषा आकपित दश एते ।

अनुमानित यदृष्ट वादर सूक्ष्म च छिन्न च ॥

सङ्घावुलियं बहुजणमन्वत्तं चावि होदि तस्सेवी ।

दोसणिसेयविमुत्तं इदि पायच्छित्तं गहीदच्चं ॥ ३७ ॥

१ महपुडरीय अस्य स्थाने पुडरीय इत्येव भाव्य । महापुडरीकस्य लक्षण
पुस्तकास्थित अस्मदृष्टिदोषाद्वा गतमिति न जानीम । लिखितपुस्तक त्वधुन
अस्मत्समीपे नास्ति । २१-७-२२ । तल्लक्षण हि-महच्च तत्पुडरीक च महापुडरीक
शास्त्र तच्च महर्धिकेषु इन्द्रप्रतीन्द्रादिषु उत्पत्तिकारणतपोविशेषाद्याचरण वर्णयति
महपुडरीय सत्थ वणिणञ्जइ जत्थ महड्डिदेवेसु ।

इति महपुडरीयस्य अंगपण्णत्तीकारणतपोविशेषाद्याचरणवर्णयति ॥

शब्दकुलितं बहुजनमप्यक्तं चापि भवति संसेवी ।

दोषानियेकविमुक्तं इति प्रायश्चित्तं गृहीत्वम् ॥

एवं दह्येया वि य तद्दोसा तद्विहा वि तन्मेया ।

वष्पिज्जते स अत्य वि षिसीदिकाणस्तु विरथारा ॥ ३८ ॥

एवं दशच्छेदा अपि च तद्दोषा तयाविवा अपि च तद्देदा ।

वर्ष्यन्ते तत्पत्रापि निस्तीतिक्रमस्तु विस्तारेण ॥

इति विधेहिजपहृष्यवं—इति विधेविकाप्रकीर्णकं ।

एवं पृष्ययाणि य बोहस पडिदाणि एत्य संसेवा ।

सहहदि ज्यो वि जीवो सो पावइ परमपिष्वाण ॥ ३९ ॥

एवं प्रकीणकानि च चतुर्दश प्रतीतानि अत्र संक्षेपात् ।

अहवाति यापि जीव स प्राप्नोति परमनिर्वाणं ॥

एवं बोहसपृष्यवा—एवं चतुर्दशप्रकीर्णकानि ।

सुदण्डाण केवलमवि दोण्य वि सरिस्ताणि होंति बोहदो ।

पञ्चस्य केवलमवि सुदं परोक्खं सया जाणे ॥ ४० ॥

श्रुतज्ञानं केवलमपि द्वे अपि सदृशे भवतो भावत ।

प्रत्यक्षं केवलमपि श्रुतं परोक्षं सदा जानीहि ॥

इति उमहण वि मणियं पण्हादो उसहसेण्यजोहस्त ।

सेमावि जिणवरिदा सगर्धि पडि तह समक्खंति ॥ ४१ ॥

इति वृषमणापि भणितं प्रश्नतः वृषमसेनयोमिन ।

शेषा अपि जिमबरेन्द्रा स्वगणिन प्रति तथा समाह्वयन्ति ॥

मिरिषडुमाणसुहक्यभिभिमार्यं चारहंगसुदणाण ।

मिरिगोयमेण रहयं अविक्खं सुणह मधियखभा ॥ ४२ ॥

श्रीवर्धमानमुखकजविनिर्गत द्वादशाङ्गश्रुतज्ञान ।

श्रीगौतमेन रचित अविरुद्ध शृणुत भव्यजना ! ॥

सिरिगोदमेण दिण्णं सुहम्मणाहस्स तेण जंबुस्स ।

विण्हू णंदीमित्तो तत्तो य पराजिदो य(त)त्तो ॥ ४३ ॥

श्रीगौतमेन दत्त सुधर्मनाथस्य तेन जम्बूनाम्न ।

विण्णु नन्दिमित्र ततश्चऽपराजितः तत ॥

गोवद्धणो य तत्तो भद्दभुओ अंतकेवली कहिओ ।

वारहअंगविदण्हू पचेदे कलियुगे जादा ॥ ४४ ॥

गोवर्धनश्च तत भद्रवाहु अन्तकेवली कथित ।

द्वादशाङ्गविद पचैते कलियुगे जाता ॥

दसपुच्चाणं वेढा विसाहसिरिपोढिलो तदो सूरी ।

खत्तिय जयसो विजयो बुद्धिल्लसुगंगदेवा य ॥ ४५ ॥

दशपूर्वाणा वेत्तारौ विशाखश्रीप्रौष्टिलौ ततः सूरी ।

क्षत्रिय जयस विजय बुद्धिल्लमुगगदेवौ च ॥

सिरिधम्मसेणसुगंणी तत्तो एगादसंगवेत्तारा ।

णक्खत्तो जयपालो पंहु धुयसेण कंसगणी ॥ ४६ ॥

श्रीधर्मसेनसुगणी तत एकादशाङ्गवेत्तारः ।

नक्षत्र जयपाल पाहु ध्रुवसेन कशगणी ॥

अग्गमअंगि सुभदो जसभदो भद्दवाहु परमगणी ।

आइरियपरंपराइ एवं सुदणाणमावहदि ॥ ४७ ॥

अग्निमाङ्गी सुभद्र यशोभद्र भद्रवाहु परमगणी ।

आचार्यपरपरया एव श्रुतज्ञान आवहति ॥

१ नागसेनसिद्धार्थधृतिषेणेति त्रीणि नामानि पुस्तकाद्गतानीत्यवभाति । २ प्रथ-
माङ्गवेत्तार । ३ लोहार्यश्चेति ।

कालविसेसा षष्ठं सुदण्डं अप्पुद्धिधरणम् ।

तं असे संवहति धम्मपदेशस्तु सद्धं दु ॥ ४८ ॥

कालविशेषात् नष्टं सुदण्डं अप्पुद्धिधरणम् ।

तदंशं संवहति धर्मोपदेशस्तु धम्मानेन तु ॥

आचार्यपरंपरां आगच्छं गोवदेसणं पठति ।

सो चटति मोक्षसततं मन्वो मोहप्यहावेण ॥ ४९ ॥

आचार्यपरंपरया आगताज्ञोपदेशानं पठति ।

स चटति मोक्षसाधनं मन्वो बोधप्रभावेन ॥

सिरिसयलकित्तिपट्टे आसेसी सुवणकित्तिपरमगुरु ।

तत्पट्टकमलमाणु महारओ धीहम्मसम्मओ ॥ ५० ॥

धीसकलकौर्त्तिपट्टे आसीत् सुवणकौर्त्तिपरमगुरु ।

तत्पट्टकमलमानु महारक बोधभूषण ॥

सिरिविजकिचिदेओ आणासत्प्यपयासओ धीरो ।

सुहसेवियपयजुयलो तत्पयवरकलमसलो म ॥ ५१ ॥

धीविजयकौर्त्तिपट्टे आणासत्प्यपयासओ धीरो ।

सुहसेवियपयजुयलो तत्पयवरकलमसलो म ॥

तत्पयसवणमनो तेवेओ उहसमासपरिवेई ।

सुहसंदो तेण इण गइयं मत्तं समासेण ॥ ५२ ॥

तत्पयसवणमनो तेवेओ उहसमासपरिवेई ।

सुहसंदो तेण इण गइयं मत्तं समासेन ॥

मयविहं किं पि म जं तं मोहं सुदहरा भव्वा ।

परउवयागणिविद्धा परकज्जमरा सुहावट्टा ॥ ५३ ॥

शास्त्रविरुद्ध किमपि च यत्तत् शोधयन्तु श्रुतधरा भव्या ।

परोपकारनिविष्टा परकार्यकरा सुभावाढ्याः ॥

जो णाणहरो भव्वो भावइ जिणसासणं परं दिव्वं ।

अचलपयं सो पावइ सुदणाणुवदेसियं सुद्धं ॥ ५४ ॥

यो ज्ञानधरो भव्यो भावयति जिनशासन परं दिव्य ।

अचलपद स प्राप्नोति श्रुतज्ञानोपदेशित शुद्ध ॥

इदि अंगपण्णत्तीए सिद्धंतसमुच्चये वारहअंगसमराणावराभिहाणे.

तइओ परिच्छेदो सम्मत्तो ॥ ३ ॥

इदि अंगपण्णत्ती सम्मत्ता ।

अथ श्रुतावतार ।

अत्र भरतक्षेत्रे वाग्मिदेशे वसुंधरानामनगरी भविष्यति । तत्र नरयाहनो राजा तस्य सुकपा राज्ञी तस्यां पुत्रमछममानो राजा इदि क्षेत्रं करिष्यति । अत्र प्रस्थापे सुषुदिनामा भेष्टी तस्य नृप-
 स्वोपदेशं वास्यति । यदि देव ! पद्मावतीपादापर्विदपूजां करिष्यति ।
 तदा पुत्रं त्वं प्राप्स्ये अथ एव भेष्टिना मोक्षं तद्वच्च राजा करिष्यति
 ततः पुत्रो भविष्यति । तस्य पुत्रस्य पञ्च इति नाम विधास्यति । राजा
 ततश्चित्यालयं करिष्यति सहस्रकूर्टं दशसहस्रस्तमोदृतं चतुःशार्ङ्गं
 वर्षे वर्षे यात्रां करिष्यति । अस्तमासे भेष्टिर्षपि राजप्रसादात्पदे पदे
 जिनमदिरैर्मूर्तिर्तां मर्द्दां करिष्यति । अत्रांतरे मर्द्दां प्राप्ते समस्तोपि
 संघस्तत्रागमिष्यति । राजा भेष्टिना सह जिनस्तवन विधाय पूजा च
 नगरीमध्यं महामहोत्सवेन रथं स्यामयित्वा ततो जिनप्रागपे स्थाप-
 यिष्यति । भिन्नमित्रं मगधस्वामिन मुनीन्द्रं इष्ट्वा विद्यम्यभावनामाधितो
 नरयाहनापि भेष्टिना सुषुदिनासा सह जैर्मी दीक्षां करिष्यति । अत्र-
 तरं कश्चिच्छंखवाहः समा गमिष्यति । जिनान् प्रणम्य मुनीनां चर्चनं
 कृत्वा धरस्वतगुरोर्बर्चनं प्रतिपाद्य खंख समर्पयिष्यति । तत्रस्थास्ते
 मुनयस्तं पृष्टीत्या वाचनं करिष्यति । तच्छया । गिरिनगरसमीपे गुहा-
 यामी धरस्वतमुनीश्वराऽप्रायणीयपूर्वस्य यः पञ्चमबस्तुकस्तस्य
 मुस्यंमाभूतस्य शास्त्रस्य व्याख्यानप्रार्थनं करिष्यति । धरस्तेनमहारथं
 कर्तव्यदिर्नैरग्याहमसहस्रिनाज्ञाः पठनाकर्षणभित्तनक्रिया कुर्वन्तो-
 रथाद्भक्तैकादशदिनं तास्य परिस्रमार्गि वास्यति एकस्य भूता राज्ञी
 बलिधिधि करिष्यति भस्यस्य दंतधनुष्कं सुन्दर । मूठधधिप्रमाबाजूष
 बलिनामा नरयाहना मुनिर्भविष्यात् समर्तनधनुष्यप्रमाबाध् नवदु-
 सि पुष्यतनामा मुनिर्भविष्यति । आत्मना निकटमरणं कृत्वा धर-
 मन पतयामां दश मधनु इति मत्वा तन्मुनिधिसर्जनं करिष्यति ।

तन्मुनिद्वयं अंकुलेसुरपुरे गत्वा मत्वा षडंगरचनां कृत्वा शास्त्रेषु
लिखाप्य लेखकान् संतोष्य प्रचुरदानेन ज्येष्ठस्य श्रुक्लपंचम्यां तानि
शास्त्राणि संघसहितानि नरवाहनः पूजयिष्यति षडंगनामानं दत्त्वा
निजपालितं पुष्पदंतसमीपं नरवाहनस्तं पुस्तकसहितं प्रेषयिष्यति
निजपालितदर्शितपुस्तकं तं षडंगनामानं दृष्ट्वा पुष्पदंतः स्वहृदि
तोषं करिष्यति नानापुस्तकसमूहं लिखाप्य सोपि पंचमीतिथ्यंगमालो-
कमानो मुनिभिः समंततः स्थास्यति । अत्रांतरे ग्रीष्मकाले प्राप्ते पुष्प-
दंतो विचित्रमंडपरचनां करिष्यति । पुस्तकपूजानिमित्तं सिद्धांत-
पुस्तकं धृत्वा समस्तानन्यान्पट्टकोपरिवरपट्टैः पिधाय क्रियां कृत्वा
ततः श्रुतस्तोत्रं करिष्यति । व्रतसमितिगुप्तिमुनिव्रतभाषणं आचारां-
गमष्टादशसहस्रपदैर्भक्त्याभिवदे इत्यादिस्तोत्रं विधाय यावत्पुष्पदं-
ताचार्य्यः स्थास्यति तावद्भव्यजनैः पृष्टः सम्यगुपवासफलं भव्या-
नामग्रे भणिष्यति । ये केचित्प्राणिनः श्रुक्लपंचमीदिने उपवास श्रुतार्थं
कुर्वन्ति ते खेचरोरगसुरासुरसुखानि भुक्त्वा तृतीये भवे निर्वाणं
व्रजन्ति तद्वचः श्रुत्वा श्रावकाः श्राविकाश्च तं विधिं लास्यन्ति । अत्रां-
तरे सूर्योस्तंगमिष्यति चद्रोदयो भविष्यति प्रभाते जाते भूयोपि भ-
व्यश्रावकाः श्रुतपूजां कृत्वा गृहं गत्वा साधुभ्यो भोजनं वितीर्य्य
स्वयं भोजनं करिष्यति अमुना प्रकारेण दिनत्रयं श्रुतपूजा कृत्वा
ततः पुष्पदंतो मुनिः पुस्तकान्पुस्तकस्थाने स्थापयिष्यति । सिद्धांत-
पुस्तकसृष्टिं कृत्वा नरवाहनमुनिः पुष्पदंतः पापानि विधूय वीतरागं
वीरं स्मृत्वा स्वर्गं यास्यति यथा षट्खंडागमरचनाकारको भूतव-
लिभट्टारकस्तथा पुष्पदंतोपि विंशतिप्ररूपणाना कर्त्ता । पुनरिन्द्रभूति-
गणिना निगदितं भो. श्रेणिक ! षट्खंडागमसूत्रोत्पत्तिं विमुच्येदांनी
प्राभृतसूत्रोत्पत्तिं कथयामि श्रूयता-ज्ञानप्रवादपूर्वस्य नामत्रयोदशमो
वस्तुकस्तदीयतृतीयप्राभृतवेत्ता गुणधरनामगणी मुनिर्भविष्यति
सोपि नागहस्तिमुनेः पुरतस्तेषा सूत्राणामर्थान्प्रतिपादयिष्यति तयो-
र्गुणधरनागहस्तिनामभट्टारकयोरुपकंठे पठित्वा तानि सूत्राणि यति-
नायकाभिधो मुनिस्तेषा गाथासूत्राणा वृत्तिरूपेण षट्सहस्रप्रमाणं
चूर्णिनामशास्त्रं करिष्यति । तेषा चूर्णिशास्त्राणा समुद्धरणनामा मुनि-

ब्राह्मशास्त्रप्रमितां तद्दीक्षा रक्षयिष्यति मित्रनामाळंकृतं इति सूत्रि
 परंपरया द्विविधसिद्धांतो ब्रजन् मुनीन्द्रकुंठकुंठवाच्यसमीपे सिद्धांतं
 ज्ञात्वा कुंठकीर्तिनामा पदबन्धनां मध्ये प्रथमस्थे बन्धनां ब्राह्मशास्त्र
 प्रमितं परिकर्म नाम शास्त्रं करिष्यति पदबन्धनेन विना तेषां बन्धनां
 सप्तकभाषाभिः पञ्चतिनामप्रथं ब्राह्मशास्त्रप्रमितं इयामकुंठनामा
 भङ्गारकाः करिष्यति तथा च पदबन्धस्य सप्तसहस्रप्रमिता पञ्चिकां च ।
 द्विविधसिद्धांतस्य ब्रजतः समुत्तरणे समंतमद्रनामा मुनीन्द्रो भवि-
 ष्यति सोऽपि पुनः पदबन्धपञ्चबन्धनां संस्कृतभाषयाष्टपदिसहस्र-
 प्रमितां टीकां करिष्यति द्वितीयसिद्धांतटीकां शास्त्रे विद्यापयन् शुभ-
 र्ममामा मुनिवोरयिष्यति ब्रह्मविद्युद्येनोवात् इति द्विविधं सिद्धांतं
 ब्रजंतं शुभमंदिनहारकपार्श्वे श्रुत्वा ज्ञात्वा च वप्रदेवनामा मुनीन्द्रः
 प्राहृतभाषया अष्टसहस्रप्रमितां टीकां करिष्यति । अत्रांतरे प्रस-
 त्तार्थमहारकपार्श्वे सिद्धांतद्वयं धीरसेननामा मुनिः पठित्वाऽ
 पराण्यपि अष्टादशाधिकाराणि प्राप्य पञ्चबन्धे पदबन्धं सकल्प्य
 संस्कृतप्राहृतभाषया सत्कर्मनामटीकां ब्राह्मशास्त्रप्रमितां
 धवळनामाफितां विद्याप्य विशातिसहस्रकर्मप्राभृतं विचार्य धीर-
 सेनो मुनिः स्वर्गं यास्यति । तस्य शिष्यो जिनसेनो भविष्यति सोऽपि-
 चत्वारिंशत्सहस्रैः कर्मप्राभृतं समाप्तिं नेष्यति अमुना प्रकारेण
 पदिसहस्रप्रमिता जयधवलनामाफिता टीका भविष्यति ।

इति श्रीपञ्चाधिकरत्नमहाशब्दे त्रिभुवन्धीपरविरचिते भुतावतारप्रकरणे
 नाम दुर्गं परिच्छेदः ।

अथ शलाकानिक्षेपणनिष्काशनविवरणं ।



अर्हतं तत्पुराणं जिनमुनिचरणान् देवतां क्षेत्रपालं
छायासूनोर्निशायामभिपवनविधैः पूजयित्वा जलाद्यैः ।
जातां हेमः शलाकां कुशकुसुममयीं कन्यया दापयित्वा
तत्रातः पूजयित्वा पुनरथ शकुनं वीक्ष्यते तत्पुराणं ॥१॥
अत्युग्रशुभकार्यार्थं शनिवारो न याति चेत्
अन्यस्मिन्वासरे सौम्ये पुराणं प्रार्चयेत्सुधीः ॥२॥
दुर्वचः श्रवणे चैव दुर्निमित्तावलोकने
क्षुत्ते प्रदीपनिर्वाणे पुराणं नार्चयेत्ततः ॥३॥
अष्टाब्दां वा दशाब्दामजनितरजसं कन्यकां वा नवोढा-
मभ्यंगस्नानभूषां मलयजवसनालंकृतां पूजयित्वा ।
मंत्रैर्वांगदेवतायास्त्रिगुणितनवकं मंत्रयित्वा शलाकां
तद्दोभ्यां दापयित्वा तदनु च दलयोः कार्यमालोच्य
मध्ये ॥ ४ ॥

कन्या न लभते यत्र न प्रौढा लभते यदा
शलाकां श्रावकं शुद्धः पुराणे प्रक्षिपेत्तदा ॥५॥
प्राक्पत्रे पूर्वपंक्तौ वा पद्ये पूर्वार्क्षराणि च
सप्त हित्वा पठेच्छ्लोकमिति केषां मतं मतं ॥ ६ ॥

१ ॐ रों क्रौ श्रीं ह्रीं क्लीं व्ले झ्रौं झ्रौं श्रीसरस्वति मरालवाहने वीणापुस्त-
कमालापद्ममण्डितचतुर्भुजे मौक्तिकहारावलिराजितोरोजसरोजकुड्मलयुगले वद वद
वाग्वादिनि सर्वजनसशयापहारिणि श्रीमद्भारति देवि ! तुभ्य नमोस्तु, इति श्री
सरस्वतीमत्र ।

श्रीमत्पंडिताशाधरविरचिता
कल्याण-माला ।

पुरुदेवादिवीरान्तजिनेन्द्राणां ददातु नः ।
श्रीमद्गर्भादिकल्याणश्रेणी निश्रेयसः श्रियम् ॥ १ ॥
शुचौ कृष्णे द्वितीयायां वृषभो गर्भमाविशत् ।
वासुपूज्यस्तथा षष्ठ्यामष्टम्यां विमलः शिवम् ॥२॥
दशम्यां जन्मतपसी नमेः शुक्ले तु सन्मतेः ।
षष्ठ्यां गर्भो भवन्नेमेः सप्तम्यां मोक्षमाविशत् ॥३॥
सुव्रतः श्रावणे कृष्णे द्वितीयायां दिवच्युतः ।
कुन्थुर्दशम्यां शुक्ले तु द्वितीये सुमतिस्थितौ ॥४॥
जन्मनिष्क्रमणे षष्ठ्यां नेमेः पार्श्वः सुनिर्वृतः ।
सप्तम्यां पूर्णिमायां तु श्रेयान्निःश्रेयसं गतः ॥५॥
भाद्रे कृष्णस्य सप्तम्यां गर्भं शान्तिरवातरत् ।
गर्भावतरणं षष्ठ्यां सुपार्श्वस्य सितेऽभवत् ॥६॥
पुष्पदन्तस्य निर्वाण शुक्लाष्टम्यामजायत ।
श्रितः शुक्लचतुर्दश्यां वासुपूज्यः परं पदम् ॥७॥
आश्विनेऽभूद्द्वितीयायां कृष्णे गर्भो नमेः सिते ।
नेमे प्रतिपद्विज्ञानं सिद्धोष्टम्यां च शीतलः ॥८॥
अनन्तः कार्तिके कृष्णे गर्भेऽभूत्प्रतिपदिने ।
चतुर्थ्यां शंभवाधीशः केवलज्ञानमापिवान् ॥९॥

पञ्चमप्रमत्स्योदश्यां प्राप्नो जन्मव्रते शिवम् ।
 दशै षीरो द्वितीयायां कैवल्य सुविधि स्थित ॥१०॥
 षष्ठ्यां गर्भोऽभवभेमेद्वादश्यां केवलोद्भव ।
 अरनाथस्य षष्ठान्ते संमवेक्षस्य जन्म च ॥११॥
 मार्गे दशम्यां कृष्णेऽगाढीरो दीक्षां ननिव्रते ।
 सुविधे षष्ठान्ते शुक्ले दशम्यां त्वरदीक्षणम् ॥१२॥
 एकादश्यां जनुर्दीक्षे मल्लेर्ब्रान नमेस्तथा ।
 अरजन्म चतुर्दश्यां षष्ठान्ते मम्मव प्रथम् ॥१३॥
 पौषकृष्णे द्वितीयायां मल्लि कैवल्यमाप्तदत् ।
 चन्द्रप्रमस्तया पाथ्य एकादश्यां जनिव्रते ॥१४॥
 शीतलन्तु चतुर्दश्यां कैवल्यमुदमीमिलत् ।
 शान्तिनाथो दशम्यान्तु शुक्ले कैवल्यमापिवान् ॥१५॥
 एकादश्यान्तु कैवल्यमजितश्रोऽमिनन्दन ।
 चतुर्दश्यां पूर्णिमायां धर्म्मश्च लभत स्म तत् ॥१६॥
 माघ पञ्चम कृष्णे षष्ठ्यां गर्भमवातरत् ।
 शीतलस्य जनुर्दीक्षे द्वादश्यां वृषमस्य तु ॥१७॥
 माघाभवचतुर्दश्यां दर्श भेषांसकेवलम् ।
 शुक्रपक्षे द्वितीयायां वासुपूष्यस्य केवलम् ॥१८॥
 चतुर्थ्या विमला जन्मदीक्ष षष्ठ्यां च केवलम् ।
 नवम्भामजितो दीक्षां दशम्यां जन्म प्राप्तदत् ॥१९॥
 अभिनन्दननाथस्य द्वादश्यां जन्मनिष्क्रमौ ।
 धर्म्मस्य जन्मतपसी त्रयोदश्यां शश्वतु ॥२०॥
 चतुर्थ्या फाल्गुनं कृष्णं मार्त्तं षष्ठप्रमो गत ।

षष्ठ्यां सुपार्श्वः कैवल्यं सप्तम्यां चाप निर्वृतिम् ॥२१॥
 सप्तम्यामेव कैवल्यमोक्षौ चन्द्रप्रभोऽभजत् ।
 नवम्यां सुविधिर्गर्भमेकादश्यां तु केवलम् ॥२२॥
 वृषो जन्मव्रते तद्वच्छ्रेयान्मुक्तिं तु सुवृतः ।
 द्वादश्यां वासुपूज्यस्तु चतुर्दश्यां जनिव्रते ॥२३॥
 अरः शुक्ले तृतीयायां गर्भं मल्लिस्तु निर्वृतिम् ।
 पंचम्यां प्रापदष्टम्यां गर्भं श्रीसंभवोऽपि च ॥२४॥
 चैत्रे चतुर्थ्यां कृष्णेऽभूत्पार्श्वनाथस्य केवलम् ।
 पंचम्यां चन्द्रभो गर्भमष्टम्यां शीतलोऽश्रयत् ॥२५॥
 नवम्यां जन्मतपसी वृषभस्य व्रभूवतुः ।
 कैवल्यमप्यमावास्यां मोक्षोऽनन्तस्य चाभवत् ॥२६॥
 शुक्लप्रतिपदा गर्भे मल्लिः कुन्थुस्तृतीयया ।
 ज्ञाने जिनोऽभूत्पंचम्यां मोक्षे षष्ठ्यां च सम्भवः ॥२७॥
 एकादश्यां जनिर्ज्ञानमोक्षान्सुमतिरुद्भवम् ।
 वीरः प्राप्तस्त्रयोदश्यां पद्माभोत्येन्दिह केवलम् ॥२८॥
 पार्श्वः कृष्णे द्वितीयायां वैशाखे गर्भमाविशत् ।
 नवम्यां सुव्रतो ज्ञानं दशम्यां च जनिव्रते ॥२९॥
 धर्मो गर्भं त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां नमिः शिवम् ।
 शुक्ले प्रतिपदि प्राप कुन्थुर्जन्मतपः शिवम् ॥३०॥
 प्राप्तोऽभिनन्दनः षष्ठ्यां शुक्लायां गर्भमोक्षणम् ।
 नवम्यां सुमतिवीरो दशम्यां ज्ञानमक्षयम् ॥३१॥
 श्रेयान् ज्येष्ठे सिते षष्ठ्यां दशम्यां विमलोऽपि च ।
 गर्भं समाश्रितोऽनन्तो द्वादश्यां जन्मनिष्क्रमौ ॥३२॥

शान्ति धितधतुर्दश्यां जन्मदीक्षाशिवभिय ।
 अमावास्या दिने गर्भमवतीर्णो जिनेश्वरः ॥३३॥
 शुक्ले षतुर्ध्यां निर्वाणं प्राप्तो धर्मो जिनेश्वर ।
 सुपाशनायो द्वादश्यां जनिप्रवृत्तिते स्थितः ॥३४॥
 इतीमां रूपभदीनां पुष्पस्कन्ध्याणमालिका ।
 करोति कण्ठ भ्रुवां य स स्यादाशाधरेष्ठितः ॥३५॥

इत्याशाधरयिच्छिता कल्याणमाला ॥३५॥

समाप्ताऽर्थं प्रणयः ।

